TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182727
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H808 / B57H   Accession No. P.G. H 2111

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

10 JUL 1986

अलंकार-मंजूषा

अर्थात्

हिंदी-साहित्य की परीक्षाओं के परीक्षार्थियों के लिये

अलंकार विषय का एक ग्रंथ

जिसमें

हिंदी-भाषा के अलंकारों की विशद

व्याख्या की गई है

—:*:—

लेखक

स्वर्गीय ला० भगवानदीन

—:*:—

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

—:o:—

दसवीं बार २०००] सं० २००८ वि० [मूल्य २) रुपया

मिलने का पता

१—रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

२—बा० चन्द्रिका प्रसाद, मैनेजर

साहित्य भूषण कार्य्यालय,

बनारस सिटी

प्रथम संस्करण			१०००
द्वितीय संस्करण			१०००
तृतीय संस्करण	सन् १९२३	ई०	१०००
चतुर्थ संस्करण	सन् १९२५	ई०	१०००
पंचम संस्करण	सन् १९२७	ई०	२०००
षष्ठ संस्करण	सन् १९३२	ई०	१०००
सप्तम संस्करण	सन् १९३३	ई०	१०००
अष्टम संस्करण	सन् १९३७	ई०	२०००
नवम संस्करण	सन् १९४८	ई०	२००४
दशम संस्करण	सन् १९५१	ई०	२००८

सर्वाधिकार लेखक के वारिस के लिये सुरक्षित

मुद्रक—

मुंशी रमजानअली शाह

नेशनल प्रेस, प्रयाग

पुस्तक-सूची

विषय	पृष्ठ
१—प्राक्कथन	१
२—संपादकीय	१
३—वक्तव्य	१—२
४—'दीन' जी और 'मंजूषा	१—१०
५—अलंकार-मंजूषा	१—२८३
६—जातीय-गान	२८४

—:o:—

अलंकार सूची

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
अन्त्यानुप्रास	१२	उत्प्रेक्षा के दोष	२८३
अतद्गुण	२३०	उदात्त	२५७
अतिशयोक्ति	१०८	उदाहरण	११०
अत्युक्ति	२५८	उन्मीलित	२३४
अधिक	१७६	उपमा	४७
अनन्वयोपमा	६३	उपमा के दोष	२७६
अनुगुण	२३२	उपमेयोपमा	६४
अनुज्ञा	२२२	उल्लास	२१८
अनुप्रास	२	उल्लेख	८३
अनुप्रास के दोष	२७३	एकावली	१८६
अन्योक्ति	१२६	एकवाचकानुप्रवेश	२७४
अन्योक्ति का दोष	२८३	कारक-दीपक	१२६
अन्योन्य	१८१	कारण-माला	१८५
अपह्नुति	९१	काव्यलिंग	२०४
अप्रस्तुत-प्रशंसा	१४६	काव्यार्थापत्ति	२०३
अर्थान्तरन्यास	२०६	क्रम	१८८
अर्थालंकारों के दोष	२७६	गम्योत्प्रेक्षा	१०७
अलंकार (व्याख्या)	१	गूढ़ोक्ति	२४६
अल्प	१८०	गूढ़ोत्तर	२३८
अवज्ञा	२२०	चित्र	१४
असंगति	१७१	चित्रोत्तर	२४०
असंभव	१७१	छेकानुप्रास	३
आक्षेप	१६३	छेकोक्ति	२५१
आवृत्ति-दीपक	१२४	तद्गुण	२२६
उत्प्रेक्षा	९७	तिरस्कार	२२२

अलंकार नाम	पृष्ठ	अलंकार नाम	पृष्ठ
तुल्ययोगिता	११६	प्रहर्षण	२१५
दीपक	१२३	प्रहेलिका	८
दोष-कोष	२७६	प्रौढ़ोक्ति	२११
दृष्टांत	१३१	भाविक	२५६
देहरी-दीपक	१२८	भाषा-समक	२६
निदर्शना	१३४	भ्रांति (भ्रम)	८६
निरुक्ति	२६१	माला-दीपक	१२७
परिकर	१४५	मालोपमा	५८
परिकरांकुर	१४६	मिथ्याध्यवसित	२१३
परिणाम	८२	मीलित	२३३
परिवृत्ति	१६५	मुद्रा	२२४
परिसंख्या	१६६	यमक	३१
पर्याय	१६२	यमक का दोष	२७८
पर्यायोक्ति	१५७	युक्ति	२४८
पिहित	२४४	रत्नावली	२२७
पुनरुक्तिप्रकाश	२५	रसनोपमा	६२
पुनरुक्तिवदाभास	२६	रसवत	२७२
पूर्णोपमा	४८	रूपक	७१
पूर्वरूप (द्विधा)	२३१	ललित	२१४
प्रतिवस्तूपमा	१२८	ललितोपमा	६६
प्रतिषेध	२६२	लाटानुप्रास	१०
प्रतीप	६७	लुप्तोपमा	५०
प्रत्यनीक	२०२	लुप्तोपमा सूचक चक्र	५६
प्रमाण	२६३	लेश	२२३
प्रस्तुतांकुर	१५६	लोकोक्ति	२५०

अलंकार नाम	पृष्ठ	अलंकार नाम	पृष्ठ
वक्रोक्ति (शब्द)	३५	शब्दालंकारों के दोष	२७६
वक्रोक्ति (अर्थ)	२५२	श्रुत्यनुप्रास	८
विकल्प	१९९	श्लेष (शब्द)	४०
विकस्वर	२०६	श्लेष (अर्थ)	१४७
विचित्र	१७८	संकर	२७०
विधि	२६२	संदेह	६०
विनोक्ति	१४१	संदेह-संकर	२७३
विभावना	१६७	संभावना	२१२
विरोधाभास	१६५	संसृष्टि	२६९
विवृतोक्ति	२४७	सम	१७६
विशेष	१८२	समाधि	२०१
विशेषक	२३५	समासोक्ति	१४२
विशेषकोन्मीलित	२३६	समासोक्ति का दोष	२८३
विशेषोक्ति	१७०	समुच्चय	१९९
विषम	१७३	समुच्चयोपमा	६२
विषादन	२१७	सहोक्ति	१४०
वीप्सा	३९	सामान्य	२३४
वृत्यनुप्रास	४	सार	१८७
व्यतिरेक	१३९	सूक्ष्म	२४२
व्याघात	१८४	स्मरण	८५
व्याजनिंदा	१६१	स्वभावोक्ति	२५३
व्याजस्तुति	१५९	हेतु	२६७
व्याजोक्ति	२४५		

वक्तव्य

हिंदी-काव्य का रसास्वादन करने के लिये अलंकारों का जानना बहुत जरूरी है। अनेक अलंकार-ग्रंथ मौजूद हैं; उनके होते हुए भी यह ग्रंथ हमने क्यों लिखा, इसका कारण यह है कि इस विषय के प्रायः समस्त ग्रंथ ऐसे देख जाते हैं जिन्हें पढ़ाने में शिक्षकों को संकोच-भाव धारण करना पड़ता है, अर्थात् कोई गुरु अपने शिष्य को, कोई पिता अपने पुत्र को या कोई बड़ा भाई अपने छोटे भाई को निःसंकोच-भाव से नहीं पढ़ा सकता। युवती कन्याओं को वे ग्रंथ पढ़ाते हुए इतना संकोच हो सकता है कि उन्हें वे ग्रंथ आद्योपांत पढ़ाए ही नहीं जा सकते।

'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' ने कुछ परीक्षाएँ प्रचलित की हैं, जिनमें नवयुवक लड़के और नवयुवती कन्याएँ सम्मिलित होने लगी हैं। हिंदी-काव्य के कुछ अच्छे ग्रंथ भी पाठ्य-पुस्तकों में रखे गए हैं। परन्तु अलंकार-विषय समझे विना काव्य को पूर्णतया समझ लेना दुरूह ही है, और यह विषय शिक्षक के समझाये विना आ नहीं सकता। कोई गुरु अलंकार-विषय का कोई ग्रंथ शिष्य को निःसंकोच-भाव से पढ़ा नहीं सकता, यही कठिनता दूर करने के लिये हमने यह ग्रंथ लिखा है।

प्राचीन ग्रंथों की अपेक्षा इस ग्रंथ में नीचे लिखी विशेषताएँ हैं—

१—अलंकार की परिभाषा चुनकर अत्यंत स्पष्ट और सरल पद्यों में लिखी गई है।

२—पुनः जहाँ जरूरत जान पड़ी है; वहाँ गद्य में उसकी विशद व्याख्या कर दी गई है।

३—प्रत्येक अलंकार के कई एक उदाहरण दिए गए हैं।

४—उदाहरण प्राचीन काव्य से चुने गये हैं।

५—जहाँ तहाँ विषद टिप्पणियाँ और सूचनाएँ भी दी गई हैं।

६—अलंकारों की बारीकियाँ और भेद गद्य में समझाए गए हैं।

७—यह समस्त ग्रंथ कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को निःसंकोच भाव से पढ़ा सकता है।

८—उर्दू, फ़ारसी तथा अँगरेजी भाषा के अलंकारों के साथ हिंदी-अलंकारों का मिलना भी दर्शाया गया है।

९—कई अलंकारों के विषय में प्राचीनों से मत-भेद और अपनी स्वतंत्र सम्मति भी लिखी गई है।

१०—कुछ अलंकारों के दोष भी लिखे गये हैं।

मनुष्य से भूल होती है। इस ग्रंथ में भी भूलें होंगी। सूचित किए जाने पर अगले संस्करण में भूलों का सुधार कर दिया जायगा।

विनीत—

भगवानदीन

प्राक्कथन

ईश्वर की कृपा तथा सर्व-काव्य-प्रेमियों की गुणग्राहकता से मुझे आज यह सुअवसर प्राप्त हुआ है कि इस ग्रंथकी सातवीं आवृत्ति कराने की आवश्यकता पड़ी। इसके लिये मैं पाठकों को धन्यवाद देता हूँ।

इस पुस्तक में मैंने कुछ टाइपों का हेर-फेर कर दिया है, क्योंकि पहले टाइप बेढंगे तौर पर लगे हुये थे, जिससे पुस्तक कुछ भद्दी सी जँचती थी। जहाँ कहीं कुछ छापेखाने की अशुद्धियाँ ज्ञात हुई हैं, उसे भी ठीक करा दिया है। पुस्तक के साथ 'दीन' जी की संक्षिप्त जीवनी और 'मंजूषा' की आलोचना भी लगा दी है। जीवनी 'दीन' जी के प्रिय शिष्य पं० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र बी० ए०, साहित्य-रत्न ने लिखी है। इस पुस्तक में जो अशुद्धियाँ ठीक की गई हैं, इन्हीं के मतानुसार की गई हैं। इसके प्रूफ-संशोधन में भी इन्हीं से हमें सहायता मिली है। इस बार आवश्यकतानुसार इस पुस्तक में टिप्पणियाँ भी लगाई गई हैं। इस कार्य को भी उक्त मिश्रजी ने बड़े परिश्रम, प्रेम और निःस्वार्थ भाव से कर दिया है। हमें मिश्रजी से जो सहायता मिली है उसके लिये हम मिश्रजी को धन्यवाद देते हैं। जो अशुद्धियाँ अब भी रह गई होंगी, उन्हें अगले संस्करण में ठीक कर दिया जावेगा। इस पुस्तक में छपते-छपते कुछ फार्मों के ओकार और अनुस्वार टूट गए हैं, जिसे पाठकगण स्वयं सुधार लें।

काशी

गुरुपूर्णिमा, सं० १९९० वि०

विनीत—

चन्द्रिकाप्रसाद

मैनेजर—साहित्य-भूषण-कार्यालय,

बनारस सिटी

संपादकीय

'मंजूषा' का चौथा संस्करण प्रकाशित होने पर लालाजी ने यह विचार प्रकट किया कि हम 'मंजूषा' के अलंकारों का वर्गीकरण करना चाहते हैं। साथ ही उदाहरणों का क्रम ठीक करके इसमें उपयुक्त टिप्पणियाँ भी लगा देने की इच्छा है। उस समय 'मंजूषा' की एक-एक प्रति इसी विचार से उन्होंने अपने पाँच शिष्यों को दी थी। अगले संस्करण का समय आने पर लालाजी ने वर्गीकरण की चर्चा फिर छेड़ी। उस समय मैंने अपनी प्रति में जो संकेत लिखे थे, उन्हीं के आधार पर एक सूची बनाकर उनकी सेवा में समर्पित की। पर शीघ्रता के कारण पुस्तक छप गई, वर्गीकरण वाला विचार अगले संस्करण के लिये रोक रखा गया।

हिंदी साहित्य के दुर्भाग्य से सं० १९८७ में लालाजी का काशीवास हो गया, इसीलिये वर्गीकरण की योजना जहाँ-की तहाँ पड़ी रह गई। इधर 'मंजूषा' का छठा संस्करण निकलने पर मुझसे उसकी भूमिका लिखने का अनुरोध किया गया। उस समय मैंने अपने लेख में टिप्पणियों के अभाव की चर्चा की थी। इस संस्करण के समय उक्त कार्य गुरुवाइन जी ने मेरे ही गले मढ़ दिया। जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार करके किया! मूल-पुस्तक के अलंकारों का वर्गीकरण करने का मुझे क्या अधिकार! इस लिये केवल उदाहरणों, सूचनाओं तथा विवेचनों को क्रम से लगाकर कठिन शब्दों की पाद-टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। चित्रालंकार के पद्यों में 'कामधेनु' टिप्पणियाँ इसलिये नहीं दी गईं कि उनके अर्थ में बड़ी खींच-तान करनी पड़ती; और उनका अर्थ न जानने से विद्यार्थियों की कोई हानि भी नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ पद्यों के पाठ ठीक न जँचने के कारण लालाजी द्वारा संपादित मूल-ग्रंथों के आधार पर परिवर्तित कर दिए गए हैं।

समय-समय पर मेरी अनुपस्थिति में कुछ फार्मों के छपने से कहीं-कहीं कुछ अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। पाठक उन्हें सुधार लें। यदि मेरे इस प्रयत्न के कारण विद्यार्थियों को कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

गुरु पूर्णिमा, १९९० वि०
ब्रह्मनाल, काशी

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

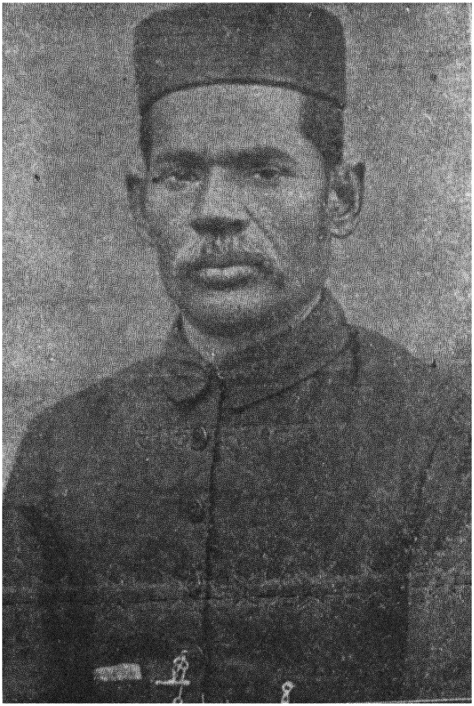

लाला भगवानदीन

'दीन' जी और 'मंजूषा'

(जीवनी)

लाला भगवानदीन का जन्म बड़ी तपस्या के उपरांत हुआ था। इनकी माता ने इनके ऐसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति के लिये भगवान् भुवन् भास्कर का बड़ा कठोर व्रत किया था। अधिक अवस्था हो जाने पर भी कोई संतति न होने से इनके पिता मुंशी कालिकाप्रसादजी बड़े चिंतित रहा करते थे, पर एक साधु के आदेशानुसार उन्होंने अपनी पत्नी को रविवार के दिन उपवास करने और सूर्य को अखंड दीपज्योति दिखलाने की आज्ञा दी। ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप में वे उदयोन्मुख सूर्य की ओर प्रज्ज्वलित घृत-दीप लेकर खड़ी हो जाया करतीं, और ज्यों-ज्यों सूर्य भगवान् आकाश में पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते जाते वे भी उनका ही अनुगमन करके उनके सम्मुख दीप-ज्योति दिखाती रहतीं। संध्या-समय पूजनोपचार के पश्चात् वे उसी स्थान पर रात्रि में शयन भी करतीं। दो रविवारों तक तो उन्होंने यह घोर व्रत बड़ी सहिष्णुता के साथ किया, पर तीसरे रविवार को वे चक्कर आ जाने से गिर पड़ीं।

इस कठिन तपोव्रत का फल यह हुआ कि संवत् १९२३ विक्रमीय की श्रावण शुक्ला छठ को उन्होंने पुत्र-रत्न प्रसव किया। भगवान् (सूर्य) का दिया हुआ समझकर पुत्र का नाम 'भगवान दीन' रखा गया।

'दीन' जी के पूर्वपुरुष श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ थे और उन्हें नवाबों के जमाने में 'बख्शी' की उपाधि मिली थी। वे लोग पहले रायबरेली में रहा करते थे, किंतु सन् सत्तावनवाले

विद्रोह के समय उन लोगों ने अपना निवास-स्थान छोड़ दिया और रामपुर में जा बसे। वहाँ से वे फतेहपुर शहर से कोई दस कोस की दूरी पर बहुवा नामक कस्बे के पास 'बरवट' नाम के एक छोटे से गाँव में बस गए। इसी गाँव में 'दीन' जी का जन्म हुआ था।

'दीन' जी के पिता साधारण स्थिति के मनुष्य थे, इस कारण इन्होंने घर पर ही लड़के को पढ़ाना आरंभ किया। कायस्थ होने के कारण 'बिस्मिल्लाह' उर्दू और फारसी से ही हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनकी स्नेहमयी माता का गोलोकवास हो गया। जीविका-वश इनके पिता बुँदेलखंड में रहा करते थे; इसलिये वे पुत्र को भी अपने साथ लेते गए। ये अपने फूफा के यहाँ फारसी पढ़ने लगे, पर चार वर्ष पश्चात् ये फिर घर भेज दिए गए। वहाँ दो वर्ष तक मदरसे में पढ़ते रहे और घर पर अपने दादा से हिंदी भी सीखते रहे। सत्रह वर्ष की अवस्था में ये फतेहपुर के हाई स्कूल में भरती किए गए। मिडिल पास करने के बाद इनका विवाह भी कर दिया गया था। सात वर्ष में एंट्रेंस पास कर लेने पर ये प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला में कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजे गए। इनके पिता ने इनकी देख-रेख का भार अपने घनिष्ठ मित्र 'पुत्तू सोनार' को सौंप दिया था, जो बड़ी सावधानी और विश्वास-पात्रता के साथ 'दीन' जी को शिक्षा दिलाते थे, इनका पहला विवाह तक 'पुत्तू बापू' ने ही कराया था, पिताजी दूर रहने के कारण शीघ्रता में वहाँ पहुँच ही नहीं पाए।

'पुत्तू बापू' ने 'दीन' जी को अपनी गृहस्थी का भार सँभालने की आज्ञा दी। तदनुसार ये पढ़ते भी थे और

गृहस्थी सँभालने का प्रयत्न भी करते रहते थे। इसी से एफ़० ए० के आगे 'दीन' जी की पढ़ाई न चल सकी। अंत में ये 'कायस्थ-पाठशाला' में अध्यापक हो गए। डेढ़ साल के अनंतर ये प्रयाग के ही 'गर्ल्स-हाई-स्कूल' में फ़ारसी की शिक्षा देने लगे। चित्त न लगने के कारण छः मास पश्चात् ये छतरपुर (बुँदेलखंड) में 'महाराज-हाई-स्कूल' के सेकेंड मास्टर होकर चले गए। वहाँ जाने पर इनकी स्त्री का देहांत हो गया। इनका दूसरा विवाह कस्बा शादियाबाद (गाज़ीपुर) में मुंशी परमेश्वर दयाल साहब की पुत्री से हुआ और इन्हें अपनी दूसरी स्त्री को साथ ही रखना पड़ा। इनकी दूसरी पत्नी प्रसिद्ध कवियित्री 'बुँदेला बाला' थीं। 'दीन' जी ने स्वयं इन्हें कई ग्रंथ पढ़ाए थे, जिनमें 'बिहारी-सतसई' मुख्य थी।

लाला जी के दादा बड़े राम-भक्त और रामायण-प्रेमी थे। वे इनसे नित्य रामायण का पाठ सुना करते थे। 'दीन' जी का रामायण के प्रति तभी से अनुराग हो गया था। इन्होंने रामायण के सुंदरकांड की शिक्षा अपने पूज्य पिताजी से ही पाई थी। वे भी परम भगत थे। यद्यपि हिंदी का ज्ञान इन्हें पर्याप्त हो गया था, पर अभी पूरी विद्वत्ता प्रस्फुटित नहीं हुई थी। इनका अनुराग कविता की ओर लड़कपन से ही था, पर उसका परिमार्जन आवश्यक था। छतरपुर में इन्होंने अपने मित्रों के अनुरोध से कविता संबंधी दो सभायें स्थापित कीं—पहली 'कवि-समाज' और दूसरी 'काव्य-लता'। साथ ही 'भारती-भवन' नामक एक पुस्तकालय भी स्थापित किया। ये तीनों स्थान काव्यचर्चा के अड्डे थे। उक्त दोनों सभाओं में नौसिखुए कवि कविता करके सुनाया करते थे और पं० गंगाधर व्यास उनका

संस्कार कर दिया करते थे। प्रायः समस्या-पूर्तियाँ पढ़ी जाती थीं। व्यासजी से इन्होंने रामायण और अलंकारों का भी अध्ययन किया था उर्दू में 'दीन' जी पहले से ही कविता किया करते थे। अब हिंदी में भी इनकी काव्य प्रतिभा चमक उठी। इन्होंने कई छोटी-मोटी काव्य-पुस्तकें लिख डालीं, जिनमें से 'भक्ति-भवानी' और 'रामचरणांक-माला' विशेष उल्लेखनीय हैं। पहली पुस्तक पर इन्हें कलकत्ते की 'बड़ा बाजार लाइब्रेरी' ने एक स्वर्ण पदक प्रदान किया था।

कुछ दिनों बाद छतरपुर से भी 'दीन' जी का मन उचट गया। वस्तुतः ये एक विस्तृत साहित्य-क्षेत्र में कार्य करने के अभिलाषी थे, अतः ये काशी चले आए। यहाँ ये 'सेंट्रल-हिंदू-कालेज' में फारसी के शिक्षक हो गए और 'नागरी प्रचारिणी-सभा' में प्राचीन काव्य-ग्रंथों का संपादन भी करने लगे। इसी समय इन्होंने प्रसिद्ध वीर-काव्य 'वीर-पंचरत्न' के लिखने में हाथ लगाया था, जिसके लिखने का अनुरोध बुँदेला बाला ने किया। कुछ दिनों के पश्चात् जब नागरी-प्रचारिणी-सभा 'हिंदी-शब्द-सागर' बनवाने लगी, तब ये भी उसके उपसंपादक चुने गए। बहुत-कुछ काम हो चुकने पर इन्होंने अपनी स्पष्टवादिता के कारण संपादन से हाथ खींच लिया। इस कार्य से छूटते ही 'हिंदी-विश्वविद्यालय' में हिंदी के लेक्चरर हो गए, जहाँ ये अंत तक रहे।

काशी में इन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं को प्रोत्साहन देने के लिये 'हिंदी-साहित्य-विद्यालय' की स्थापना की। कुछ दिनों के लिये ये गया भी गए थे, और वहाँ की प्रसिद्ध पत्रिका, 'लक्ष्मी' का संपादन भी किया था। अंत में ये काशी में स्थायी रूप से रहने लगे और यहीं आपका

'काशीवास' भी हुआ। अंतिम दिनों में ये अपने गाँव 'बरबट' गए हुये थे। वहाँ से आपके बाएँ अंग में एक प्रकार का जहरबाद (Erysipela-) हो गया था। बाईस दिनों की विकट वेदना के बाद सं० १९८७ के श्रावण मास की शुक्ला तृतीया को आपने अपने 'हिंदी-साहित्य-विद्यालय' में शरीर छोड़ा।

लालाजी हिंदी के बड़े भारी काव्य-मर्मज्ञ थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। ये कवि, लेखक, समालोचक, संपादक, अध्यापक और व्याख्याता भी थे। इन्होंने कितने ही ग्रंथ रचे हैं। केशवदास के दुर्बोध ग्रंथों की सरल टीकाएँ लिखी हैं और रीति ग्रंथ बनाये हैं। इनके ग्रंथों में से प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम ये हैं—'वीर-पंचरत्न', 'नवीन-बीन', 'केशव-कौमुदी', 'प्रिया-प्रकाश', 'बिहारी-बोधिनी', तुलसीदास के ग्रन्थों की टीका, 'सूक्ति-सरोवर', 'सूर-पंचरत्न', 'केशव-पंचरत्न' 'अलंकार-मंजूषा' 'व्यंगार्थ-मंजूषा' आदि। इनके संपादित ग्रंथ तो बीसियों हैं। फुटकर कविताएँ इन्होंने बहुत लिखी हैं, जिनमें से थोड़ी बहुत समय-समय पर पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। इधर ये 'मित्रादर्श' और 'महाराष्ट्र देश की वीरांगनाएँ' नामक दो बड़े काव्य लिख रहे थे, पर वे अब अधूरे पड़े हैं।

लालाजी बड़े सीधे-सादे, उद्योगशील, सत्यवादी, निष्कपट, स्पष्टवादी, सच्चरित्र और स्वस्थ शरीर के पुरुष थे। वृद्धावस्था में भी 'दीन' जी जो इतना अधिक साहित्यिक कार्य कर रहे थे, इसका मुख्य कारण इनका स्वास्थ्य था। अपने जीवन भर में लंबी बीमारी इन्हें दो ही बार भोगनी पड़ी। एक बार इन्हें क्षयरोग हो गया था, जो बहुत दिनों में अच्छा हुआ और दूसरी बार जहरबाद हुआ, जो शरीर के साथ ही गया। लालाजी के कोई संतति नहीं है। काशी आने पर बालाजी का

शरीरांत हो जाने पर लालाजी ने उन्हीं की बहन से तीसरी शादी की, जिन्हें ये विधवा करके छोड़ गए। बाला जी से एक पुत्र हुआ था, जो दस मास बाद मर गया। पहली शादी जो केसवाही, जि० हमीरपुर में हुई थी, उससे एक लड़की भी थी, जो ब्याही जाने के कुछ दिनों बाद मर गई।

(आलोचना)

शैली अथवा रीति का विवेचन करने के लिये गद्य की विशेष आवश्यकता हुआ करती है। संस्कृत-साहित्य में पहले सभी विषय पद्य में ही रहा करते थे, इसलिये उनके निमित्त सूत्रों का आविष्कार किया गया। यही कारण था कि उनकी व्याख्या के लिये कारिका और वृत्ति की आवश्यकता पड़ी। यद्यपि संस्कृत-साहित्य में विवेचना के उपयुक्त गद्य का विकास नहीं हो पाया था, पर विवेचना उसमें बहुत विस्तार से हुई है। रीतिशास्त्र के ग्रंथों में जिस तर्कसिद्ध शैली का आश्रय लिया गया था, उसने इस विषय में बहुत पूर्णता ला दी थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत-रीतिकारों के संबंध में एक बात विशेष रूप से और उल्लेखनीय है। प्रत्येक रीतिकार केवल शास्त्रीय विवेचना में ही लगता था, स्वयं काव्य निर्माण में वह अपना हाथ नहीं डालता था। रीति या शैली की पद्धतियों का निरूपण पूर्ववर्ती कवियों या लेखकों के ग्रंथों के ही आधार पर होता है, वे ही उसके लिये प्रमाण होते हैं। इसलिये रीतिकार वर्ग का उनसे सर्वथा भिन्न रहना ही श्रेयस्कर होता है। हिंदी में उक्त दोनों ही बातें नहीं थीं। न तो गद्य में उनका विवेचन ही होता था और न लक्ष्य-ग्रंथकार एवं लक्षण-ग्रंथकारों के वर्ग ही अलग-अलग थे। इसका परिणाम यह हुआ कि

रीति-शास्त्र का विवेचन हिंदी में भली-भाँति हुआ ही नहीं। केवल संस्कृत-साहित्य के कुछ ग्रंथों का आधार लेकर पद्य में लक्षणों का एक छोटा-मोटा ढाँचा खड़ा कर दिया जाता था। गद्य में कुछ न लिखने का कारण यह था कि प्राचीन काल में हिंदी के गद्य का विकास ही नहीं हुआ था, वह पद्य के ही योग्य था, गद्य के योग्य नहीं। इसलिये ज्यों ही गद्य ने कुछ विकसित रूप धारण किया, उसमें लोग रीति के विवेचन की प्रवृत्ति दिखलाने लगे।

अलंकार लिखने अथवा बोलने की एक विशेष शैली है। इसके संबंध में भी वही बात समझनी चाहिये जो हम ऊपर लिख आये हैं। कुछ विद्वान् अलंकारिक अथवा रसाभ्यासी ऐसे अवश्य दिखाई देते हैं जिन्होंने विवेचन पर ध्यान दिया था; जैसे—श्रीपति, सूरति मिश्र, कुलपति आदि पर गद्य का उपयुक्त साधन न होने से वे बेचारे भी असफल ही रहे। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के बाद गद्य ने ऐसा रूप धारण कर लिया था कि हिंदी में भी भली-भाँति शास्त्रीय विवेचन हो सके, इसलिये अलंकार आदि के जो ग्रंथ इधर बने उनमें गद्य का भी भरपूर आश्रय लिया गया। सबसे पहला ग्रंथ 'जसवंत-जसोभूषण' है। इसमें संस्कृत की तर्कात्मक शैली का आधार इतना अधिक लिया गया है कि उसे अच्छा अलंकाराभ्यासी ही समझ सकता है, सब नहीं। इसके पश्चात् सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का 'अलंकार-प्रकाश' और बाबू जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का 'काव्य-प्रभाकर' प्रकाशित हुआ। 'अलंकार-प्रकाश' आचार्य मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' के आधार पर बना है। यह ग्रंथ है तो अवश्य विवेचनात्मक, पर इसमें संस्कृत के पारि-

भाषिक शब्दों और जटिल शैली का ऐसा अनुकरण किया गया है कि यह भी दुरूह हो गया है। गद्य में रीति-शास्त्र के लिखने का जो उद्देश्य है, वह इससे भी पूरा नहीं हुआ। 'भानु' जी ने अलंकारों के कई उदाहरण दिए हैं और विषय को सरल बनाने का उद्योग भी किया है, पर विवेचन की कमी के कारण और अलंकारों का व्यापक अभ्यास न होने से इसमें भी बहुत कुछ अपूर्णता रह गई है। कहने का तात्पर्य यह कि किसी नवसिखुए के लिये अलंकार का ज्ञान प्राप्त कराने में ये तीनों ही ग्रंथ बहुत-कुछ असमर्थ थे। यही नहीं इन ग्रंथों में एक बड़ी भारी त्रुटि यह थी कि उदाहरण शृंगारिक भी रखे गए थे। कहीं-कहीं तो घोर शृंगार भी आ गया था। स्वाध्याय में तो यह बात नहीं खटक सकती थी, पर पाठशालाओं और विद्यालयों में पढ़ाते समय इस त्रुटि पर बहुत-से लोगों का ध्यान जाया करता था।

इस बात पर सब से प्रथम 'दीन' जी की दृष्टि गई। उन्होंने विद्यार्थियों के योग्य 'अलंकार-मंजूषा' नामक प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित कराया। इस ग्रंथ में यों तो कितनी विशेषताएँ हैं, जिनका उल्लेख उन्होंने स्वयं अपने 'वक्तव्य' में किया है, किंतु उनमें से दो तीन विशेषताएं ऐसी हैं जिन्होंने ग्रंथ का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ा दिया है। एक तो इसमें एक भी शृंगारी पद्य नहीं रखा गया है। दूसरे इसमें उदाहरण इतने अधिक दिए गए हैं कि विषय को हृदयंगम करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं रह जाती। साथ-ही-साथ उन उदाहरणों का लक्षणों के साथ भली-भाँति समन्वय भी दिखाया गया है। लालाजी ने दो मिलते-जुलते अलंकारों की भिन्नता भी भली-भाँति समझाई है। कहने का तात्पर्य यह

है कि पुस्तक को सर्वांगीण सुंदर, सुबोध और समयोपयुक्त बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। 'दीन' जी ने संस्कृत-साहित्य की वादात्मक पद्धति नहीं ग्रहण की है, क्योंकि ऐसा करने से विषय विद्यार्थियों के लिये बहुत जटिल हो जाता; पर यथास्थान नये पुराने आचार्यों के मतों पर प्रकाश अवश्य डाला है। कई स्थानों पर नई खोज भी की गई है; जैसे—स्मरण, दीपक आदि में। फिर भी संस्कृत-शास्त्र का अच्छा अध्ययन न होने के कारण दो-एक स्थानों पर इन्होंने भ्रम-वश कुछ-का-कुछ लिख दिया है। जैसे, श्लेष के दो भेद (शब्द और अर्थ) आपने इस प्रकार किए हैं—'जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है (शब्द-श्लेष) और जहाँ कवि का तात्पर्य कई अर्थों से होता है (अर्थ-श्लेष)।' अलंकाराभ्यासी जानते हैं कि वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। इसी प्रकार क्रम (यथासंख्य) के 'भग्न-क्रम' और 'विपरीत' नामक भेद हैं। फिर भी कहना पड़ता है कि हिंदी में विद्यार्थियों के योग्य ऐसी उत्तम अलंकार की पुस्तक आज तक नहीं निकली, यद्यपि अलंकार के ग्रंथ नित्य ही निकल रहे हैं। अलंकारों में प्रवेश पाने के लिये 'मंजूषा' अद्वितीय पुस्तक है।

'अलंकार-मंजूषा' में एक विशेषता और है। अलंकारों के उदाहरण बहुत ही साफ़, और प्रचलित रखे गए हैं। 'तुलसी' का 'रामचरित मानस' साहित्य-संसार और जन-समाज दोनों में बहुत प्रचलित है। सभी लोगों की जिह्वा पर उसके अधिकांश छंद चढ़े रहते हैं। 'अलंकार-मंजूषा' में बहुत कम ऐसे अलंकार हैं जिनमें 'रामचरित-मानस' के उदाहरण न हों। इसके अतिरिक्त शेष उदाहरण भी प्रचलित ग्रंथों के ही हैं। इसका कारण यह कि 'दीन' जी ने 'मंजूषा' का निर्माण केवल अलंकार-ग्रंथों

के सहारे पर ही नहीं कर दिया है। वे स्वयं उस विषय के भीतर पैठे हैं और उसे व्यावहारिक क्षेत्र में भी लाए हैं। बहुत दिनों तक विद्यार्थियों को अलंकार पढ़ाने और उसका क्रियात्मक अभ्यास कर लेने पर इस ग्रंथ का प्रणयन किया गया है। 'दीन' जी बड़े अच्छे अलंकाराभ्यासी थे, उनका अलंकार-ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वे हिंदी के इस नये युग के एक आचार्य थे। इधर आए दिन अलंकाराचार्यों की उत्पत्ति हो रही है। पर हमारा विश्वास है कि किसी को भी बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस वर्षों तक विद्यार्थियों को अलंकाराभ्यास कराने का अवसर न मिला होगा। सब में केवल 'पुस्तक-पांडित्य' ही देखने को मिलेगा। 'दीन' जी का अलंकारों का इतना अनुराग था कि उन्होंने अपनी प्रत्येक टीका में पद्यों का अलंकार-निर्णय भी किया है। लालाजी में 'पुस्तक-पांडित्य' नहीं, वरन् 'प्रयोग-पांडित्य' था। यही कारण है कि उनकी पुस्तक अधिक व्यावहारिक है। 'मंजूषा' का प्रचार विद्यार्थि-वर्ग में बहुत अधिक है। इस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं, इसी से अनुमान किया जा सकता है कि लोग इसका कितना आदर और व्यवहार करते हैं।

ब्रह्मनाल, काशी
गुरु-पूर्णिमा १९९८ वि० } विश्वनाथप्रसाद मिश्र

श्रीराम्

अलंकार-मंजूषा

(पहला पटल)

—: * :—

अलंकार

किसी वाक्य के वर्णन करने का 'चमत्कारिक' ढंग 'अलंकार' कहलाता है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि "जिस सामग्री से किसी वाक्य में रोचकता वा चमत्कार आ जाय वह सामग्री 'अलंकार' कहलाती है।"

जैसे गहने पहनने से किसी व्यक्ति का शरीर कुछ अधिक रोचक देख पड़ता है, वैसे ही अलंकार से वाक्य की रोचकता बढ़ जाती है। 'अलंकार' काव्य का एक आवश्यक अंग है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि बिना अलंकार के कविता बन ही नहीं सकती, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अलंकार से कविता की मनोहरता बहुत अधिक बढ़ जाती है।

मुख्य अलंकार तीन प्रकार के होते हैं :—

(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) जहाँ शब्दों में चमत्कार पाया जाय, वहाँ शब्दालंकार कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि उन शब्दों को बदल कर उनके स्थान में उनके पर्यायवाची शब्द रख दिये जायँ, तो वह चमत्कार न रहेगा।

(२) जहाँ अर्थ में चमत्कार पाया जाय, वहाँ 'अर्था-लंकार' माना जाता है। इसका तात्पर्य यह कि वह चमत्कार

निकाल कर यदि उस वाक्य का केवल तात्पर्य कहा जाय तो वह वाक्य बिल्कुल सादा और अरोचक हो जायगा। जैसे कहना यह है कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है", तो इस वाक्य को सीधे यों न कहकर कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है," यों कहें कि (क) अमुक व्यक्ति दूसरा बृहस्पति है, (ख) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से लज्जित होकर बृहस्पति पीले हो गए हैं, (ग) अमुक व्यक्ति बृहस्पति के समान है, (घ) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से हारकर बृहस्पति दिन में अपना मुँह नहीं दिखलाते, (ङ) अमुक व्यक्ति मनुष्य नहीं बृहस्पति है इत्यादिः तो इस प्रकार के कथनों में कुछ विशेष चमत्कार आ जाता है। इसी चमत्कार को अर्थालंकार कहते हैं। यह अलंकार अर्थ पर निर्भर रहता है, इसलिये इसके शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदल दिए जा सकते हैं।

(३) ऊपर कहे हुये अलंकारों में किसी प्रकार के एक से अधिक अलंकारों के सम्मेलन को 'उभयालंकार' कहते हैं, परन्तु उसमें नियम यह है कि जिस अलंकार की मुख्यता समझी जायगी वही अलंकार मान लिया जायगा।

शब्दालंकार

नीचे लिखे हुए मुख्य १० शब्दालंकार सर्वमान्य हैं :—

(१) अनुप्रास (२) चित्र (३) पुनरुक्ति-प्रकाश (४) पुनरुक्तिवदाभास (५) प्रहेलिका (६) भाषा-समक (७) यमक (८) वक्रोक्ति (९) वीप्सा और (१०) श्लेष।

(१) अनुप्रास

दो०—व्यंजन सम बरु स्वर असम, अनुप्रासऽलंकार।
छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट अरु, अंत्य पाँच बिस्तार॥

विवरण—जहाँ व्यंजनों की समानता हो, चाहे उनके स्वर मिलें वा न मिलें, उसे 'अनुप्रास-अलंकार' कहते हैं। इसके ५ भेद हैं—(१) छेक (२) वृत्त (३) श्रुति (४) लाट (५) अंत्य।

सूचना—फारसी अरबी, तथा उर्दू में अनुप्रास और यमक-अलंकारों को "तजनीस" कहते हैं। हिन्दी की तरह इन भाषाओं में भी इन अलंकारों के अनेक भेद हैं।

(१) छेकानुप्रास

दो०—बर्न अनेक कि एक की आवृत्ति एकै बार।
सो छेकानुप्रास है, आदि अंत निरधार॥

विवरण—जहाँ एक अक्षर की वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, चाहे वह आदि में हो चाहे अंत में। जैसे—

१—दोहा—राधा के बर-बैन सुनि, चीनी चकित सुभाय।
दाख[१] दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

यहाँ 'बर' और 'बैन' में 'ब' की, 'चीनी' और 'चकित' में 'च' की, 'दाख' और 'दुखी' में 'द' की, 'मिसरी' और 'मुरी' में 'म' की, तथा 'सुधा' और 'सकुचाय' में 'स' की आवृत्ति शब्दों के आदि में हुई है।

२—दोहा—जन-रंजन भंजन-दनुज,[२] मनुज-रूप सुर भूप।
विश्वबदर-इव[३] धृत-उदर[४], जोवत सोवत सूप॥

इस उदाहरण के 'रंजन' और 'भंजन' में 'दनुज' और 'मनुज' में, 'बदर' और 'उदर' में, 'जोवत'[५] और 'सोवत' में अंत के दो-दो अक्षरों की आवृत्ति एक बार है। 'रूप' और 'भूप' में अंत में एक अक्षर की आवृत्ति है। 'विश्व' और 'बदर' में, 'सोवत' और 'सूप' में आदि में एक-एक अक्षर की आवृत्ति है।

---

१ मुनक्का। २ राक्षस। ३ बैर के समान। ४ पेट। ५ देखता है।

३—कविता—बाँधे द्वार का करी[1] चतुर चित्तकाक[2] री,
सो उमिर बृथा करी न राम की कथा करी।
पाप को पिनाक[3] री, न जानै नाक[4] नाकरी,[5]
सुहारिल[6] को नाकरी[7], निरन्तर ही ना करी॥
ऐसी सूमता करी, न कोऊ समता करी,
सु 'वेनी' कविता करी, प्रकास तासु ताकरी[8]।
देव-अरचा[9] करी न ज्ञान-चरचा करी,[10]
न दीन पै दया करी न बाप की गया करी॥

विवरण—इसमें 'का करी' और 'काक री' में तीन अक्षरों की आवृत्ति, 'बृथा' और 'कथा' में 'थ' की आवृत्ति, 'सूमता' और 'समता' में तीन अक्षरों की आवृत्ति, 'अरचा' और 'चरचा' में दो की आवृत्ति, 'दया' और 'गया' में एक अक्षर की आवृत्ति अंत में है। 'दीन' और 'दया' में 'द' की आवृत्ति आदि में है।

(२) वृत्यनुप्रास

दो॰—वर्न अनेक कि एक की, जहँ सरि कैयो बार।
सो है वृत्यनुप्रास जो, परै वृत्ति-अनुसार॥

विवरण—छेकानुप्रास की तरह आदि वा अंत में एक वर्ण की वा अनेक वर्णों की समता वृत्तियों के अनुकूल कई बार पड़े, उसे वृत्यानुप्रास कहेंगे।

सूचना—इस अलंकार को समझने के लिये पहले यह समझ लेना चाहिये कि हिन्दी कविता में वृत्तियाँ तीन हैं—

---

१ हाथी। २ कौवे के समान। ३ पुराना धनुष। ४ इज्जत। ५ स्वर्ग। ६ एक पक्षी जो अपने चंगुल में लकड़ी लिये रहता है। ७ लकड़ी। ८ ताको, देखो। ९ पूजा। १० गया में पितृ श्राद्ध करना।

(१) उपनागरिका। (२) परुषा और (३) कोमला। इन्हीं तीनों के अन्य नाम क्रम से वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली भी हैं।

(१) माधुर्यगुणसूचक वर्ण अर्थात् टवर्ग को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण जिस कविता में हों उसे 'उपनागरिका वृत्ति' कहते हैं।

(२) टवर्ग, द्वित्त वर्ण, रेफ और श, ष इत्यादि वर्ण और लंबे समास तथा संयुक्त वर्ण जिसमें अधिक हों उसे परुषा वृत्ति कहते हैं।

(३) य, र, ल, व, स, ह और छोटे समास वा समास रहित शब्द जिसमें अधिक हों उसे 'कोमलावृत्ति' कहते हैं।

शृंगार, करुणा और हास्य-रस की कविता उपनागरिका में, रौद्र, वीर और भयानक रस की कविता परुषा में और शांत, अद्‌भुत और वीभत्स रस की कविता कोमलावृत्ति में अच्छी लगती है।

(उपनागरिकावृत्ति के अनुकूल)

१—धर्म धुरीन[1] धीर नय-नागर[2]। सत्य सनेह सीलसुखसागर॥
विरति[3] विवेक विनय विज्ञाना। बोध जथारथ[4] बेद पुराना॥

२—पद—रघुनंद आनन्द-कन्द कोसल[5] चन्द दसरथ-नन्दनं।

३—कवित्त—भनत 'मुरार' देस देसन में कीर्ति गाई,
ऐसी चपलाई कहौ छाई है कवन में।
नट में न नारि में न नय[6] में न नैनन में
मृग में न मारुत में मोन में न मन में॥

---

१ धर्म की धुरी धारण करने वाले, धर्मिष्ठ। २ नीति-निपुण। ३ वैराग्य। ४ यथार्थ, ठीक। ५ अयोध्या का राज्य। ६ नीति

४—पद—सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।

५—क०—देव-बंदिनी के निमि[1] बंस-चंदिनी के जुग,
नीके पद-कंज, मिथिलेस-नंदिनी के हैं।

६—दो०—लोपे[2] कोपे इन्द्र लों, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल॥

(परुषावृत्ति के अनुकूल)

१—दो०—वक्र[3] बक्र[4] करि पुच्छ करि, रुष्ट-ऋच्छ[5] कपि गुच्छ[6]।
सुभट-ठट्ट[7] घन-घट्ट[8]-सम, मर्दहिं रच्छन[9] तुच्छ॥

२—क०—बारि[10] टारि डारौं कुंभकर्नहिं बिदारि डारौं,
मारौं मेघनाद आजु यों बल-अनन्त[11] हौं।
कहै 'पद्माकर' त्रिकूटहू[12] को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन[13] को अन्त हौं॥
अच्छहिं[14] निरच्छ[15] कपि रुच्छ[16] ह्वै उचारौं इमि,
तोम तिच्छ तुच्छन[17] को कछुवै न गंत[18] हौं।
जारि डारौं लंकहिं उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावनैं तो मैं हनुमंत हौं॥

३—छं०—मुंड कटत कहुँ रुंड नटत[19] कहुँ सुंड पटत घन[20]।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख-वृद्धि रसत[21] मन॥

---

१ जनक के पूर्वपुरुष। २ पूजा के लुप्त होने पर। ३ वक्त्र मुख। ४ टेढ़ा। ५ क्रुद्ध-भालु। ६ समूह। ७ झुंड। ८ बादलों की घटा। ९ राक्षस। १० जल। ११ अत्यंत बलवाला। १२ लंका के तीन ऊँचे गिरिशिखर (सुवेला, लंका, निकुंभिला) १३ निशाचर। १४ अक्षय-कुमार। १५ निःसहाय। १६ रुष्ट। १७ तीक्ष्ण और तुच्छों का समूह। १८ गिनता हूँ। १९ नाचते हैं। २० बहुत से। २१ फैलती है, सरसती है।

भूत फिरत करि बूत[1] भिरत सुर-दूत घिरत[2] तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत[3] धुनि डंडि[4] मचत तहँ॥

इमि ठानि घोर घमासान अति, 'भूषन' तेज कियो अटल।
सिवराज साहि-सुव खग्ग-बल,[5] दलि अडोल बहलोल-दल[6]॥

४—छं०—क्रुद्ध फिरत अति जुद्ध जुरत नहिं रुद्ध[7] मुरत भट।
खग्ग बजत अरि वग्ग[8] तजत सिर पग्ग[9] सजत चट॥
दुक्कि[10] फिरत मद झुक्कि[11] भिरत करि कुक्कि[12] गिरत गनि।
रंग-रकत[13] हर-संग छकत चतुरंग थकत भनि॥

इमि करि संगर[14] अति ही विषम, 'भूषन' सुजस कियो अचल।
सिवराज साहि-सुव खग्ग-बल, दलि अडोल बहलोल-दल॥

५—छं०—खग काक कंक[15] सृगाल। कटकहिं कठिन कराल॥

(कोमला-वृत्ति के अनुकूल)

१—चौ०—सत्य-सनेह सील-सुख-सागर।

२—दो०—स्यामल-गौर किसोर वर,[16] सुन्दर सुखमा-ऐन[17]।

३—क०—ख्याल ही की खोल[18] में अखिल[19] ख्याल खेलि खेलि,
गाफिल ह्वै भूलौ दुख दोष की खुस्याली तें।
लाख-लाख भाँति अभिलाष लखे लाख अरु,
अलख[20] लख्यौ न लख्यौ लालन[21] की लाली तें।
हरि-हर 'देव' प्रभु सों न पन पाली प्रीति,

---

१ बल, जोर। २ घिरते हैं, जुटते हैं। ३ गणों से युक्त होकर। ४ द्वंद्व युद्ध। ५ खग के जोर से। ६ सेना। ७ लड़ने में लगे हुए। ८ घोड़े की डोर (बाग)। ९ पगड़ी। १० छिपकर। ११ मदमस्त होकर। १२ कूक, शब्द। १३ रक्त, खून। १४ युद्ध। १५ गृद्ध। १६ श्रेष्ठ। १७ शोभा के घर। १८ चोगा। १९ संपूर्ण। २० ब्रह्म। २१ रत्न।

दै-दै करतालो न रिझायौ बनमाली[1] तैं।
झूठो झिलमिल[2] की झलक ही मै भूलौ जल-
मल की पखाल[3] खल खालो[4] खाल[5] पाली तैं॥

४—क०—रावन से रावन से रामजू सों खेलि-खेलि,
खलनि की खालनि खिलौना ज्यों खिलाइगे।
काटे काल-व्याल ऐसे, बलो बलभद्र-ऐसे,
बलि ऐसे बालि से बबूला[6] से बिलाइगे।

इन उदाहरणों में र, ख और ल की अनेक आवृत्तियाँ हैं।

५—दो०—जप माला छापा-तिलक, सरै न[7] एकौ काम।
मन कांचे नांचे वृथा, साँचे रांचे[8] राम।

सूचना—छेक और वृत्ति अनुप्रासों को अँगरेजी में 'अलिटरेशन' (Alliteration) कहते हैं। नीचे लिखा हुआ उदाहरण शेक्सपियर ने लार्ड ऊलजी को लक्ष्य करके बहुत अच्छा लिखा है—

Begot by butcher, by bishop bred.
How high His Highness holds his haughty head[9].

(३) श्रुत्यनुप्रास

जहाँ तालु-कंठादि की, व्यंजन-समता होय।
सोई श्रुत्यनुप्रास है, कहत सुघर कवि लोय॥

विवरण—जहाँ तालु, कंठ आदि स्थानों से उच्चरित

---

१ श्रीकृष्ण। २ यमक। ३ मशक। ४ केवल। ५ चमड़ा। ६ बुल-बुला। ७ नहीं होता। ८ अनुरक्त होता है। ९ कसाई से उत्पन्न और पुरोहित के पाले हुये श्रीमान् अपना क्रोध से भरा दिमाग इतना ऊँचा कैसे किये हुये हैं।

होनेवाले व्यंजनों की अर्थात् एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों की समता हो, उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं। स्मरण रहना चाहिये कि—

(१) अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग (:) का उच्चारण कंठ से होता है।

(२) इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ और श का उच्चारण तालु से होता है।

(३) ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष का मूर्द्धा से होता है।
(३) लृ, त, थ, द, ध, न, ल और स का दाँतों से होता है।
(४) उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म का उच्चारण ओठों से होता है।
(६) ए, ऐ, का उच्चारण कंठ और तालु से होता है।
(७) ओ और औ का उच्चारण कंठ और ओंठ से।
(८) व का दांत और ओंठ से।
(९) पंचम वर्ण और अनुस्वार का नासिका से।

सूचना—इस विचार से जब कविता में ऐसे शब्द रखे जाते हैं जो एक स्थानीय उच्चारणवाले अक्षरों से बने हों, तो उस कविता में एक प्रकार की धारा-प्रवाहिनी शक्ति और मधुरता आ जाती है और उसका सुनना कानों को प्रिय लगता है। इसके विरुद्ध टवर्गवाले शब्द कानों में खटकते हैं।

'तुलसिदास' सोदत[1] निसि-दिन देखत तुम्हारि निठुराई।

इसमें अधिकतर दंत्य अक्षर आये हैं इससे यह पद बहुत मीठा जान पड़ता है और—

पर क्या न विषयोत्कृष्टता[2] करती विचारोत्कृष्टता[3] ?

---

१ दुःख पाता है। २ विषय की उत्तमता। ३ विचार की उत्तमता।

इस रचना में शब्दों का संगठन वैसा नहीं है, इसलिये कानों को कटु जान पड़ता है। इसी तरह और भी समझ लो। 'तुलसी' और 'पद्माकर' की कविता में यह गुण अधिक है।

(४) लाटानुप्रास

दो०—सब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहिं भेद।
सो लाटानुप्रास है, भाषत सुकवि अखेद॥

विवरण—पहले कहे हुए अनुप्रास अक्षरों के अनुप्रास हैं, पर लाटानुप्रास शब्द का अनुप्रास है। शब्द और उसका अर्थ वही रहे, केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय, उसे 'लाटानुप्रास' कहते हैं। यह अनुप्रास 'लाट'[1] देशवाले कवियों का निकाला हुआ है। इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

उदाहरण—

१—दो०—तीरथ-व्रत-साधन कहा, जो निसदिन हरि-गान।
तीरथ-व्रत-साधन कहा, बिन निसदिन हरि-गान॥

यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति है केवल तात्पर्य में भेद है; अर्थात् जो मनुष्य रात-दिन हरि-यश गान करता रहे तो उसके लिये तीर्थ, व्रत और साधन आवश्यक नहीं हैं, जिस तीर्थ, व्रत और साधन में रात-दिन हरि यश गान का विधान न हो वह तीर्थ, व्रत और साधन व्यर्थ है।

२—दो०—राम हृदय जाके बसै, विपति सुमंगल ताहि।
राम हृदय जाके नहीं, विपति सुमंगल ताहि॥

जिसके हृदय में राम बसते हैं, उसके लिये विपत्ति भी

१ गुजरात में भड़ौंच और अहमदाबाद नगर जहाँ हैं वहीं यह देश था।

सुमंगल हो जाती है और जिसके हृदय मे राम नहीं हैं उसके लिये सुमंगल भी विपत्ति ही है।

३—दो०—औरन के जाँचे[1] कहा, नहिं जाँच्यो सिवराज।
औरन के जाँचे कहा जो जाँच्यो सिवराज॥

४—दो०—मुधा[2] तीर्थ को भ्रमन है, रहैं हरी चित जासु।
मुधा तीर्थ को भ्रमन है, रहैं न हरि चित जासु॥

कभी-कभी कोई एक शब्द अन्य शब्दों के साथ समास द्वारा मिल जाता है; जैसे—

४—क०—तुरमती[3] तहखाने गीदर गुसुलखाने,[4]
सूकर सिलहखाने[5] कूकत करीस[6] हैं॥
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,[7]
पाढ़े[8] पीलखाने और करंजखाने[9] कीस हैं॥
'भूषन' सिवाजी गाजी[10] खग्ग सों खपाये खल,
खाने-खाने खलन के खेरे[11] भए खीस[12] हैं॥
खड़गी[13] खजाने खरगोस खिलवतखाने,[14]
खीसें खोले[15] खसखाने खाँसत खबीस[16] हैं॥

इस कवित में 'भूषण' ने सब प्रकार के अनुप्रास एकत्र दिखलाए हैं। तहखाने, गुसुलखाने, सिलहखाने, हरमखाने, सुतुरखाने, पीलखाने, करजखाने, खिलवतखाने, खसखाने

---

१ याचना करने से, माँगने से। २ व्यर्थ। ३ तुर्की तुरमता, बाज की तरह एक शिकारी चिड़िया। ४ स्नान करने का घर। ५ हथियार रखने का स्थान। ६ श्रेष्ठ हाथियों की तरह कूँ कूँ करते हैं। ७ ऊँटों के रहने का बाड़ा। ८ एक प्रकार का हरिण। ९ मुर्गों के रहने की जगह। १० धर्मयुद्ध में लड़नेवाला। ११ छोटा गाँव। १२ नष्ट हो गए। १३ गैंड़ा। १४ एकांत स्थान। १५ दांत निकाले। १६ दुष्ट जीव।

इत्यादि शब्दों में 'खाने' शब्द का अर्थ सब जगह एक ही है, परन्तु भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ समास होने से उन शब्दों के अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाने से लाटानुप्रास है।

तुरमती तहखाने, गीदर गुसुलखाने, सूकर सिलहखाने, हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढ़े पीलखाने, करंजखाने कीस हैं, खरगोस खिलवतखाने, इत्यादि शब्दों में छेकानुप्रास है।

अन्तिम दोनों चरणों में 'ख' की आवृत्ति अनेक बार होने से वृत्त्यनुप्रास।

(५) अंत्यानुप्रास

दो०—व्यंजन स्वरयुत एक-से, जो तुकांत में होंहि।
सो अंत्यानुप्रास है, अरु तुकांतहू ओ ह॥

विवरण—प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। चारों चरणों के अंत्याक्षर 'तुकांत' कहलाते हैं। इसी तुकांत को अंत्यानुप्रास कहते हैं। भाषा-काव्य में तुकांत बहुत अच्छा लगता है। इसी को फारसी तथा उर्दू में 'काफिया कहते हैं। भाषा-काव्य में छः प्रकार के तुकांत हो सकते हैं—

(१) सर्वांत्य-जैसे किसी सवैया वा कवित्त (मनहरण) के चारों तुकांत एक से होते हैं।

(२) समांत्य-विषमांत्य-अर्थात् पहले और तीसरे चरण का और दूसरे और चौथे चरण का तुकांत एक हो; जैसे—

(क) जेहि सुमिरत सिधि होय, गन-नायक करि-बर-बदन[1]।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन॥

---

१ श्रेष्ठ हाथी के से मुखवाले।

(ख) मूक होहिं वाचालु,[१] पंगु चढ़ैं गिरिवर गहन[२]।
जासु कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलि-मल-दहन[३]॥
(ग) कुन्द-इन्दु सम[४] देह, उमा-रमन[५] करुना-अयन[६]।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन-मयन[७]॥

(३) समांत्य—जिसमें केवल दूसरे और चौथे चरण का तुकांत समान हो जैसे दोहे का होता है।

(क) एक छत्र एक मुकुट मनि, सब बरनन पर जोउ[८]।
तुलसी रघुवर-नाम के, बरन[९] बिराजत दोउ॥
(ख) या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे[१०] स्याम-रंग[११] त्यों-त्यों उज्वल होय॥

(४) विषमांत्य—जिसमें पहले चरण और तीसरे चरण का तुकांत एक सा हो; जैसे—

(क) सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना-ऐन, चितै जानकी लखन तन[१२]॥
(ख) धरनि धरहु मन-धीर, कह बिरंचि[१३] हरि-पद सुमिरि।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजहिं[१४] दारुण विपति॥

(५) सम विषमांत्य—जिसमें पहले और दूसरे का और तीसरे और चौथे चरणों का तुकांत एक सा हो; जैसे—

(क) चौपाई—

गुनहु[१५] लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू।
टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू॥

---

१ बहुत बोलने वाला। २ दुर्गम। ३ पाप का मल जलाने वाले। ४ कुंद पुष्प और चंद्रमा के समान (गौर वर्ण)। ५ पार्वती के पति। ६ दया के घर। ७ कामदेव को नष्ट करने वाले। ८ देखो। ९ अक्षर। १० भीगै, अनुरक्त हो। ११ काला रंग, श्रीकृष्ण का स्वरूप। १२ ओर। १३ ब्रह्मा। १४ काटते हैं, नष्ट करते हैं। १५ मानते हैं, समझते हैं।

(ख) हरिगीतिका छंद—

पद-कमल धोइ चढ़ाइ नाव, न नाथ उतराई चहौं।
मोहिं राम राउरि आन[1] दसरथ-सपथ सब साँची कहौं॥
बरु तीर मारहिं लखन पै, जब लगि न पांव पखारिहौं।
तब लगि न 'तुलसीदास' नाथ, कृपालु पार उतारिहौं॥

(६) भिन्नांत्य—भिन्न-तुकांत वा बेतुकी जिसमें चारों चरणों में भिन्न-भिन्न तुकांत हों। इसे अँगरेजी में 'ब्लैंक-वर्स, (Blank verse) कहते हैं। हिंदी के प्राचीन कवियों ने ऐसी कविता नहीं लिखी, हाल में कुछ लोग लिखने लगे हैं, जैसे— पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने आपने 'प्रियप्रवास' में लिखी है।

सूचना—भिन्न-तुकांत कविता के लिये कुछ वर्णिक छन्द ही उपयुक्त जान पड़ते हैं, जैसे—शार्दूल विक्रीड़ित, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, इद्रवज्रा, भुजंगप्रयात, वसन्ततिलका इत्यादि। मात्रिक छन्दों में भिन्न-तुकांत कदापि अच्छा नहीं लगता।

(२) चित्र

दो०—चित्र बरन विन्यास है, कमलादिक आकार।
गोरखधंधा सम निरस, त्यागत सुकवि विचार॥

विवरण—छन्द-रचना में ऐसे वर्ण लाना जिनके द्वारा विशेष विशेष विन्यास से विशेष चित्र बन जाएँ।

(१) चित्रकाव्य—इसमें 'अलंकारत्व' नहीं है केवल कवि की चतुराई और परिश्रम का परिचय मिलता है। इस काव्य द्वारा कमल, छत्र, चक्र, चंवर, खड्ग, तखत, दंड, रथ, ध्वजा, हाथी, घोड़ा, मनुष्य, हंस, दर्पण, वृत्त इत्यादि के चित्र बन

१ आपकी शपथ।

सकते हैं। विस्तार-भय से सबके उदाहरण न देकर केवल कुछ ही देते हैं।

कमल बंध—(दो)

राम-राम-रम छेम-छम, सम दम जम श्रम धाम।
दाम काम क्रम-प्रेम वम, जम-जम दम भ्रम-वाम ॥*

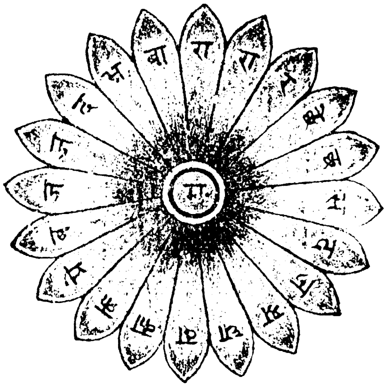

चित्र-संख्या—१ †

इस दोहे के प्रत्येक दल में दस शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर 'म' है, इसलिये चामर, चक्र दर्पण इत्यादि कई एक अन्य चित्र भी बन सकते हैं।

* राम-राम रटना क्षेम करने में समर्थ है, सम, दम और यम (नियम) तो श्रम के घर हैं। धन कमाना और कर्म से प्रेम करना व्यर्थ है। यम तो यम (काल) है और दम तो (झूठा) भ्रम और टेढ़ा है।

† 'कमल बंध' में प्रत्येक दल के छोर में एक-एक अक्षर रखा जाता है और कोश (मध्य) में भी एक अक्षर रहता है। प्रत्येक अक्षर को कोश के अक्षर के साथ मिला कर क्रम से पढ़ते हैं (देखो चित्र)।—संपादक।

चामर-बंध—(दोहा)

नैन-बान-हन बैन भन, ध्यान-लीन मन कोन ।
चैन हैन दिन-रैन तन, छिन छिन उन बिन छोन ॥*

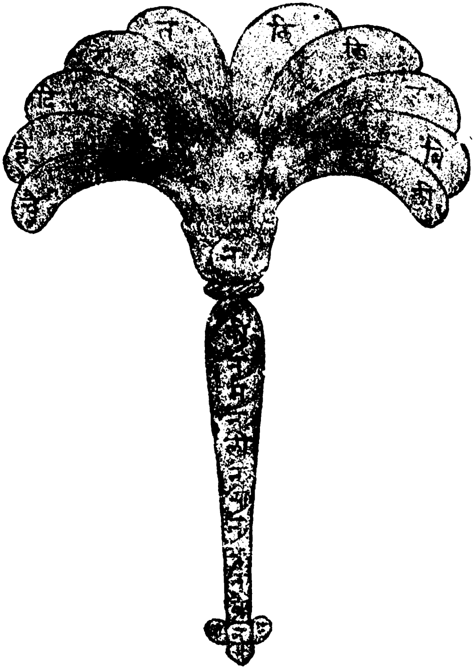

चित्र-संख्या—२ †

* (उस विरहिणी को) नयन रूपी बाणों ने हनन किया है, वह (अंड बंड) बातें बका करती है। उसने मन को (नायक के) ध्यान में लीन कर दिया है। उसके शरीर को रातोदिन चैन नहीं मिलता। उसके बिना वह क्षण-क्षण क्षीण हो रही है।

† चामरबंध दंड के नीचे से आरंभ होता है। नोक के अक्षर को

ऊपर लिखे हुये दोहे की भाँति इस दोहे से भी कमल का चित्र बन सकता है। इन्हीं दोनों दोहों से दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार, हलकुंडी, चामर, चौकी, कपाट इत्यादि बहुत से चित्र बन सकते हैं।

इस दोहे में भी कमल-बंध की सी रचना है। प्रत्येक दल में दस शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर एक ही 'न' है। इससे भी कमल-बंध बन सकता है (चामर-चित्र देखो)।

सूचना कमल बंध और दर्पण-बंध को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत मुदौवर' कहते हैं।

(धनुष-बन्ध—दोहा)

परम-धर्म हरि हेरहीं, 'केसव' सुनै पुरान।
मन-मन जानै नार द्वै, जिय जसु गुनन न आन ॥*

मुष्टि के आधार के मध्य में स्थित अक्षर से मिला कर पढ़िए। फिर बाईं ओर के अक्षर को मध्य के अक्षर से मिलाइये और तत्पश्चात् दाहिनी ओर के अक्षर को उससे मिलाकर पढ़िये। इसके अनंतर क्रम से दंड के अक्षरों को ऊपर की ओर पढ़ते जाइए। शीर्ष स्थान में पहुँचकर बालों के छोर में स्थित अक्षरों को शीर्ष में स्थित अक्षर से मिला कर बाईं ओर से क्रम पूर्वक पढ़िए।

* परमधर्म-स्वरूप भगवान् को खोजे और पुराणों को सुने। मन-ही-मन दो नारियों (स्त्री और माया) को जान ले और हृदय से अन्य के यश का गान न करे।

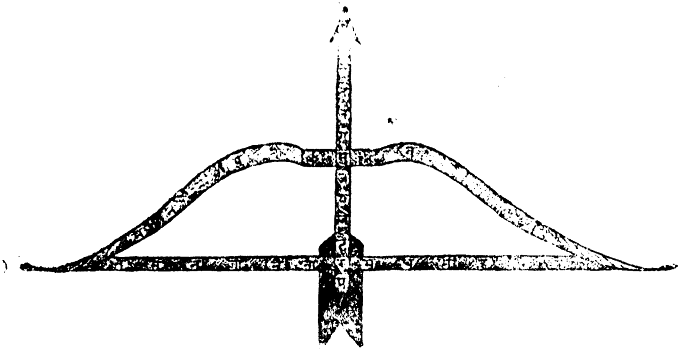

चित्र-संख्या—३*

इस चित्र में बाण दो जगह धनुष से मिलता हुआ गया है। कटनेवाले स्थानों के अक्षरों को दो बार पढ़ो।

इसी चित्रालंकार के अन्तर्गत प्राचीन कवियों ने अनेक भेद माने हैं, जिनमें मुख्य-मुख्य ये हैं।

(१) निरोष्ठ—जिसके पढ़ने में परस्पर ओंठ न छू जायँ; जैसे—

(कवित्त) लोक-लीक[1] नीकी लाज लीलत हैं[2] नंदलाल,
लोचन ललित लोक-लीला के निकेत[3] हैं।

---

* पहले बाण की फोंक के अक्षर को प्रत्यंचा के बीचोबीच स्थित अक्षर से मिलाइए और प्रत्यंचा में दाहिनी से होकर वक्राकार दंड के अक्षरों को बाईं ओर की कोटि तक पढ़ जाइये। फिर प्रत्यंचा में आकर मध्य में स्थित अक्षर से बाण में ऊपर की ओर बढ़िए और अनी तक पढ़ते चले जाइए।

१ लोक-मर्यादा। २ लज्जा छुड़ा देते हैं। ३ घर।

सोंहनि को सोच ना सँकोच लोकालोकनि[1] को,
देत सुख, ताको सखी दूनो दुख देत हैं ॥
'केसोदास' कान्हर[2] कनेर ही के कोरक-से,[3]
अंगरंग राते अंग अंतरंग सेत हैं[4] ।
देखि देखि हरि को हरनता[5] हरिननैनी,
देखत ही देखो नहीं हियो हरि लेत हैं[6] ॥

ऐसी कविता में प, फ, ब, भ, म इत्यादि अक्षर न लाने चाहिए।

सूचना—इसको फारसी तथा उर्दू में 'वसेउसशफतैन' कहते हैं।

इससे ठीक विरुद्ध ऐसी कविता भी हो सकती है, जिसके प्रत्येक शब्द से पढ़ने में ओंठ से ओंठ मिलें ऐसी रचना 'सोष्ठ' कहलाएगी।

(२) अमत्त—जिसमें मात्राएँ न हों; जैसे –

कवित्त—जग जगमगत भगत-जन-रस-बस,[7]
भव-भय-हर कर,[8] करत अचर चर ।
कनक-बसन[9] तन असन-अनल-बड़,[10]
बट-दल-बसन सजल-थल थलकर[11] ॥

---

१ बदनामी । २ कृष्ण । ३ कनेर के फूल की तरह । ४ अंग के रंग से, बाहरी दिखावे से तो लाल (अनुरक्त) हैं और भीतर से उज्ज्वल (अनुराग-रहित) हैं । ५ मनोहरता । ६ देखो क्या ये देखते ही हृदय नहीं हर लेते ? ७ भक्तों के वश होकर संसार में जगमगाता है (अवतार लेता है) । ८ हाथ सांसारिक भय को हरता है । ९ अर्थात् पीतांबर । १० दावानल खा जानेवाले (श्रीकृष्ण एक बार गोपों के लिये दावानल पी गए थे) । ११ जिसने मारकंडेय के लिये स्थल सजल किया और स्वयं बट के पत्ते में बास किया ।

अजर-अमर अज-बरद[१] चरन-धर,[२]
परम-धरम-गन-बरन सरन पर[३]।
अमल-कमल-बर-बदन, सदन-जस,[४]
हरन-मदन-मद[५] सदन-कदन-हर ॥

सूचना—इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'मुकत्ता' कहते हैं।

(४) अंतर्लापिका—

दो—उत्तर आवै अन्त में, प्रस्न जहाँ ही होय।
सोई अन्तर्लापिका, कहत सुकवि सब कोय ॥

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्न के अंतर्गत ही हो, उसे 'अंतर्लापिका, कहते हैं; जैसे—

१—सो०—भूषित का हरि अंग ?, कोह भरे का तिय करै ?
काते होय अनंग ?, को मराल-हित ? 'मानसर' ॥

यहाँ चार प्रश्न हैं—हरि के अंग को कौन भूषित करता है ? उत्तर—'मा' =लक्ष्मी। क्रोधित होकर स्त्री क्या करती है ? उत्तर—'मान'। काम किससे पैदा होता है ? उत्तर—'मानस'= मन। हंस का हितू कौन है ? उत्तर 'मानसर'। इसलिये 'मानसर' इसका उत्तर है।

२—दो०—कौन जानि सीता सती ? दयो कौन को तात।
कौन ग्रंथ बरन्यो हरी ? 'रामायन' अवदात[१] ॥

---

१ ब्रह्मा और महादेव जिसके चरण को धरते हैं। २ परम धर्म का वरण करनेवाले (ब्राह्मणों) के लिये जो शरण्य है। ३ यश के घर। ४ अपने सौंदर्य से काम का मद हरनेवाले। ५ काम के नाश को हरनेवाले, काम को प्रद्युम्न रूप से पुनः उत्पन्न करनेवाले (श्रीकृष्ण) ६ सुदर।

सती सीताजी किस जाति की स्त्री थीं ? इसका उत्तर है—'रामा' (जो सबके मन को अपने में रमा ले)। उनके पिता ने किसको दिया था ? उत्तर है—'रामाय' (राम को)। कौन ग्रंथ में उनका हरण वर्णन किया गया है ? उत्तर है—'रामायण'। प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में एक-एक अक्षर बढ़ता गया है।

(५) बहिर्लापिका—

दो०—बाहर से उत्तर कढ़ै बहिर्लापिका सोय।

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्नांतर्गत न होकर बाहर से निकले उसे 'बहिर्लापिका' कहते हैं, यथा—

कवित्त—भाषै काह सज्जन को[1] ? कौन संभु-बाहन है[2] ?,
काको सुख होत[3] ? काको माल सिव धारो है[4]।
कहा गज-बंधन छबीले[5] ? दृग काके अति[6] ?,
कौन हर-पुत्र[7] ? सीप-सुत को सुप्यारो है[8] ॥
सोभा को सुनाम का है[9] ? कृस्न नख धारो कहा[10] ?,
सिंधु सों मिलत कौन[11] ? काह अनियारो है[12]।
उत्तर के वनन में आदि-अंत छोड़ दीजे,
मध्य लीजे सो हिये मनोरथ हमारो है ॥

सूचना—'अंतर्लापिका' और 'बहिर्लापिका' के तीन-तीन भेद हैं:—(१) आद्याक्षरी, (२) मध्याक्षरी और (३) अंत्याक्षरी। कवि जैसा चाहे वैसा लिखे

---

१ सयाने। २ बरद। ३ सुकृति। ४ कपाल। ५ साँकल। ६ हरिणी। ७ गनेश। ८ मुकता। ९ पानिप। १० पहाड़। ११ सरिता। १२ नयन। इन सब शब्दों के मध्याक्षर लेने से जो उत्तर निकलता है, वह छंद के अंतर्गत नहीं है, अतः बहिर्लापिका है।

(६) लोमविलोम—

सूधो उलटो बाँचिए, औरै औरै अर्थ।
ऐसी रचना करि सकै, जो कवि महा समर्थ॥

विवरण—सीधा पढ़े तो और अर्थ, उलटा पढ़े तो और अर्थ होता है। ऐसी रचना कोई समर्थ कवि ही कर सकता है।

सूचना—ऐसी रचना 'भिखारीदास' और 'केशवदास' ने की है, परंतु उसका अर्थ बहुत खींच-खाँच कर लगाना पड़ता है इससे यहाँ नहीं लिखते। इसको फारसी तथा उर्दू में 'सनअत अकस' कहते हैं।

(७) गतागत—

सीधो उलटो बाँचिए, एकै अर्थ प्रमान।
कहत गतागत ताहि, कवि 'केसवदास' सुजान॥

विवरण—सीधा पढ़े चाहे उलटा, अर्थ वही रहेगा। इस रचना की 'केशव' ने केवल एक ही सवैया कही है। अर्थ-कठिनता के कारण उसे न लिखकर केवल दो-चार शब्दों के उदाहरण देते हैं; जैसे—

तखत, दरद, करक, सहस, कसक, कनक, विकटकवि, नवजीवन।

सूचना—फारसी तथा उर्दू में इसको 'मकबूल मुस्तवी' कहते हैं।

(८) कामधेनु—

ऐसी रचना जिससे अनेक छंद बन सकें; यथा—

मोरपखा १	बनमाल २	बिराजत ३	बेनु बजै ४	गुन भेव ५	सुपर्सन ६
संगसखा ७	नँदलाल ८	यभ्राजत ९	मोद सजै १०	थगसेव ११	तुकर्सन १२
दृष्टि चखा १३	करिख्याल १४	हिलाजत १५	पावतजै १६	अतिनेव १७	तुहर्सन १८
ध्यान रखा १९	छबिजाल २०	हिछाजत २१	स्वांतरजै २२	बलदेव २३	सुदर्सन २४

सूचना—इस सवैया में २४ टुकड़े हैं। जहाँ से चाहो छः टुकड़ों का एक पद बनाकर पढ़ो। इसी तरह चारों पद कह लो, तो २४ छंद बन जावेंगे।

साजत है १	सिधिपाय २	इहाँसखि ३	मादरता ४	सुचिबेप ५	प्रनैवर ६
आजत हैं ७	रिधिराय ८	छजेछबि ९	हेनरता १०	बलदेव ११	सुधाधर १२
छाजत है १३	वरभाय १४	भनै कवि १५	सुष्टुमता १६	सुखदेस १७	गुन कर १८
राजत हैं १९	यसछाय २०	यथारथि २१	रुद्रपता २२	पनरेस २३	कृपाधर २४

सूचना—उपर्युक्त रीति से पढ़ने से इसके भी २४ छंद बन सकेंगे।

(६) दृष्टिकूटक—

दृष्टिकूटक शब्द का अर्थ है, "दृष्टि को छलनेवाला" शब्दों की ऐसी रचना जिसका अर्थ केवल देखने मात्र से न भासे 'दृष्टिकूटक' कहलाती है।

ऐसी रचना शब्दों ही पर निर्भर है, अतः इसकी गणना शब्दालंकारों ही में होनी चाहिये। इसमें अर्थ-कठिनता अत्यधिक रहती है, इसलिये कवि लोग ऐसी कविता की गणना अधम-काव्य में करते हैं, परन्तु विचार करने से उसके शब्दों में अलंकारिता अवश्य पाई जाती है। अतः उसे अलंकार मानना ही चाहिये। भक्तशिरोमणि 'सूरदास' ने इस अलंकार से अच्छा काम लिया है और इसी अलंकार में साहित्य-लहरी नामक एक ग्रंथ ही रच डाला है। कौन कह सकता है कि सूर-कृत इस ग्रंथ के पदों में अलंकारिता नहीं है। यथा :—

१—दो०—मेष रासि तें पाँच लौं, गने कढ़े जो नाम[1]।
ता भच्छन[2] द्वादस गए, आए नहिं घनस्याम॥
—(मास)

२—दो०—अहिबल्ली-रिपु[3] को सुता,[4] ता के पति को हार[5]।
ता अरि पति की भामिनी,[6] सदा बसै तुव द्वार॥
—(लक्ष्मी)

३—पद—कहत किन परदेशी की बात।
मंदिर-अरध[7] अवधि हरि बदि गए[8] हरि-अहार[9] चलि जात॥

१ सिंह। २ भोजन (मांस)। ३ नागबेलि का शत्रु (हिम)। ४ उसकी लड़की (पार्वती)। ५ उसके पति (महादेव) की माला (सर्प)। ६ उसके शत्रु (गरुड़) के स्वामी (विष्णु) की स्त्री (लक्ष्मी)। ७ घर का आधा भाग पखाच या पक्खा (पक्ष, १५ दिन)। ८ कह गए। ९ सिंह का भोजन (मांस = महीना)।

अजया-भख[1] अनुसारत[2] नाहीं कैसे कै दिवस सिरात[3] ।
ससि-रिपु[4] वरषभानु-रिपु[5] जुग-सम हर-रिपु[6] किये फिरैं घात ॥
मघ-पंचम[7] लै गए स्याम घन ताते जिय अकुलात ।
वेद नखत ग्रह जोरि अरध करि[8] को बरजै हम खात ।
'सूरदास' प्रभु तुमहिं मिलन को कर मींजत[9] पछितात ॥

(३) पुनरुक्ति-प्रकाश

दो०—एक शब्द बहु बार जहँ, परै रुचि त अर्थ ।
पुनरुक्ति परकास सो, बरनैं बुद्धि समर्थ ॥

विवरण—भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिये एक ही शब्द कई बार कहा जाय । जैसे—

१—दोहा

वनि-वनि-वनि[10] बनिता[11] चलीं, गनि-गनि-गनि डग[12] देत ।
धनि-धनि-धनि अखियाँ, सुछबि सनि-सनि-सनि[13] सुख लेत ॥

२—सवैया

मधुमास[14] मैं 'दासजू' वीस विसे[15] मनमोहनआइहैंआइहैंआइहैं ।
उजरे इत भौनन[16] को सजनी सुख-पुंजन छाइहैं छाइहैं छाइहैं ॥
अब तेरी सौं[17] एरी न संक रकंक[18] विथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं ।
घनस्याम-प्रभा लखिकै सखियाँ अखियाँ सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं ॥

---

१ बकरी का भोजन (पत्ती = पत्री, पत्र) । २ नहीं भेजते । ३ बीते । ४ चन्द्रमा का शत्रु (दिन) । ५ सूर्य का शत्रु (रात्रि) । ६ कामदेव । ७ मघा नक्षत्र से पाँचवाँ नक्षत्र (चित्रा, चित्ता, = चित्त) । ८ (नक्षत्र = २७ + वेद = ४ + ग्रह = ६) = ४० ÷ २, = २० बीस (विष) । विष खाने से कौन मना कर सकता है ? ६ मलती हैं । १० सज कर । ११ स्त्रियाँ । १२ कदम । १३ छवि में सनकर । १४ चैत्र का महीना । १५ निश्चय । १६ उजड़े घरों को । १७ कसम । १८ एक दम ।

सूचना—अंग्रेजी में इस अलंकार को 'टाटालोजी' (Tautology) कहेंगे। फारसी तथा उर्दू में 'तजनीस मुकर्रर' कहते हैं।

(४) पुनरुक्तिवदाभास

दो०—जानि परै पुनरुक्ति-सी, पै पुनरुक्ति न होय।
वदाभास पुनरुक्ति तेहि, भूषन कह सब कोय॥

विवरण—जहाँ दो शब्द ऐसे रखे जायँ जो पर्यायवाची हो और एक-सा अर्थ देते हुए दिखाई दें, परन्तु यथार्थ में अर्थ कुछ दूसरा ही हो, उसे पुनरुक्तिवदाभास अलंकार जानो; जैसे—

१—दो०—क्यों न हो क्षितिपाल[1] सों, नीतिपाल जग एक[2]।
जाके निकट जु रहत हैं, सुमनस विबुध अनेक॥

यहाँ 'सुमनस' और 'विबुध' का पहली दृष्टि में एक ही अर्थ 'देवता' भासता है, परन्तु वास्तव में अर्थ है 'सुन्दर चित्तवाले विशेषज्ञ पंडित।'

२—दो०—बंदनीय केहिके नहीं, वे कबिंद मतिमान।
सुरग[3] गएहु काव्य-रस, जिनको जगत[4] जहान[5]॥

यहाँ 'जगत' और 'जहान' पहले एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परन्तु विचार करने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

३—चौ०—पुनि फिरि[6] राम निकट सो आई।
प्रभु लछिमन पहँ बहुरि पठाई॥

यहाँ 'पुनि' और 'फिरि' में एक अर्थ का आभास है। 'फिरि' का अन्वय 'आई' के साथ होगा।

४—दो०—अली भौंर गूँज न लगे, होन लगे तुल-पात।
जहँ तहँ फूले रूखतरु, प्रिय प्रीतम किमि जात॥

---

१ राजा। २ अद्वितीय। ३ स्वर्ग। ४ जगमगाता है। ५ संसार में। ६ पलटकर, लौटकर।

यहाँ अली और भौंर, दल और पात, रूख और तरु तथा प्रिय और प्रीतम एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परन्तु विचार करने से जान पड़ता है कि अली=सखी, पात होन लगे=गिरने लगे, रूख=रूखे (सूखे) और प्रिय=प्यारा।

५—कवित्त—भृगु-लात-पद हिय प्रियवर राजत है,
मोर-पंख पत्त साजे मेरे मन भावै है।
राजे हार बय-माल आइ तें दिखाई देत,
'कासिराज' तन पर गोरज[1] सोहावै है।
रहै परदोस साँझ समे में बिहारी[2] स्याम,
ललित अरुन अंग ताम्र[3] को लजावै है।
दच्छिन हरित हरे रंग-संग बलदेव[4],
कुंजर मतंग-दंत कंध धरे आवै है।

इसमें लात और पद, पंख और पत्त, हार और बन-माल, परदोष और साँझ, अरुन और ताम्र, हरित और हरे, कुंजर और मतंग एकार्थवाची शब्द जान पड़ते हैं परन्तु अर्थ पृथक् पृथक् है। अर्थात् पद=स्थान। पत्त=पत्तवाले लोग। बनवाल= बन के वृक्षों का समूह। परदोष=पराया दोष। अरुन=लाल रंग। दच्छिण हरित=दाईं ओर। हरे रंग-संग=अत्यन्त प्रसन्न चित्त। कुंजर=बहुत बड़ा।

६ कवित्त—अरिन के दल[5] सैन संगर में[6] समुहाने[7],
टूक-टूक सकल कै डारे घमसान[8] में।

---

१ गोधूलि। २ घूमनेवाले। ३ ताँबा। ४ बलराम। ५ शत्रुओं की सेना। ६ साथही शयन में रमते हैं, साथ-साथ मरते हैं। ७ सम्मुख आने पर। ८ युद्ध।

दरबार[1] रूरो[2] महानद परबाह पूरो[3],
बहत है हाथिन के मद जल-दान[4] में ॥
'भूषन' भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल,
सूर[5] रवि केसा तेज[6] तीखन कृपान में।
माल मकरंद कुल-चंद कलानिधि[7] तेरो,
सरजा सिवाजी जस जगत जहान में*।

यहाँ भी दल और सैन, सूर और रवि तथा जगत और जहान में वैसा ही आभास है। समझने में अर्थ अलग-अलग है।

(५) प्रहेलिका (पहेली)

दो०—प्रस्नहिं में उत्तर कहै, कछू सब्द के फेर।
सो प्रहेलिका दोय बिधि, सब्द अर्थगत हेर ॥

(१) शब्दगत प्रहेलिका

१—चौपाई

देखो एक अनोखी नारी। गुन उसमें इक सबसे भारी।
पढ़ी नहीं यह अचरज आवे। मरना-जीना तुरत बतावै॥
उत्तर—हाथ की नारी (नाड़ी)

२—चौपाई

बारे[8] से वह सबको भावै। बढ़ा हुआ कुछ काम न आवै।
मैं कह दिया है उसका नाम। अर्थ करो कै छोड़ो ग्राम॥
उत्तर—दिया (दीपक)

---

* इसमें और भी कई जगह पुनरुक्तिवदाभास है, संगर-घमासान, दरबार, परबाह-पूरो, तेज-तीखन, चंद-कलानिधि।

१ दरवाजे में। २ उत्तम, भारी। ३ पूर्ण। ४ संकल्प करते समय का जल। ५ वीर। ६ चमक, कांति। ७ कलाविद्। ८ जलाने से।

३—चौपाई

आदि कटे तें सबको पालै। मध्य कटे तें सबको सालै।
अंत कटे तें सबको मीठा। सो खुसरो मैं आँखों दीठा[1]॥

उत्तर—काजल

४—चहुँ ओर फिरि आई। जिन देखी तिन खाई[2]।

उत्तर—खाई

(२) अर्थगत प्रहेलिका

१—दो०—लक्ष्मी पति के कर बसै, पाँच बरन[3] गनि लेव[4]।
पहिलो अक्षर छोड़िकै, आय हमें किन देव॥

उत्तर—दर्शन

२—दो०—सब सुख चाहो भोगिबो, जौ पिय एकहि बार।
चंद गहै जहँ राहु[5] को, जइयो तेहि दरबार॥

उत्तर—राजा बीरबल का दरबार, जहाँ चंद नाम का एक द्वारपाल था।

३—दो०—ऐसी मूरि[6] बताव सखि, जेहि जानत सब कोय।
पीठि लगावत जासु रस, छाती सीरी[7] होय॥

उत्तर—पुत्र

सूचना—इस अलंकार को फारसी वा उर्दू में 'चीसवाँ' वा 'मुअम्मा' कह सकते हैं।

(६) भाषा समक

दोहा—सब्दन की विधि एक जहँ, भाषा बिबिध प्रकार।
वाक्य मनोहर होय तहँ भाषा समक बिचार॥

---

१ देखा। २ धोखा खाया। ३ अक्षर। ४ सुदर्शन। ५ राह चलने वाले, आगंतुक। ६ मूल (जड़)। ७ ठंढी।

१—सवैया

जा दिन तें जमुना-तट वाहि बजावत बाँसुरी नेक निहारो।
होशम रफ्त न मांद बदस्त,[१] भरोस रहै दिन-रैन तुम्हारो॥
'हाफिज' फिक्र कुदाम नुमायम, [२]कोई उपाय चलै न हमारो।
सखि कोउ उपाय रचौ फिरि बारक[३] देखिय नँदुलारो॥

२—सवैया

द्रष्टुं तत्र विचित्रतां सुमनसां[४] मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना[५] गुल[६] तोड़ती थी खड़ी॥
उन्नद्भ्रू धनुषा कटाक्ष विशिखैर्घायल[७] किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोह-जलधौ[८] हैदर गुजारे शुकर[९]॥

३—सवैया

कासों कहौं मन की कुविथा अपनो तन आप जराने परो।
खेशो बुजुर्ग अकारिब राह में देखत[१०] खूब लजाने परो॥
वाको मुरव्वतो उल्फत[११] में हमें 'हाफिज' हाय बिकानो परो।
दिल रफ्तजेदस्त शुदा अलमस्त[१२] [१३]फिसोस[१३]महा पछिताने परो॥

४—सवैया

साँझ समै घर से निकलो लिए संग सखी वह साँवरी मूरत।
नाजो नियाज नमूद वसे[१४]अज ताब शुदम् मफकूद कदूरत[१५]॥

१ होश हाथ से निकल गया। २ न जाने कैसी चिंता लग गई है। ३ एक बार। ४ सुन्दर मनवाली की विचित्रता देखने के लिए वहाँ गया था। ५ वहाँ कोई बालमृग-नयनी। ६ फूल। ७ चढ़ी हुई भौहें रूप धनुष और कटाक्ष रूपी बाणों से घायल किया। ८ मोह रूपी समुद्र में इसी से मैं सदा दुःख पाता हूँ। ९ ईश्वर मंगल करे। १० स्वजन, गुरुजन और समीपी जनों को मार्ग में देखकर। ११ उसकी प्रीति में। १२ मन हाथ से निकल गया, वह मस्ताना बन गया। १३ अफसोस, खेद। १४ बहुत से हाव-भाव दिखलाई पड़े। १५ उनकी चमक से (मेरे मन का) मैल दूर हो गया।

मो तन ताकि दियो हँसिकै अभिमान भरो कछु भौंह मरूरत।
होशम रफ्त न मांद बदस्त[1] शुदा दिल मस्त जे दीदने सूरत[2] ॥

सूचना—इस अलंकार को फारसी में 'मुलम्मा' कहते हैं। 'हाफिज सीराजी' का प्रसिद्ध शैर है—

अला या ऐ व इस्साकी अदिर कासन ब नाविलहा।
कि इश्क आसाँ नमूद अव्वल वले उफताद मुश्किलहा ॥*

इसमें पूर्वार्द्ध अरबी भाषा और उत्तरार्द्ध फारसी हैं।

(७) यमक

दो०—वहै सब्द फिरि फिरि परै, अर्थ औरई और।
सो यमकालंकार है, भेद अनेकन ठौर ॥

विवरण—वैसा ही शब्द पुनः पुनः सुन पड़े, परन्तु अर्थ जुदा-जुदा हो, उसे 'यमक' कहते हैं। इसके सब से अधिक भेद 'केशवदास' ने अपनी कविप्रिया' में लिखे हैं।

उदाहरण—

१—दो०—तो पर वारौं[3] उरबसी[4], सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उर[5] बसी ह्वै उरबसी[6] समान ॥

२—दो०—भजन[7] कह्यो तासों भज्यो[8] भज्यो[9] न एकौ बार।
दूरि भजन[10] जासों कह्यो, सो तैं भज्यो[11] गँवार ॥

---

* ऐ मदिरा पान करानेवाले! सावधान हो जा। प्याले को पीने के लिये दे और तू भी पी। प्रेम पहले तो सरल जान पड़ा, किंतु अब उसमें कठिनाइयाँ जान पड़ती हैं।

१ होश हाथ से जाता रहा। २ रूप के देखने से मन मतवाला होगया। ३ निछावर करता हूँ। ४ उर्वशी, अप्सरा। ५ हृदय में। ३ पदिक नामक गहना जो माला के बीचो-बीच लटकता है। ७ भजन करने को। ८ उससे दूर भागे। ६ भजन किया। १० दूर भागने के लिये। ११ राजा जनक।

३—चौपाई

मूरत मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह[1] बिदेह[2] विसेखी[3] ॥

४—दो०—बारन[4] तें बारन[5] कहूँ, होत जु बारन[6] नाहिं।
लगो बार[7] न बधत[8] रिपु, इन्हैं सुबार न[9] माहिं ॥

५—सवैया

वसुधा[10] धर[11] में वसुधा-धर[12] में,
व सुधाधर[13] में वसुधा[14] में लसै।
अलिवृन्दन[15] में अलिवृन्दन[16] में,
अलिवृन्दन[17] में अतिसै सरसै[18] ॥
हिय-हारन[19] में हुरिहारन[20] में,
हिम-हारन[21] में "रघुराज" लसै।
व्रजवारन[22]बारन[23] बारन[24] वारन[25],
बारन-वार[26] वसन्त वसै ॥

६—कवित्त—ऐसी परी नरम[27] हरम[28] पातसाहन[29] की,
नासपाती खाती ते वनास पाती[30] खाती हैं।

---

१ राजा जनक २ शरीरहीन, शरीर ज्ञान-शून्य। ३ विशेषतः। ४ बालों (केशों) से। ५ हाथी। ६ निवारण नहीं होता, रोका नहीं जा सकता। ७ देर। ८ मारने में। ९ उस रण में। १० आठ प्रकार से चारों दिशाओं और चारों उपदिशाओं से। ११ पृथ्वी में। १२ पर्वत। १३ चंद्रमा। १४ जल। १५ भौरों का समूह। १६ कोयलों का समूह। १७ सखियों का समूह १८ अत्यन्त फैलता है। १९ माला। २० होली खेलने वाले। २१ हिम को रहने वाले, सूर्य। २२ ब्रजवालों में। २३ बालन, बालकों में। २४ बालाओं में। २५ दरवाजों में। २६ बार-बार (सदा)। २७ कोमल, सुकुमार। २८ रानियाँ। २९ बादशाह। ३० वनस्पति।

७—कवित्त—ऊँचे घोर मंदर[1] के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर[2] के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं[3] कंद मूल भोग करैं[4];
तीन बेर खातीं[5] ते वै तीन बेर खाती हैं[6] ॥
भूखन सिथिल अंग[7] भूखन सिथिल अंग[8],
बिजन डोलातीं[9] ते वै बिजन डोलाती हैं[10]।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास[11],
नगन जड़ातीं[12] ते वै नगन जड़ाती हैं[13] ॥

सूचना—इस अलंकार को अँगरेजी में 'पन' (Pun) कहते हैं। उर्दू और फारसी में 'तजनीस जायद' कहेंगे।

मुक्त-पद-ग्राह्य यमक

दो० - चरण अंत अरु आदि मैं, यमक कुंडलित होय।
मुक्तपदग्रह है वही, सिंहवलोकन सोय ॥

१—सवैया—लाल है भाल सिंदूर-भरो-मुख
सिंधुर[14] चारु[15] औ बाँह बिसाल[16] है।
साल[17] है सत्रुन को कवि देव,
सुसोभित सोम-कला[18] धरे भाल है[19] ॥

---

१ ऊँचे और विशाल मंदिर (राजमहल)। २ ऊँचे और भयावने पर्वत। ३ बढ़िया मिठाई खाती थीं। ४ कंद और बड़े। ५ तीन बार (मर्तबा)। ६ तीन बेर (फल)। ७ आभूषणों (के बोझ) से जिनके अंग शिथिल (सुस्त) थे। ८ भूख के कारण शरीर शिथिल है। ९ पंखा झलती थीं। १० बिना मनुष्य के स्थान (जंगल) में घूमती हैं। ११ डर। १२ (गहनों में) रत्न जड़वाती थीं। १३ नंगी जाड़ा खाती हैं। १४ हाथी के ऐसा मुख। १५ सुन्दर। १६ लंबी। १७ शल्य (दुःखद)। १८ चन्द्रमा की कला (द्वितीया का चन्द्रमा)। १९ शोभा पाता है।

भाल है दीपत सूरज कोटि-सो,
काटत कोटि कुसंकट-जाल[1] है।
जाल[2] है बुद्धि-विवेकन को यह,
पारबती को लड़ायतो[3] लाल[4] है।

२—सवैया

नामहि के सुमरे सुख पाइहौ;
और न काम गिनौ जग कामहिं।
कामहि कोऊ न आइहैं ये सुत-
मातु-पिता प्रिय बंधु औ बामहि[5] ॥
बामहि[6] हैं सिगरे[7] भव[8] के,
सुख होत नहीं छनहूँ विसरामहि[9]।
रामहि राम रटौ रे रटौ सब,
वेद पुरान को है परिनामहि[10] ॥

३—छप्पय-सारँग[11] से दृग लाल, माल सारँग[12]की सोहत।
सारँग[13]ज्यों तनु स्याम वदन[14] लखि सारँग[15] मोहत ॥
सारँग[16] सम कटि[17], हाथ माथ बिच सारँग[18] राजत।
सारँग[19] लाए अंग देखि छबि सारँग[20] लाजत ॥
सारँग[21] भूषन पोत-पट सारँग[22] पद सारँग[23] धर।
'रघुनाथदास' बंदन करत सीतापति रघुबंस बर ॥

---

१ जंजाल, झगड़ा-बखेड़ा। २ समूह। ३ प्यारा। ४ पुत्र। स्त्री। ६ प्रतिकूल। ७ सब। ८ संसार। ९ आराम। १० अंतिम उद्देश्य। ११ कमल। १२ सोना। १३ बादल। १४ मुख। १५ चंद्रमा। १६ सिंह। १७ कमर। १८ बाण (हाथ में) चंदन (मस्तक में)। १९ कपूर। २० कामदेव। २१ सुहावने, रंगीन। २२ कमल। २३ धनुष (शार्ङ्ग) धारण करने वाले।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि 'लाटानुप्रास' में केवल शब्दों ही की नहीं वरन् वाक्यों तक की आवृत्ति हो सकती है, केवल अन्वय से अर्थ में हेर-फेर होता है। यमक में जिस अक्षर-समूह का आवर्तन होता है वह चार प्रकार का होता है; [१] दोनों निरर्थक, जैसे—"मधुपराजि पराजित मानिनी[1]" में 'पराजि' का कुछ अर्थ नहीं, यह उत्तम यमक है, [२] एक सार्थक एक निरर्थक जैसे—"है समर-समरस-सुभट[2] मरु-पति वाहनी विख्यात"[3] में पहले 'समर' का अर्थ है युद्ध और दूसरा 'समर' 'समरस' शब्द का एक खंड होने से निरर्थक है, [३] एक पूर्ण शब्द सार्थक दूसरा खंड होकर सार्थक, जैसे 'उरबसी' और 'उर बसी' में। ये दोनों मध्यम यमक हैं और [४] भिन्नार्थवाची दो वा अनेक शब्द, जैसे ऊपर वाली छप्पय में "सारंग" शब्द है। यह अधम यमक है।

सूचना—'सिंहावलोकन' को फारसी में 'सनअत इरसाद' कहेंगे।

(८) वक्रोक्ति

दो०—होय श्लेष सों काकु सों, कलिपत औरै अर्थ।
ताहि कहत वक्रोक्ति हैं, सगरे सुकवि समर्थ॥

विवरण—कहे हुए वाक्य का श्लेष से वा काकु से और ही अर्थ कल्पित करे अर्थात् जब वक्ता कोई वाक्य एक अर्थ में कहता है और श्रोता उसका दूसरा ही अर्थ लगाता है, तो वहाँ वक्रोक्ति-अलंकार होता है। ऐसा अर्थ श्लेष से वा काकु से हो सकता है।

(२) श्लिष्ट वक्रोक्ति

श्लिष्ट वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है, (१) भंगपद और (२) अभंगपद।

(१) भंगपद वह है जिसके पद को तोड़-फोड़ कर दूसरा अर्थ किया जाय; जैसे—

१ भौंरों के झुंड से व्याकुल मानिनी नायिका। २ युद्ध में डटे रहने वाले वीर। ३ मरुदेश के राजा की सेना।

"गौरवसालिनी[1] प्यारी हमारी सदा तुमहीं इक इष्ट अहौ"।
"हौं न गऊ नहिं हौं अवसा[2] अलिनी[3] हूँ नहीं अस काहे कहौ"॥

श्रीमहादेवजी पार्वती जी से कहते हैं कि हे गौरवशालिनी प्यारी! तुम्हीं हमारी सदा इष्ट देवी हो। पार्वतीजी शब्दों को तोड़ कर हँसी से कहती हैं कि—

न मैं 'गौ' हूँ न 'अवशा' हूँ और न 'अलिनी' हूँ तुम ऐसा क्यों कहते हो।

अर्थात् गौः+अवशा+अलिनी=गौरवशालिनी।

२—दो०—मान तजो गहि सुमति बर[4], पुनि-पुनि होत न देह।
मानत जोगी जोग को, हम नहिं करत सनेह[5]॥

कोई व्यक्ति किसी से कहता है—"हे वर! सुमति गहि (कै) मान तजो"। वह व्यक्ति 'मान तजो गहि' शब्दों को तोड़कर 'मानत जोगहि'[6] समझ कर उत्तर देता है।

३—दो०—नारी[7] के अनुकूल तुम, आचरत[8] जु दिनरात।
कौन अरिन[9] सों हित[10] करत, है बसुधा[11] विख्यात॥

यहाँ उत्तरार्द्ध में 'नारी' शब्द को तोड़ कर न+अरि करके उत्तर दिया।

सूचना—उर्दू तथा फारसी में 'सभंगपद-श्लेष' को 'तजनीस मुरक्कब' और अभंगपद-श्लेष को 'तजनीस ताम' कह सकते हैं।

(२) अभंग पद वह पद है जिसमें शब्द या पद तोड़ा न जाय किंतु अनेकार्थक कोष से किसी शब्द का अर्थ ऐसा लिया जाय जो कहने वाले के अर्थ से भिन्न हो, जैसे—

---

१ गौरव युक्त। २ स्वच्छंद। ३ भ्रमरी। ४ हे श्रेष्ठ, सुमति धारण करके मान को छोड़ दो। ५ स्नेह, प्रेम। ६ योग को (सुन्दर मतिवाले) मानते हैं। ७ स्त्री। ८ व्यवहार करते हैं। ९ शत्रु। १० प्रेम। ११ पृथ्वी।

१—क०—'खोलो जू किवांर' 'तुम को हौ एती बार[1]'
'हरि नाम है हमारो' 'बसो कानन[2] पहार में'।
'हौं तो प्यारी 'माधव' 'तो कोकिला के माथे-भाग[3]'
"मोहन' हौं प्यारी,'परो मंत्र-अभिचार[4]' में'॥
'रागी[5] हौं रँगीली, तौ जु जाहु काहू दाता पास,
'भोगी हौं छबीली, जाय बसो जू पतार[6] में।
'नायक' हौं नागरी[7] तो हांको कहूँ टांड़ो[8] जाय,
हौं तो 'घनस्याम', बरसो जू काहू खार[9] में।

इसमें कृष्ण और राधिका का परिहास वर्णित है। कृष्णजी अपना जो नाम बताते हैं उसी का दूसरा अर्थ लेकर राधिका उत्तर देती जाती हैं। राधिकाजी का अर्थ—हरि=बंदर। माधव=वैशाख-मास। मोहन=मोहन प्रयोग (मारण, मोहन इत्यादि का)। रागी=गवैया। भोगी=सर्प। नायक=बंजारा। घनस्याम=काला बादल।

२—दो०—को तुम? 'हरि'[10] प्यारी! कहा बानर को पुर काम?
'स्याम' सलोनो, स्याम कपि? क्यों न डरै तब बाम॥

सूचना—इन उपर्युक्त उदाहरणों में यदि श्लिष्ट शब्दों को पर्याय शब्दों से बदल दें तो काव्य बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा अर्थात् इन छंदों का कवित्व उन्हीं शब्दों पर निर्भर है, इसलिये इनमें शब्दालंकार है।

(२) काकु वक्रोक्ति

दो०—जहाँ कंठध्वनि भिन्न तें, आसय जुदो लखाय।
सो वक्रोक्ती काकु है, कबिवर कहैं बुझाय॥

१ इस समय (रात में)। २ जंगल। ३ सिर पर। ४ मंत्र का प्रयोग। ५ प्रेमी। ६ (पाताल) पृथ्वी के नीचे। ७ चतुर स्त्री। ८ अन्न का बोझ पीठ पर लादनेवाले बैलों या पशुओं का झुंड। ९ धूल अर्थात् मैदान। १० कृष्ण और बंदर।

विवरण—जहाँ शब्द के उच्चारण में कंठध्वनि से कुछ और ही अर्थ भासे वहाँ 'काकु' समझो।

सूचना—इसके उदाहरण रौद्ररसपूर्ण वा हास्यरसपूर्ण बाद-विवाद में अधिकता से आया करते हैं। रामायण में अंगद और रावण के संवाद में बहुत से हैं।

१—चौपाई—(अंगद)

कह कपि धर्मसीलता[१] तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर-तिय चोरी[२] ॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़भागी ॥

२—दोहा

सत्य कह्यो दसकंठ सब, मोहिं न सुनि कछु कोह[३]।
कोउ न हमारे कटक[४] अस, तो सन लरत जो सोह[५] ॥

३—चौपाई

कह कपि तव गुन गाहकताई[६]। सत्य पवनसुत[७] मोहिं सुनाई ॥
कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहिं समान कोउ नाहीं ॥
सो भुजबल राख्यो उर घाली[८]। जीतेउ सहसबाहु बलि बाली ॥

४—चौपाई—(सीता)

मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू। तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू[९] ॥
५—दो०—काह[१०] न पावक[११] जारि सक, का न समुद्र समाय।
का न करै अबला[१२] प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥

---

१ धर्मिष्ठता। २ दूसरे की स्त्री की चोरी द्वारा कमाई हुई। ३ क्रोध। ४ सेना। ५ तुमसे लड़ते हुए जो शोभित हो। ६ गुणों का आदर करना। ७ हनूमान। ८ हृदय में रख छोड़ा। ९ भोग-विलास। १० क्या। ११ अग्नि। १२ स्त्री।

६—चौ०—(राम) मानस[1] सलिल-सुधा-प्रतिपाली[2] ।
जियै कि लवन-पयोधि[3] मराली[4] ॥
नव रसाल-बन-विहरन-सीला[5] ।
सोह कि कोकिल बिपिन-करीला[6] ॥

सूचना—अनेक आचार्यों ने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है। पर हम इसे शब्दालंकार ही मानते हैं। क्योंकि विशेष कंठध्वनि ही से इसमें अर्थ का हेर-फेर होता है। कंठध्वनि श्रवण का विषय है। श्रवण-मात्र की अलंकारिता शब्दालंकार ही मानी जा सकती है।

(९) वीप्सालंकार

दो०—आदर अचरज आदि हित, एक सब्द बहु बार ॥
ताहि वीप्सा कहत हैं, जे सुबुद्धि-भंडार ॥

विवरण—आदर, ताकीद, आश्चर्य अथवा अन्य कोई आकस्मिक भाव प्रकट करने के हेतु एक शब्द कई बार कहा जाय, वही वीप्सालंकार है।

१—(आदर) (क) चौ०—सिव सिव ह्वै प्रसन्न करु दाया[7] ।
(ख) पद—राम राम राम जीह[8] जौलौं तू न जपिहै।
तौलौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै[9] ।
(ग) पद—राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
(घ) पद—राम राम राम राम राम राम जपत।
मंगल-मुद उदित होत कलिमल[10] छल छपत[11] ।

---

१ मानसरोवर। २ अमृत तुल्य जल से पाली हुई। ३ खारे जल का समुद्र। ४ हंसिनी। ५ नये आम के बागीचे में घूमनेवाली। ६ करील के (काँटेदार) जंगल में। ७ दया। ८ (जिह्वा) जीभ। ९ दुःख पावेगी। १० पाप का मैल। ११ छिप जाते हैं।

५—दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ[1] गए सुरधाम[2]॥

२—(तात्कीद) (क) पद—राम कहत चलु राम कहत चलु,
राम कहत चलु भाई रे।
नाहीं तो भव-बिगारि[3] महँ परिहौ,
छूटत अति कठिनाई रे॥

(ख) पद—राम जपु राम जपु राम जपु बावरे[4]।
घोर भव-नीरनिधि[5] राम निजु[6] नाव रे।

३—(आश्चर्य) राम राम! यह क्या करते हो।

४—(घृणा) छिः छिः उसे मत छुओ!

५—(पश्चात्ताप) राम राम! यदि मैं जानता कि ऐसा होगा तो मैं यह काम न करता।

६—(अहंकार) भाई भाई, क्या तुम्हीं बड़े बुद्धिमान हो?

सूचना—इसी प्रकार और भी आकस्मिक भाव प्रकट करने के लिये शब्द दोहराए तेहराए जाते हैं।

(१०) श्लेष

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ।
श्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि-समर्थ॥

विवरण—ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके दो-तीन अर्थ हो सकते हों, श्लेष अलंकार कहलाता है। इसके दो भेद होते हैं—

(१) वह जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है। इसकी गणना शब्दालंकारों में हो सकती है।

---

१ राजा (दशरथ)। २ स्वर्ग। ३ संसारिक आवागमन। ४ पागल। ५ संसार रूपी समुद्र। ६ निश्चय।

(२) वह जहाँ कवि का तात्पर्य दोनों या तीनों अर्थों से होता है इसकी गणना अर्थालंकारों में होनी चाहिये ।

उदाहरण—

१—चौपाई

रावन-सिर-सरोज-बनचारी[1] । चलि रघुवीर-सिलीमुख-धारी[2] ॥

यहाँ पर 'सिलीमुख' शब्द के दो अर्थ हैं (१) बाण (२) भौंरा । तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे भौंरा दौड़ कर कमल-वन में जाते हैं और कमलों में घुस जाते हैं, उसी प्रकार रघुनाथजी के शिलीमुख (बाण) रावण के सिरों में घुसने लगे । तुलसीदासजी का मुख्य लक्ष्य बाणों की ओर जान पड़ता है न कि बाण और भौंरा दोनों की ओर । इस हेतु यह श्लेष शब्दालंकार है । इसी प्रकार बिहारी-कृत नीचे लिखे दोहों में एक अर्थ की मुख्यता है, इसलिये इन दोनों का श्लेष शब्दालंकार है ।

२—दो०—अजौं तर्‌यौना[3] ही रह्यौ, श्रुति[4] सेवत इक अंग[5] ।
नाक-बास[6] बेसरि[7] लह्यौ, बसि मुकुतन[8] के संग[9] ॥

इसमें तर्‌यौ ना, श्रुति, नाक, मुकुतन, शब्दों में श्लेष है परंतु बिहारी का मुख्य तात्पर्य कर्णफूल और नथ से है न कि किसी मुमुक्षु[10] से; जैसा कि श्लेष में व्यंजित होता है। इसी से यह शब्दालंकार है । इसी प्रकार नीचे के दोहों में समझना चाहिए ।

---

१ रावण के सिर रूपी कमल-वन में घूमने वाली । २ सेना, समूह । ३ (क) कर्णफूल (ख) तर्‌यौना (न तरा) । ४ (क) कान, (ख) वेद । ५ स्वयं अकेला, अबाध्य रीति से । ६ (क) नासिका, (ख) स्वर्ग । ७ (क) नाक का गहना, (ख) जो समता का न हो । ८ (क) मोती, (ख) मुक्त लोग । ९ साथ । १० मुक्ति की इच्छा रखने वाला

३—दो०—जो चाहौ चटक[१] न घटै, मैलो होय न मित्त[२] ॥
रज[३] राजस[४] न छुवाइए, नेह[५] चीकने चित्त ॥
(इसमें 'रज' और 'नेह' शब्दों में श्लेष है)

४—दो०—दूरि भजत[६] प्रभु पीठि दै, गुन[७]-बिस्तारन-काल ।
प्रगटत निर्गुन[८] निकट ही, चंग रंग[९] गोपाल ॥
(इसमें 'गुन' और 'निर्गुन' शब्दों में श्लेष है)

नीचे लिखे हुए 'रसनिधि'-कृत दोहों में भी ऐसा ही समझो । इनमें 'नेह' शब्द में श्लेष है ।

५—दो०—धनि दृगतारन[१०] के जु तिल[११] जिनमें स्याम-सनेह[१२] ।
बिना नेह[१३] के तिल[१४] किते, परे रहत हैं देह ॥

६—दो०—कहनावत[१५] यह मैं सुनी, पोषत तन को नेह ।
नेह लगाए अब लगी, सूखन सिगरी देह ॥

७—दो०—आपु-बुसाते[१६] सज्जना[१७], नेह न दीजौ जान ।
नेही तिल नेहै तजै खरि ह्वै जात निदान[१८] ॥

(खरि = खली, निर्दयी)

८—दो०—चलि न सकै निज ठौर तें, जे तन-द्रुम[१९] अभिराम ।
तहाँ आय रस बरसिबो, लाजिम[२०] तोहि घनस्याम ॥

(रस = पानी, आनंद । घनस्याम = काला बादल, कृष्ण ।)

---

१ चमकीलापन । २ मित्र । ३ धूल । ४ राजशी, हुकूमत । ५ प्रेम, तेल । ६ भागते हैं । ७ (क) गुण, (ख) डोरी । ८ (क) निर्गुण ब्रह्म (ख) डोर कम करने पर, खींच लेने पर । ९ पतंग की तरह । १० पुतली । ११ आँख की पुतली की काली रेखा । १२ प्रेम । १३ तेल । १४ जिससे तेल निकलता है । १५ लोकोक्ति । १६ अपने चलते । १७ हे सज्जनो । १८ अंत में । १९ शरीर रूपी वृक्ष । २० उचित ।

सूचना—जहाँ कवि का स्वयं यह तात्पर्य होता है कि पाठक दोनों वा तीनों अर्थों की ओर ध्यान दें वह श्लेष अर्थालंकार है। प्रसंगवश उसके कुछ उदाहरण यहीं लिखे देते हैं जिससे पाठकगण दोनों के भेद और बारीकी को भली भाँति समझ सकें।

(अर्थगत श्लेष के उदाहरण)

१—श्लोक-यः पूतनामारणलब्धकीर्तिःकाकोदरो येन विनीतदर्पः।
यशोदयालंकृतमूर्तिरव्यात् नाथोयदूनामथवा रघूणाम्॥ *

स्वयं कवि कहता है कि इसका तात्पर्य यदुनाथ (कृष्ण) और रघुनाथ (राम) दोनों पर घटित हो सकता है।

केशव-कृत 'रामचंद्रिका' में जब रामचंद्र की सेना समुद्र पार जाकर सुवेला पर्वत पर ठहरी है, उस समय केशव ने एक विद्ग्धतामय कवित्त कहा है जिसमें रामजी की सेना के लिये अंतिम चरण में कहा है कि—यह राम की सेना है, कि विभीषण की राज्यश्री है, कि रावण की मृत्यु है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कवि का लक्ष्य तीनों अर्थों पर है। इसलिये उसे अर्था-लंकार ही मानना पड़ेगा। केशव कहते हैं—

२—क०—कुंतल ललित नील भृकुटी धनुष नैन,
कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन,
मध्य देश केशरी सुगज गति भाई है॥

* इस श्लोक के दो अर्थ हैं, एक राम-पक्ष का दूसरा कृष्ण-पक्ष का। (राम पक्ष)—जो पवित्र नामवाले हैं, जिन्होंने रण में कीर्ति पाई है, जिन्होंने काक (जयंत) का दर्प नष्ट किया, जो यश और दया से युक्त हैं, वे रघुवंशियों के नाथ रामचन्द्र। (कृष्ण-पक्ष में)—जिसने पूतना को मारने में कीर्ति पाई, जिसने काकोदर राक्षस का दर्प दूर किया, यशोदा जिसकी मूर्ति को सजाती है वे यदुवंशियों के नाथ श्रीकृष्ण।

विग्रहानुकूल सब लच्छ-लच्छ ऋच्छ-बल,
ऋच्छराजमुखी मुख 'केसोदास' गाई है।
रामचंद्रजू की चमू राज श्री विभीषन की,
रावन की मीचु दरकूच चलि आई है * ॥

* (राम-सेना के लिये)—कुंतल, ललित, भृकुटी, धनुष नयन, कुमुद, कटाच्छ, बाण=यूथप बानरों के नाम। सबल=बलवंत। सदाई=सदैव। सुग्रीव, तार, अंगद=बड़े सरदार। भूषनन=सेना में भूषणवत्। मध्यदेस=सेना का मध्य भाग। केसरी, गज=वानरों की जाति। गति भाई है=जिनकी चाल सुंदर है। विग्रह, अनुकूल=ऋच्छ सेना के यूथप। लच्छ-लच्छ ऋच्छ-बल=लाख-लाख ऋच्छों की सेना। ऋच्छराजमुखी=ऋच्छराज (जामवंत) जिसके मुखिया हैं। मुख गाई है=ये ऋच्छ-सेना के मुख-भाग (अग्रभाग) में हैं। चमू=सेना। दरकूच=कूच दर कूच डेरा डालती हुई। (राज्यश्री के लिये)—कुंतल=केश। ललित=सुंदर। नील=काले। कुमुद=कमल। बल=सौंदर्य। सुग्रीव=सुंदर गर्दन। तार=मोती। अंगद=बाजूबन्द। मध्यदेस=कमर। केसरी=सिंह। गजगति=हाथी सी चाल। बिग्रहानुकूल=शरीर के अंग यथायोग्य हैं। लच्छ······मुखी=लखों नच्छत्र-सहित चंद्रमा के समान मुखवाली। मुख······गाई है=केशव के दासों (रामभक्तों) के मुख से प्रशंसित। (मृत्यु के लिये)—कुंतल=भाला। ललित=तीच्छण। नील=काले रंग की। भृकुटी=भौंहें चढ़ाये। धनुष=धनुष लिए। नैन=(नय+न) अन्याययुक्त। कुमुद=आनंद रहित, क्रुद्ध। कटाच्छ बान=चितवन बाण-सी। सबल=बलवती। सुग्रीव=गर्दन में सुंदरता। तार=उच्च स्वर। अंगदादि भूषन न बिजायठ आदि गहने नहीं हैं। मध्य=मध्यम, असुंदर। देस=अंग। केसरी···भाई है=सिंह के हाथी पर टूटने की सी चाल है। बिग्रहानुकूल=विरोध के लिये अनुकूल समय। लच्छ···बल=जिसमें लाखों ऋच्छों का बल है। ऋच्छराजमुखी=ऋच्छ-सा भयंकर मुख। मुख······गाई है=जिसका मुख सज्जनों ने ऐसा ही कहा है।

(सेनापति कवि सूम और दाता दोनों के लिये कहते हैं)

३—क०—नाहीं नाहीं करैं[1] थोरे माँगे सब देन कहैं,
नंगन को देखि पाट देत बार-बार हैं।
जाको मुख देखे भली प्रापति की घरी होत[2],
सदा सुभ जन मन भाए निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरैं दान पाठ पर बार हैं[3]।
'सेनापति' बैनन की रचना बिचारो,
जामें दाता अरु सूम दोऊ कीन्हें इकतार[4] हैं॥

पट=वस्त्र, किवाड़। सुभ जन मन भाए=दाता-पक्ष में 'सुभ जन मन भाए' और सूमपक्ष में 'सुभ जनम न भाए'। भोगी=भोग-विलास करनेवाला और साँप। कन-कन=कनक न और कण-कण (थोड़ा-थोड़ा)। भूषन कवि कहते हैं—

४—क०—सीता, सँग सोभित[5] सुलच्छन सहाय[6] जाके,
भूपर भरत नाम भाई नीति चारु है।
'भूषन' भनत कुल सूर-कुल भूषन है,
दासरथी सब जाके भुज भुव-भारु है॥
अरि-लंक तोर जोर जाके संग बान रहैं,
सिंधुर हैं बाँधे जाके दल को न पारु है।
तेगहि कै भेंटै औनराकस मरद जानै,
सरजा सिवाजी राम ही को अवतारु है॥

---

१ 'नहीं' नहीं करते। २ प्राप्ति की घड़ी होती है, प्राप्ति की घड़ी चली जाती है। ३ दान-पाठ पर निछावर कर देते हैं, दान पाठ में कुछ नहीं देते। ४ एक समान। ५ सीता संग सोभित=लक्ष्मी से युक्त (शिवाजी पक्ष में)। ६ सहायक।

इसमें अंतिम चरण के अंतिम वाक्य से स्पष्ट प्रकट होता है कि कवि का लक्ष्य दोनों ओर है।

सीता संग सोभित=सीता के सँग शोभित। लच्छन=लक्ष्मण, शुभ लक्षण। भरत=भरता है, भरतजी। सूरकुल=सूर्यकुल; वीरगण। दासरथी=दशरथ के पुत्र, रथी हैं दास जिसके। लंक=लंका, कमर। बान रहैं=बाण रहते हैं, बानर हैं। सिंधुर हैं बाँधे=सिंधु को बाँधा, हाथी बाँधे रहते हैं। तेगहि कै भेंटै=तलवार ही से भेंटता है, उसको पकड़ कर भेंटता है। जौन राकस मरद जानै=जो नर अकस में मरद समझता है, जो राक्षसों को मर्दन करना चाहता है।

इसी प्रकार और भी उदाहरण समझ लेना चाहिये।

अर्थश्लेष के और अधिक उदाहरण अर्थालंकार में दिए जायगे।

सूचना—शब्दश्लेष में एक या दो शब्द होते हैं और उनका श्लेषार्थ केवल उन्हीं शब्दों पर निर्भर रहता है। यदि वे शब्द पर्यायवाची शब्दों में बदल दें तो वह अलंकार ही मिट जाता है। इसी से उसे शब्दालंकार मानना पड़ा है। अर्थश्लेष में शब्दों को बदल देने पर भी अलंकार बना रहता है। कहीं ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों को बदल सकते हैं, कुछ को नहीं बदल सकते। ऐसे स्थान पर जिसकी प्रधानता हो वही मानना चाहिए।

(दूसरा पटल)

अर्थालंकार

(१) उपमा

अर्थालंकारों में सर्वोत्तम और अनेक अलंकारों का मूल उपमा अलंकार है। इसीसे इसे पहले लिखते हैं।

दोहा—रूप रंग गुन काहु को, काहू के अनुसार।
तासों उपमा कहत हैं, जे सुबुद्धि आगार ॥
जाको बरनन दीजिए, सो 'उपमेय' प्रमान।
जाकी समता दीजिए, ताहि कहिय 'उपमान' ॥
उपमेयऽरु उपमान मैं, समता जेहि हित होय।
सो 'साधारन धर्म' है, कहत सयाने लोय ॥
सो, से, सी, इव, तूल, लौं, सम, समान उर आन।
ज्यों, जैसे, इमि, सरिस, जिमि, 'उपमा वाचक' जान ॥

कहीं-कहीं 'रंग; नाईं, न्याय और मनिन' भी वाचक होते हैं।

विवरण—जब दो वस्तुओं में पृथकता रहते हुए भी कोई समता वर्णन की जाय तब उपमा अलंकार होता है। समता आकृति, रंग और गुण की होनी चाहिए। वर्णन करने में जिसकी मुख्यता हो उसे 'उपमेय', जिससे समता दें उसे 'उपमान', जिस हेतु समता दें उसे 'धर्म' और जिस शब्द के आश्रय से समता प्रकट करें उसे 'वाचक' कहते हैं। जैसे—

१—दो०—बंदौं कोमल कमल से जगजननी के पायँ।

इसमें कवि का मुख्य तात्पर्य 'जगजननी' (पार्वती)

चरणों के वर्णन से है, इस हेतु 'पायँ' शब्द 'उपमेय' है। कमल 'उपमान', कोमल 'धर्म' और 'से' वाचक है।

सूचना—अँगरेजी में इस अलंकार को 'सिमिली' (Simile) और फारसी तथा उर्दू में 'तशबीह' कहते हैं।

उपमा के दो भेद हैं—(क) पूर्णा, (ख) लुप्ता।

(क) पूर्णोपमा

दो० वाचक साधारन धरम, उपमेयरु उपमान।
ये चारो जहँ प्रगट तहँ, पूरन-उपमा जान॥

१—दो०—रामलषन सीता-सहित, सोहत परननिकेत[1]
जिमि बासव बस अमरपुर[2] सची[3]-जयंत[4]-समेत॥

यहाँ राम, लखन और सीता उपमेय, वासव (इन्द्र) जयंत और सची उपमान, 'सोहत' धर्म और 'जिमि' वाचक, चारों प्रकट हैं। इसी प्रकार और भी जानो। यथा—

२—सो०—उदय सूर[5] सो भाल, सिंदुर-घसो गनेस को[6]।
हरत विघन को जाल[7], जो जग व्यापक तिमिर[8] सो॥

यहाँ भाल उपमेय, सूर उपमान उदय साधारण धर्म, 'सो' वाचक और विघ्नजाल उपमेय, तिमिर उपमान, हरत धर्म और 'सो वाचक प्रकट है।

३—सवैया

आनंद देत चकोर-हितून[9] को, है खल-कोकन[10] को दुखदारो।
कंत[11] है संत-कुमोदन[12] को कल चाँदनी कित्ति[13] महासि[14] भारो॥
'गोकुल' सील सुधा सरसै बरसै सुख है अति ही उजियारो।
मंद करै अरविंदन को जस चंद सो संत महीप तिहारो॥

---

१ पर्णकुटी। २ इंद्रलोक। ३ इंद्राणी। ४ इंद्र का पुत्र। ५ सूर्य। ६ सिंदूर लगा हुआ गणेश का मस्तक। ७ समूह। ८ अंधकार। ९ मित्र। १० चकवाक। ११ स्वामी। १२ कुईं, सफेदकमल। १३ कीर्ति। १४ उज्ज्वल

४—चौपाई

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं॥

५—चौपाई

रामहिं लखन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर-किसोरक[1] जैसे॥

६—क०—फूलि उठे कमल से अमल[2] हितू[3] के नैन,
कहै 'रघुनाथ' भरे चैनरस सियरे[4]।
दौरि आए भौंर से करत गुनी गुन गान
सिद्ध से सुजान सुख-सागर सों नियरे[5]॥
सुरभी[1] सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिंता जनक के जियरे[7]।
धनुष पै ठाढ़े राम रबि से लसत आज,
भोर के-से नखत[8] नरिंद[9] परे पियरे[10]॥

७—चौ०—करि-कर[11]-सरिस सुभग भुजदंडा।

८—चौ०—पीपर-पात-सरिस मन डोला।

९—चौ०—बिरही-इव प्रभु करत बिषादा॥

(पूर्णोपमा का चक्र)

उपमेय	उपमान	वाचक	धर्म	उदाहरण
राम	रबि	से	लसत	राम रबि से लसत
नरिंद	भोर के नखत	से	परे पियरे	भोर कैसे नखत नरिंद परे पियरे
भुजदंडा	करिकर	सरिस	सुभग	करिकर सरिस सुभग भुजदंडा
मन	पीपर पात	सरिस	डोला	पीपर पात सरिस मन डोला
प्रभु	बिरही	इव	करत बिषादा	बिरही इव प्रभु करत बिषादा

१ बच्चा। २ निर्मल। ३ हितुआ, मित्र। ४ शीतल। ५ निकट। ६ गया। ७ हृदय में। ८ प्रातः काल के तारे। ९ राजा। १० पीले ११ हाथी की सूँड़।

सूचना—उपमालंकार के प्रयोग से निम्नलिखित पाँच लाभ हैं—

(१) अभीष्ट वस्तु का सम्यक् ज्ञान होता है।

(२) दो वस्तुओं की चमत्कारिक तुलना से चित्त प्रसन्न होता है।

(३) उपमा-जनित परिणाम-दर्शन से स्थायी शिक्षा मिलती है।

(४) भाषा में चमत्कार और सौंदर्य आ जाता है।

(५) थोड़े में बहुत सा बोध होता है।

अतः कविता में इस अलकार की अनिवार्य आवश्यकता है।

(ख) लुप्तोपमा

दो०—वाचक साधारन धरम उपमेयरु उपमान।
इनमैं इक द्वै तीन, बिनु, लुप्त विविध-विधान॥

विवरण – पूर्णोपमा में चार वस्तुएँ होती हैं। इनमें से जहाँ किसी का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा कहते हैं।

इस विषय में भिन्न-भिन्न आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं। हमारे मत से जो हमें ठीक जँचते हैं उन्हीं को हम यहाँ लिखते हैं।

(१) वाचकलुप्ता

जहाँ वाचक शब्द का लोप हो, जैसे—

१—चौ०—जारि दियो उपसुंद-सुत[१], दुसह-रूप दुख-धाम।
सूर-सिरोमनि रावरे[२], राम काम अभिराम॥

२—चौ०—सरद-मयंक[३]-वदन[४] छबिसींवाँ[५]।

३—चौ०—नव अंबुज अंबक[६]-छबि नीकी।

४—चौ०—सरद बिमल-बिधु बदन सोहावन।

---

१ एक दैत्य। २ आपके। ३ चंद्रमा। ४ मुख। ५ सीमा। ६ आँख।

५—दो०—नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन वारिज[1] नयन।

यहाँ सो, से, सम इत्यादि वाचक शब्दों का लोप किया गया है।

(२) धर्मलुप्ता

जहाँ साधारण धर्म का लोप हो, जैसे—

१—चौपाई

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी[2]। हरषि सुधा सम गिरा[3] उचारी[4]॥

२—चौ०—तुम सम पुरुष न मो सम नारी।

३—दो०—गौतम नारी तरि गई, रही जो अघ[5]सों परि।
पाय सजीवन-मूरि-सो, प्रभु-पद-पंकज धूरि॥

४— सवैया

बाहैं भुजंग[6] सी, पल्लव-से कर, आँगुरी पै नख हीरक-हार[7] से।
त्यों 'लछिराम' घटान-से रंग, प्रभा बिहँसे मुकुताहल-हार[8] से॥
ये भ्रमरावलि लौं[9]जुलफै युग भौंहैं कमान[10] सी आनन[11] 'मार[12]'से
बालमयंक[13]'लौं भालथली रघुनाथ के लोचन खंजकुमार[14] से॥

५—सो०—कुंद इंदु[15] सम देह, उमारमन करुनायतन[16]।

६—चौ०—करिकर[17] सम प्रभुभुज दसकंधर।

इन उदाहरणों में साधारण धर्म का लोप किया गया है। इसी प्रकार और भी लुप्ताओं में केवल नाम ही से उसकी परिभाषा जान लेनी चाहिए।

---

१ कमल। २ महादेव। ३ वाणी। ४ कही। ५ पाप। ६ सर्प। ७ हीरे की माला। ८ मुक्ताफल, मोती। ९ समान। १० धनुष। ११ मुख। १२ कामदेव। १३ द्वितीया का चंद्रमा। १४ खंजन के बच्चे। १५ चंद्रमा। १६ दया के घर। १७ हाथी की सूँड़।

(३) उपमानलुप्ता

१—दो०—जाके से चंचल नयन जग काहू के हैं न।
२—दो०—सुंदर नंदकिसोर सा जग में मिलै न और।

३—सवैया

लक्खन राम से राज समाज में राजन कौन महीप के बारे।[1]

४—चौपाई

समर घोर नहिं जाय बखाना। तेहि सम नहिं प्रतिभट जग आना[2]॥

(४) उपमेयलुप्ता

१—सो०—चंचल हैं ज्यों मीन, अरुनारे[3] पंकज सरिस।
निरखि न होय अधीन, ऐसो नर-नागर कवन॥

२—सवैया

साँवरे गोरे घटा-छटा से बिहरैं मिथिलेस की बागथली[4] में।

(५) वाचकधर्मलुप्ता

जिसमें वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप किया जाय।

१—चौपाई

ईस-प्रसाद[5] असीस तुम्हारी। सब सुतबधू देवसरि-बारी[6]।
२—चौ०—बिधुबदनी[7] मृगसावक लोचनि।
३—दो०—लखु लखु सखि सारस[8]-नयन इंदु बदन घनस्याम।
बिज्जुहास[9] दाड़िमदसन[10], बिंबाधर[11] अभिराम।
४—चौ०—केहरि[12]-कंधर चारु जनेऊ।
५—दो०—लखि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदंब की माल।

सूचना—इसके कथन में बड़ी सावधानी चाहिए। तनक ही भेद से यह अलंकार रूपक अलंकार हो जाता है।

---

१ बालक। २ अन्य। ३ लाल। ४ बाटिका। ५ महादेव जी की प्रसन्नता। ६ गंगाजल। ७ चंद्रमुखी। ८ कमल। ९ बिजली सी हँसी। १० अनार से दाँत। ११ बिंबाफल से ओठ। १२ सिंह के समान कंधा।

(६) धर्मोपमानलुप्ता

जिसमें धर्म और उपमान का लोप किया जाय।

१—दो०—रे अलि मालति सम कुसुम, ढूँढ़ेहु मिलिहै नाहिं।

यहाँ मालती कुसुम उपमेय, सम वाचक मौजूद है। सुंदर मनोहर आदि धर्म का और 'मिलिहै नाहिं' कह कर उपमान का लोप किया गया है।

२—चौ०—आजु पुरंदर[1] सम कोउ नाहीं।

३०—सो०—देखो दाड़िम से दसन।

यहाँ 'दसन उपमेय और 'से' वाचक मौजूद है। श्वेत, चमकीले इत्यादि धर्म का और 'दाड़िम बीज' उपमान का लोप है, क्योंकि केवल 'दाड़िम' दाँतों का उपमान नहीं कहा जा सकता। दाड़िम शब्द केवल उसका लक्षक है।

४—चौपाई

देख्यौं खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी॥

(७) धर्मोपमेयलुप्ता

जहाँ धर्म उपमेय का लोप किया जाय जैसे—

१—सवैया

त्यौर तिरीछे किए मुनि संगहि हेरत संभु-सरासन[2] मार[3] से।
त्यों 'लछिराम' दुहूँ कर बान कमान-सो भौंहै सुब्रह्मवतार से॥
सामुहें श्रीमिथिलापति के डटि ठाढ़े सही रस बीर-सिंगार से
नीलम चंपक माल से कौन? स्वयंबर में मृगराज-कुमार[4] से॥

यहाँ मार से, रस बीर-सिंगार से, नीलम चंपक-माल से और मृगराज-कुमार से इत्यादि में उपमान और वाचक मौजूद हैं। धर्म का प्रत्यक्ष लोप है। अज्ञान-सूचक 'कौन' शब्द कह कर

---

१ इंद्र। २ धनुष। ३ कामदेव। ४ सिंह।

उपमेय का लोप किया गया है, जो मुनि-संग, श्रीमिथिलापति सामुहँ, और स्वयंबर इत्यादि के साहचर्य से लक्षित होता है।

(८) वाचकोपमेयलुप्ता

जहाँ वाचक और उपमेय का लोप किया जाय जैसे—

१—दो०—अटा[1] उदित होतो भयो, कुश्चिधर पूरन चंद।

२—दो०—चढ़ो कदम[2] पै कालिया, विषधर[3] देखो आय।

(९) वाचकोपमानलुप्ता

जिसमें वाचक और उपमान का लोप किया जाय।

१—दो०—तेरे ये कटु वचनहू, सुनत हियो हरषात।

२—सो०—सूक्ष्म हरि-कटि-पेन[4]।

३—चौपाई

चितवनि चारु मार-मद हरनी[5]। भावत हृदय जानि नहीं बरनी।

४—चौ०—अरुन नयन उर बाहु बिसाला।

५—सो०—मुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।

६—चौपाई

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेह[6] विदेह[7] बिसेषी।

(१०) वाचक धर्म-उपमानलुप्ता

जिसमें केवल उपमेय का जिक्र हो और युक्ति से उपमान का अभाव कहा जाय।

१—सो०—राम सरूप तुम्हार, बचन-अगोचर[8] बुद्धि-पर[9]।

---

१ छत, अटारी। २ कदंब का वृक्ष। ३ सर्प। ४ ठीक सिंह की कमर के समान पतली। ५ कामदेव का मद हरने वाली। ६ जनक। ७ शरीर के ज्ञान से रहित। ८ वचनों से जो न जाना जा सके। ९ बुद्धि से परे।

२—चौपाई

अहै अनूप राम प्रभुताई। बुधि-बिबेक-बल तरकि न जाई[1]।
३—चौ०—देखि अनूप एक अमराई[2]।
४—चौ०—अति अनूप जहँ जनक-निवासू।
५—दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाय।

सूचना—'वाचक-धर्म-उपमेयलुप्ता' का 'रूपकातिशयोक्ति' अलग ही एक अलंकार है। 'धर्म-उपमान-उपमेयलुप्ता' में केवल वाचक रहेगा जिससे कोई अलंकारिता नहीं आ सकती, और 'वाचकोपमेयोपमानलुप्ता' में केवल साधारण-धर्म के कथन से अलंकारिता नहीं आ सकती।

---

१ अनुमान नहीं हो सकता। २ आम का बगीचा।

(लुप्तालंकार-सूचक चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	धर्म	वाचक
१—वाचक-लुप्ता	राम	काम	अभिराम	×
	नयन	वारिज	तरुन अरुन	×
२—धर्मलुप्ता	तुम	पुरुष	×	सम
	मो	नारी	×	सम
	देह	कुंद, इंदु	×	सम
३—उपमान-लुप्ता	नंदकिसोर	×	सुन्दर	सो
	लक्खन-राम	×	राजत	से
४—उपमेय लुप्ता	×	घटा	साँवरे	से
	×	छटा	गोरे	से
५—वाचक-धर्मलुप्ता	सुतवधू	देवसरि-बारी	×	×
	कंधर	केहरि (कंधर)	×	×
६-धर्मोपमान-लुप्ता	पुरंदर	×	×	सम
	पुरुष	×	×	अस
७-धर्मोपमेय-लुप्ता	नारी	×	×	अस
	×	नीलमचपक-माल	×	से
८—वाचकोपमेयलुप्ता	×	मृगराज-कुमार	×	से
	×	पूर्णचंद्र	छबिधर	×
९—वाचकोपमानलुप्ता	नयन	×	अरुन	×
	उर	×	बिसाल	×
	बाहु	×	बिसाल	×
१०-वाचकधर्मोपमानलुप्ता	राम-प्रभुताई	×	×	×
	जनकनिवासू	×	×	×
	अमराई	×	×	×

उदाहरण

=राम काम अभिराम।

=तरुन अरुन बारिज नयन।

=तुम सम पुरुष न मो सम नारी।

=कुंद-इंदु सम देह।

=सुंदर नंदकिसोर सो जग में मिलै न और।

=लक्खन-राम से राजसमाज में राजत कौन महीप के बारे।

=साँवरे गोरे घटा-छटा से बिहरैं मिथिलेस की बागथली में।

=सब सुतबधू देवसरि-बारी।

=केहरि-कंधर चारु जनेऊ।

=आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।

=कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी।

=नीलम चंपक-माल से कौन स्वयंबर में मृगराज-कुमार से।

=अटा उदय होतो भयो छबिधर पूरन चंद।

=अरुन नयन उर बाहु बिसाला।

= { अहै अनूप राम प्रभुताई।
अति अनूप जहँ जनक-निवासू।
देखि अनूप एक अमराई।

सूचना—जो पाठक उर्दू हिंदी, अँगरेजी तीनों भाषाएँ जानते हों वे आगेवाले चक्र को भलीभाँति समझ लें—

हिंदी	उर्दू वा फ़ारसी	अँगरेजी।
उपमा	तशबीह	सिमिली (Simile)
पूर्णोपमा	तशबीह कामिल	कंप्लीट सिमिली (Complete Simile)
उपमेय	मुशब्बह	दी सबजेक्ट कंपेयर्ड (The subject compared)
उपमान	मुशब्बह बिही	दी आबजेक्ट विद् ह्विच दी कंपेरीजन इज मेड। (The object with which the comparison is made)
वाचक	हर्फ़ तशबीह	दी वर्ड इम्प्लाइंग् कंपेरीजन (The word implying comparison)
धर्म	वजह तशबीह	दी कामन् पेट्रीब्यूट (The common attribute)
लुप्तोपमा	तशबीह नामुकम्मल	इन्कंप्लीट सिमिली (Incomplete Simile)

(२) मालोपमा

दो०—जहँ एकै उपमेय के, बरनै बहु उपमान।
भिन्न अभिन्नहु धर्म तें, मालोपमा बखान॥

विवरण—जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायँ वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है—
(१) भिन्नधर्मा, (२) एकधर्मा

(१) भिन्नधर्मा मालोपमा

जहाँ अनेक उपमानों के पृथक्-पृथक् धर्मों के वास्ते उपमा दी जाय। जैसे—

१—सवैया

तेज-निधानन[1] में रवि ज्यों छविवंतन में विधु[2] ज्यों छवि छाजै।
सैलन[3] में ज्यों सुमेरु लसै बर-वृत्तन में कलपद्रुम राजै॥
देवन में 'मतिराम' कहै मघवा[4] जिमि सोहत सिद्ध[5] समाजै।
राउ छतासुत[6] भाऊ दिवान जहान के राजन में इमि राजै॥

२—दो०—मरकत[7] से दुतिवंत हैं, रेसम से मृदु बाम[8]।
निपट[9] महीन सुनार से, कच[10] काजर से स्याम॥

३—चौपाई

बंदौं खल जस[11] सेस सरोषा। सहस बदन[12] बरनै परदोषा॥
पुनि प्रनवौं पृथुराज[13] समाना। पर-अघ सुनै सहसदस काना॥
बहुरि सक[14] सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक[15] हित जेही॥

४—दो०—सफरी[16] से चंचल घने, मृग से पीन[17] सुपेन।
कमलपत्र से चारु ये, राधेजू के नैन॥

(२) एकधर्मा मालोपमा

जहाँ सब उपमानों का एक ही धर्म कथन किया जाय वा अनुमान कर लिया जाय।

१—तेज से युक्त। २ चंद्रमा। ३ पर्वत। ४ इंद्र। ५ एक प्रकार के देवता। ६ छत्रशाल के पुत्र। ७ नीलम ८ टेढ़े, घुँघराले। ९ अत्यन्त पतले। १० बाल। ११ जैसे। १२ हजार मुख से। १३ राजा बेन का पुत्र। १४ इंद्र। १५ जिसे देवताओं की सेना प्यारी है, शराब जिसे अच्छी लगती है। १६ मछली। १७ पुष्ट।

१—हरिगीतिका

हिमवंत जिमि गिरजा महेसहिं, हरिहि[1] श्री[2] सागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी बिस्व-कल-कीरति नई॥

२—हरिगीतिका

जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंद्र बिनु जिमि जामिनी[3]।
तिमि अवध 'तुलसीदास' प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी॥

३—चौपाई

बैनतेय[4] बलि जिमि चह कागू। जिमि सस[5] चहै नाग अरि[6] भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही[7]। सुख संपदा चहै सिवद्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकिता कि कामी लहई॥
हरिपद-बिमुख परमगति चाहा। तस तुम्हार लालच मरनाहा[8]॥

४—क०—सारद[9] सो सेस सो, सुधा सों, सक सिंधुर[10] सो,
सुरसरिता[11] सो सूर ससि सो बखान है।
हंसन सो, हीरन सो, हिम सो, हलायुध[12] सो,।
हरगिरि[13], हास्यहू सो, जपन जहान है॥
भनत 'मुरार' घनसार[14] सर्दघनहू[15] सो,
पारद[16] सो, पय[17] सो पिनाकी[18] सो प्रमान है।
आज युद्ध-जीत[19] जस तखन महीप तेरो,
दीप-दीप दीपै दीपमालिका समान है॥

---

१ विष्णु को। २ लक्ष्मी। ३ रात्रि। ४ गरुड़। ५ खरगोश। ६ सिंह। ७ क्रोधी। ८ नरनाथ, राजा। ९ सरस्वती। १० इंद्र का हाथी, ऐरावत। ११ गंगा। १२ बलराम। १३ कैलास। १४ कपूर। १५ शरत्कालीन बादल। १६ पारा। १७ दूध। १८ महादेव। १९ युद्ध को जीतनेवाले।

५—सवैया—भृगुनंद[1] कुठार सो, वासव[2] बज्र सो.........।
त्रिपुरारि-त्रिसूल सो श्रीपति चक्र सी 'बंक' कहै बड़वानल-सो ॥
नरसिंह-नखालि[3] सो खेत[4] में कालो सो सेस मुखानल की झल[5] सो।
तरवार तिहारिय मान महीपति है बिकराल हलाहल[6] सो ॥

६—सवैया

सारद नारद पारद अंग सो क्षीर-तरंग सो गंग की धार सी।
संकर-सैल सो चंद्रिका फैल सो सारस[7]-गैल सी हंस-कुमार सी।
'दास' प्रकास हिमाद्रि विलास सी कुंद सो कांस सो मुक्ति की डार सी।
कीरति हिंदु-नरेस की राजति उज्ज्वल चारु चमेली के हार सी।

७—कवित्त—इंद्र जिमि जंभ[8] पर बाड़व[9] सुअंभ[10] पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है।
पौन बारिबाह[11] पर संभु रतिनाह[12] पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा[13] द्रुमदंड[14] पर चीता मृग-झुंड पर,
'भूषन' बितुंड[15] पर जैसे मृगराज[16] है।
तेज तिमिरंस[17] पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है॥

८—कवित्त—सक्र[18] जिमि सैल पर अर्क[19] तम फैल पर,
बिघन की रैल[20] पर लंबोदर[21] लेखिए।
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर,

१ परशुराम। २ इंद्र। ३ नृसिंह के नखों का समूह। ४ क्षेत्र (युद्ध-भूमि)। ५ आग की लपट। ६ विष। ७ कमल। ८ महिषासुर का पिता जिसे इंद्र ने मारा था। ९ बाड़वाग्नि। १० जल। ११ बादल। १२ कामदेव। १३ दवाग्नि। १४ वृक्ष की लकड़ी। १५ हाथी। १६ सिंह। १७ अंधकार का अंश। १८ इंद्र। १९ सूर्य। २० समूह। २१ गणेश।

'भूषन' ज्यों सिंधु पर कुंभज[1] बिसेखिए ॥
हर ज्यौं अनंग[2] पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग पर पारथ[3] ज्यों पेखिए।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग[4] पर,
म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिए ॥

(समुच्चयोपमा)

कोई-कोई कवि 'समुच्चयोपमा' नाम का एक और भी अलंकार मानते हैं, जिसका लक्षण यह है कि उपमेय और उपमान की समता कई-एक धर्मों के कारण की जाय। जैसे—

१—दो०—चंपक-कलिका सी अहै, रूप रंग अरु बास[5]।

यहाँ एक ही उपमेय (किसी नायिका) की समता एक ही उपमान (चंपक-कलिका) से रूप, रंग और बास तीन धर्मों के कारण की गई है।

२—दो०—बहुबर्नी[6] सहज-प्रिया,[7] तमगुनहरा[8] प्रमान।
जगमारग-दरसावनी, सूरज-किरन समान ॥

(३) रसनोपमालंकार

दो०—कथित प्रथम उपमेय जहँ, होत जात उपमान।
ताहि कहैं रसनोपमा, जे जग सुकबि-प्रधान ॥

विवरण—कई-एक उपमालंकारों की एक शृंखलाबद्ध श्रेणी को, जिसमें क्रमशः प्रथम कहा हुआ उपमेय उपमान होता जाता है, रसनोपमा कहते हैं।

---

१ अगस्त्य। २ कामदेव। ३ अर्जुन। ४ हाथी। ५ सुगंध। ६ बहुत से रङ्गवाली। ७ प्रजा (मनुष्यों) की प्यारी। ८ तम (अंधकार, तमोगुण) को हरने वाली।

उदाहरण —

१—दो०—मति सी नति[1], नति सो बिनति, बिनती सो रति[2] चारु।
रति सी गति, गति सी भगति, तो मैं पवनकुमारु[3]॥

२—क०—बंस[4] सम बखत[5], बखत सम ऊँचो मन,
मन सम कर[6], कर सम करो[7] दान के।

३—मुकुर[8] सम बिधु,[9] बिधु सरिस मुख, मुख समान सरोज[10]॥

४—सवैया

न्यारो न होत बफारो[11] ज्यों धूम[12] तें, धूम ज्यों जातघने-घन[13] में मिलि
'दास' उसास मिलै जिमि पौन[14] में, पौन ज्यों पैठत आँखिन में पिलि
कौन जुदो करै लोन ज्यों नीर में, नीर ज्यों छीर में जात बरो खिलि
यों मति मेरी मिली मन मेरे सों, मो मन गो मनमोहन सों मिलि

५—दो०—बच सी माधुरि मूरती, मूरति सो कलकीति[16]।
कीरति लों सब जगत में, छाय रही तब नीति॥

६—दो०—सुभ स्वरूप के सम सुमति, सुमति सरिस गुन ग्यान।
सुगुन ग्यान सम उद्यमहु, उद्यम से फल जान॥

(४) अनन्वयोपमा

दो०—जहाँ होय उपमेय को, उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वय कहत हैं, जे जन परम सुजान॥

विवरण—जहाँ उपमान के अभाव के कारण एक ही वस्तु उपमेय और उपमान दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयालंकार होगा।

१—नम्रता। २ प्रेम। ३ हनुमान। ४ कुल। ५ भाग्य। ६ हाथ। ७ हाथी। ८ शीशा। ९ चन्द्रमा। १० कमल। ११ भाफ। १२ धुआँ। १३ बादल। १४ वायु। १५ बढ़िया हो जाता है। १६ कीर्ति।

१—चौपाई

लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन सम ये उपमा उर आनी॥

२—हरिगीतिका

उपमा न कोउ कह 'दास तुलसी' कतहुँ कवि कोविद[1] लहैं।
बल विनय विद्या सील सोभा-सिंधु इन सम येइ अहैं॥

३—दो०—मिलो न और प्रभा रती[2], करो भारती[3] दौर।
सुंदर नंदकिसोर से, सुंदर नंदकिसोर॥

४—दो०—निरवधि[4], गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि।

५—चौ०—स्वामि गुसाइँहि सरिस गुसाईं।
मोहिं समान मैं स्वामि दोहाई॥

६—सवैया

श्रीरघुनाथ-प्रताप लौं भूपर श्रीरघुनाथ प्रताप की लाली।

७—सवैया

मैथिली[5] सी तिहुँ लोकन में मिली मैथिली की सुभ सुंदरताई।

८—सवैया

राम से राम, सिया सी सिया सिर मौर बिरंचि[6] विचारि सँवारे।

(५) उपमेयोपमा

दो—उपमा लगै परस्पर, सो उपमा-उपमेय।

विवरण—जहाँ उपमेय के लिये केवल एक ही उपमान हो, तीसरी सदृश वस्तु का अभाव हो, वहाँ उपमेयोपमा' अलंकार कहा जायगा। जैसे—

१—चौ०—वे तुम सम तुम उन सम-स्वामी।

---

१ पंडित। थोड़ी भी। सरस्वती। ४ सीमा रहित। ५ जानकी। ६ ब्रह्मा।

२—सवैया

तो मुख सो ससि सोहत है बलि सोहत है ससि सो मुख तेरो।

३—सवैया

भूपर भाऊ महीपति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो।

४—सवैया

लक्खन-राम कलाधर[1] से सो कलाधर लक्खन-राम सो सोहै।

५—दो०—सुधा सन्त के बैन सम, बैन सुधा-सम जान।
बैन खलन के बिषहि से, विष खल बैन समान॥

६—सवैया

अंबर गंग[2] सो है सरजू, सरजू सम गंग-छटा नभ[3] साजै।
यों 'लछिराम' सुदेव से सेवक, सेवक से सुभदेव समाजै॥
सोहैं सुरेस[4] से राम नरेस, सुरेसहु राम नरेस सो राजै।
औधपुरी अमरावती[5] सो, अमरावती औधपुरी सी बिराजै।

सूचना—ये ऊपर लिखे हुए पाँचों अलङ्कार उपमा ही के भिन्न-भिन्न भेद हैं। प्राचीन कवियों ने उपमा के और भी अनेक भेद माने हैं, पर उनमें कोई विशेष विलक्षणता नहीं है।

उपमा अलंकार ही कविता को जान और कवियों का पुष्ट आधार है। आगे के अनेक अलंकारों में भी 'उपमा' ही प्राणवत् अंतर्हित रहेगी। इसलिये इनमें उपमेय और उपमान के लिये जो शब्द लिखे जायँगे वे केवल पर्याय-मात्र होंगे। उन्हें यहीं समझ लेना चाहिए।

उपमेय = { वर्ण्य, प्रस्तुत }, उपमान = { अवर्ण्य, अप्रस्तुत }

१ चंद्रमा। २ आकाश-गंगा। ३ आकाश। ४ इंद्र। ५ इंद्रपुरी।

(६) ललितोपमा

दो०—जहँ समता को दुहुन को, लीलादिक पद होत।
तेहि कहत ललितोपमा, सकल कविन के गोत॥

विवरण—जहाँ उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम, समान, लौं, इव, तुल्य इत्यादि पद न लाकर ऐसे पद लाए जाते हैं जिनसे उपमेय और उपमान में बराबरी मुकाबला मित्रता, ईर्ष्या इत्यादि सूचक भाव प्रकट होते हैं उसे 'ललितोपमा' कहते हैं।

दो०—बहसत[1], निदरत, हँसत, अरु छवि अनुहरत[2] बखानि।
सत्रु, मित्र, अरु होड़कर[3], 'लीलादिक' पद जानि॥

विवरण—जहाँ बहसत, हँसत, निदरत, छवि अनुहरत, शत्रु है, मित्र है, होड़ लगा है इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द उपमेय और उपमान की बराबरी प्रकट करने के लिये आते हैं वहाँ 'ललितोपमा' समझना चाहिए। जैसे :—

१—क०—साहि तनै सरजा[4] सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी[5] सुर की सभा को निदरति है।
'भूषन' भनत जाके एक-एक सिखर तें,
केते धौं नदी-नद की रेल[6] उतरति है॥
जोन्ह[7] को हँसति जोति हीरा-मनि मंदिरन,
कंदरन में छवि कुहू[8] की उछरति है।
ऐसो ऊंचो दुरग महाबली को जामें,
नखतावली सों बहस दीपावली करति है॥

---

१ बहस करना। २ शोभा की समानता होना। ३ बराबरी करना। ४ शिवाजी की उपाधि, शरजाह। ५ सुमेरु पर्वतवाली। ६ प्रवाह। ७ चाँदनी। ८ अमावस्या।

२—सवैया

उत स्याम-घटा इत हैं अलकैं बग-पाँति उतै इत मोती लरी।
उत दामिनि दंत-चमंक इतै उत चाप¹ इतै भ्रुव बंक² धरी॥
उत चातक ता पिउ-पीउ रटै निसरै न इतै पिउ³ एक घरी।
उत बूँद अखंड इतै अँसुवा बरसा विरहीनि तें होड़ परी॥

सूचना—इसी को केशवदास ने 'सकीर्णोपमा' कहा है और उदाहरण दिया है—

३—क०—विधु कैसो बन्धु, किधौं चोर हास्य रस को कि,
कुंदन⁴ को बादी किधौं मोतिन को मीत है॥
× × ×
किधौं केशवदास रामचंद्र जू को गीत है।

यहाँ रामजी के यश की 'श्वेतता' दरसाने के लिये विधु को बंधु, हास्यरस का चोर, कुंदन का बादी (मुद्दई) और मोती का मित्र कहा है। इसी प्रकार का कथन 'ललितोपमा' कहलाता है क्योंकि ऐसे कथनों से एक प्रकार की समता ही प्रकट होती है।

(७) प्रतीप

सूचना— प्रतीप' शब्द का अर्थ है 'उलटा'। अलंकार-शास्त्र में इसका अर्थ लिया जाता है 'उपमा के अंगों का उलटफेर'। उपमा अलकार में जिस जगह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं। ठीक उसके प्रतिकूल इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते हैं। ऐसा करने से उपमेय की उत्कृष्टता, उपमालंकार की अपेक्षा कुछ और अधिक बढ़ जाता है। यही इस अलंकार का तात्पर्य है। प्राचीनों ने इस अलंकार के पाँच प्रकार माने हैं। यथा—

१ धनुष। २ टेढ़ी भौंह। ३ प्रिया। ४ सोना।

(पहला प्रतीप)

दो०—जहँ प्रसिद्ध उपमान को, प्रगटि करिय उपमेय।
तासों प्रथम प्रतीप कवि, बरनत बुद्धि अजेय॥

पायन से गुललाला[1] जपादल[2] पुंज बँधूक[3] प्रभा बिथरै है।
हाथ से पल्लव नौल[4] रसाल के लाल प्रभाव प्रकास करै है॥
लोचन की महिमा सी त्रिबेनी लखे 'लछिराम' त्रिताप हरै है।
मैथिली आनन से अरबिंद कलाधर[5] आरसी जानि परै है॥

२—सो०—तो पद से अनुमानि, तरुन अमल कोरे कमल।
याही ते सनमानि, अवतंसित[6] मोहन करै॥

३—दो०—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाय मन-काम।
उतरि नहाए जमुनजल, जो सरीर-सम स्याम॥

इन उदाहरणों पर विचार करने से प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि पैर, हाथ, लोचन मुख और शरीर (या शरीर का रंग) जो उपमा अलंकार में उपमेय माने जाते, वे यहाँ उपमान हो गए हैं और गुललाला, जपादल, बधूक, रसाल-पल्लव, त्रिवेणी, कमल और जमुनाजल जो उपमा में उपमान ठहराए जाते, यहाँ उपमेय हो गए हैं। यहाँ 'उपमा के अंगों का उलट-फेर है।

(दूसरा प्रतीप)

दो—०जहाँ होय उपमान सों उपमेय को अवमान।
तहं दूसरो प्रतीप है, नव प्राचीन समान॥

---

१ एक लाल पुष्प। २ गुड़हर। ३ फूल दुपहरिया। ४ नवल, नया। ५ चंद्रमा। ६ खंबन।

विवरण—उपमेय से उपमान को कुछ बढ़कर जताना। इस अलंकार में सूरदास का यह पद बहुत अच्छा है।

१—पद—नंदनंदन के बिछुरे अँखियाँ उपमा-जोग नहीं।
कंज खंज[1] मृग मीन न होहीं कबिजन वृथा कहीं॥
कंज होति मुँदि जाति पलक में जामिन[2] होत जहीं।
खंज होत उड़ि जात छिनक में प्रीतम है जितहीं॥
मृग होतीं रहतीं निसिबासर चंदवदन ढिगहीं[3]।
रूप-सरोवर तें बिछुरे कहु जीवत मीन कहीं॥

२—बरवा—गरबु करौ रघुनंदन, जिन मन माहँ।
देखा आँखिन मूरति, सिय कै छाहँ॥

३—दो०—महाराज रघुराजजू, कीजत कहा गुमान।
दंड[4] कोष[5] दल[6] के धनी, सरसिज तुमहिं समान॥

४—बरवा—का घूँघुट मुख मूँदौ, अबला नारि।
चंद सरग पै सोहत, याहे अनुहारि॥

(तीसरा प्रतीप)

दो०—जहँ बरनत उपमेय तें, कछु हीनो उपमान।
तहँ तीसरो प्रतीप है, कवि जन करत प्रमान॥

विवरण—जहाँ उपमेय की अपेक्षा उपमान में कछु लघुता वर्णन की जाय।

१—सवैया

श्रीरघुबीर-सिया छबि सामुहे स्याम-घटा बिजुरी परै फीको।

२—दो०—करत गर्ब तू कल्पतरु, बड़ी सो तेरी भूल।
या प्रभु को नीको, नजर तकि[7] तेरे ही तूल[8]॥

---

१ खंजन। २ रात्रि। ३ पास। ४ पद्मदंड, राजदंड। ५ पद्म कोश, खजाना। ६ पँखुड़ी, सेना। ७ देखो। ८ तुल्य, समान।

३—दो०—कुलिसहु चाहि[१] कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर, समुझि परै कहु काहि॥

४—सवैया

मान महीपति के मन आगे लगै लघु कांकर सो कनकाचल[२]।

(चौथा प्रतीप)

दो०—सरवरि में उपमेय की, जब न तुलै उपमान॥
चौथो भेद प्रतीप को, तहँ बरनैं मतिमान॥

१—चौपाई

बहुरि विचार कीन मन माहीं। सीय-बदन सम हिमकर[३] नाहीं॥

२—दो०—तो मुख ऐसो पंकजसुत[४] अरु मयंक[५] यह बात।
बरनैं सदा असक्क कवि, बुद्धि-रंक विख्यात॥

३—दो०—तुव मुख के सम है सकत कहा बिचारा चंद।

४—चौ०—कोटि काम उपमा लघु सोऊ।

(पाँचवा प्रतीप)

दो०—उपमेय के मुकाबिले, व्यर्थ होय उपमान॥
पंचम भेद प्रतीप को, ताहि कहत गुनवान॥
या भूषन के जानिये 'वाचक' कितक, निकाम।
मंद, वृथा, कछु नहिं, कहा, मिथ्या, निफल गुलाम॥

१—दो०—अमिय झरत चहुँ ओर सों, नयन-ताप हरि लेत।
राधाजू को बदन अस, चन्द्र उदय केहि हेत॥

२—दो०—प्रभाकरन तमगुनहरन, धरन सहसकर[५] राजु॥
तव प्रताप ही जगत में, कहा भानु सों काजु॥

---

१ बढ़ कर। २ सुमेरु। ३ चंद्रमा। ४ कमला। ५ सहस्र किरणें, हजारों प्रकार के राज कर।

३—दो—जहँ राधा आनन उदित, निसि-बासर सानंद ।
तहाँ कहा अरबिन्द है, कहा बापुरो चंद ॥

४—(व० तिलका) याको प्रताप यस लोक है प्रकास ही ।
हैं ये वृथा करत चित्त जबै जबै ही ॥
धाता प्रभाकर निसाकर के तबै ही ।
रेखा करै चहुँधा[1] 'मंडल ब्याज[2]' तै ही ॥

५—दो०—जब जब जसवंत-तेज जस, विधना लेत जू देख ।
व्यर्थ समुझि रवि ससि करत, कुंडल मिस परिवेख[3] ॥

६—दो०—कल्पवृक्ष केहि काम को, जब हैं नृप जसवंत ।

सूचना—इस अलंकार को फारसी, अरबी तथा उर्दू में 'तशबीह-माकूस' कह सकते हैं ।

(८) रूपक

दो०—उपमानरु उपमेय तें वाचक धर्म मिटाय ।
एकै कै आरोपिए, सो रूपक कविराय ॥
जो काहू के रूप इव, रूप बनावै और ।
रूपक ताही सों कहैं, सब सत्कवि-सिर मौर ॥
(मुरारिदान)

कहुं कहिये यह दूसरो, कहुँ राखिए न भेद ।
अधिक, हीन, सम त्रिविध पुनि, ते तद्रूप अभेद ।

विवरण—पूर्णोपमालंकार में से वाचक और धर्म को मिटा कर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करे अर्थात् उपमेय और उपमान को एक ही मान लें, यही रूपक अलंकार होगा ।

---

१ चारों ओर । २ बहाना । ३ घेरा ।

इस अलंकार के पहले दो भेद—(१) तद्रूप और (२) अभेद। फिर प्रत्येक के तीन-तीन प्रकार—(१) अधिक, (२) हीन और (३) सम होते हैं। इस तरह इसके ६ प्रकार हो जाते हैं।

रूपक
- तद्रूप
  - अधिक
  - हीन
  - सम
- अभेद
  - अधिक
  - हीन
  - सम

तद्रूप रूपक

जहाँ उपमान को उपमेय रूप करके वर्णन करें, वहाँ तद्रूप रूपक है। इसमें बहुधा अपर, दूसरा अन्य इत्यादि शब्द वाचक होकर आते हैं।

(क) अधिक तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ गुण बढ़कर हो, तो भी तद्रूप कहें।

१—दो०—जस-ध्वज या ध्वज तें अधिक, तीन लोक फहरात।
धर्म-मित्र यह मित्र तें, । मरत जियत संग जात॥

यहाँ यश को ध्वजा ही करके वर्णन किया है, और धर्म को मित्र ही करके, परन्तु यश रूपी ध्वजा में यह अधिक गुण कहा कि वह तीनों लोकों में फहराती है (साधारण ध्वजा में यह गुण नहीं) और धर्ममित्र में यह अधिकता है कि वह मरने के अनंतर भी साथ देता है (जो साधारण मित्र नहीं कर सकता।)

२—दो—मुख-ससि वा ससि तें अधिक, उदित ज्योति दिनरात।

(ख) हीन तद्रूप रूपक

उपमेय में उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी दोनों को एक रूप ठहरावें।

उदाहरण—

१—दो०—अपर धनेस[1] जनेस यह, नहिं पुष्पक आसीन।
क्षितिय गनेस सुवेस सुचि, सोहत सुंड-विहीन॥

२—दो०—विप्रन के मंदिरन तजि, करत आँच सब ठौर।
भाउसिंह भूपाल को, तेज-तरनि[2] यह और॥

३—बरवा—दुइ भुज के हरि रघुवर, सुन्दर भेस।
एक जीभ के लछिमन, दूसर सेस॥

४—दो०—भिरत फिरत जहँ तहँ कहो, मानत नहिं बदफैल[3]।
यह अज्ञान है दूसरो, बिन बिपान[4] को बैल॥

५—दो०—हो समदृष्टी[5] संभु तुम जग-जाहिर जसवंत।
हो ब्रह्मा मुख चारि बिन, मरुपति बिस्व बदंत[6]॥

६—दो०—तुव अरि नारिन के लिए, सुनु जसवंत महीप।
बन औषधियाँ होति हैं, बिन कज्जल के दीप॥

७—कवित्त—साहितनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगिर[7] कलंक चंद उर आनियतु है।
पंचानन[8] एक ही बदन गनि तोहि,
गजानन[9] गजबदन बिना बखानियतु है॥
एक सीस ही सहससीस[10] कला करिबे को,
दोई दृग सों सहसदृग[11] मानियतु है।

---

१ कुबेर। २ सूर्य। ३ कुकर्मी। ४ सींग। ५ दो दृष्टि वाले। ६ कहते हैं। ७ बिना। ८ शिव। ९ गणेश। १० शेषनाग। ११ इंद्र।

दोई कर सों सहसकर[1] मानियतु तोहि,
दोई बाहु सो सहसबाहु जानियतु है ॥

(ग) सम तद्रूप रूपक

१—दो०—नैन कमल ये ऐन हैं, और कमल केहि काम ।

२—स०-छाँह करैं छितिमंडल को सब ऊपर यों 'मतिराम' भए हैं ।
पानिप[2] को सरसावत है सिगरे जग के मिटि ताप गए हैं ।
भूमि-पुरंदर भाउ के हाथ पयोदन[3] ही के सुकाज ठए हैं ।
पंथिन के पथ रोकिबे को नभ बारिद-बृन्द वृथा उनए हैं ।

३—दो० रच्यौ बिधाता दुहुन लै, सिगरी सोभा साज ।
तू सुन्दरि रति दूसरी, यह दूजो सुरराज ॥

४—दो०—अपर रमा[4] हो मानियत, तोहि साध्वी गुनवंति ।

(२) अभेद रूपक

उपमेय और उपमान की अभेदता-सूचक रूपक को 'अभेद रूपक' कहते हैं । तद्रूप रूपक में अपर, दूसरो और अन्य अथवा भिन्नतासूचक कोई शब्द कहकर केवल तद्रूपता प्रकट की जाती है, जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है । इस अभेद रूपक में ऐसा नहीं किया जाता, वरन् उपमान को ठीक उपमेय का रूप ही मान कर वर्णन करते हैं ।

(क) अधिक अभेद रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण दिखलाकर एक रूपता स्थापित की जाय, वहाँ यह अलंकार होता है, यथा—

१—सवैया

जंग में अंग कठोर महा मदनीर झरैं झरना सरसे हैं ।
झूलन रंग घने 'मतिराम' महीरुह[5] फूलि प्रभान फँसे हैं ।

१ सूर्य । २ पानी, सौंदर्य । ३ बादल । ४ लक्ष्मी । ५ वृक्ष ।

सुंदर सिंदुर मंडित कुंभन[1] गैरिक श्रृंग[2] उतंग लसे हैं।
भाउ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी[3] बकसे हैं।

यहाँ हाथी को पहाड़ माना है, पर इतना अधिक कहा है कि ये हाथी 'सजीव' पहाड़ हैं (पहाड़ निर्जीव वस्तु है)।

२—दो०—तुव मुख में अरु चंद में, कछू भेद न लखाय।
एक बगैर कलंक के, तुव मुख जानो जाय॥

३—चौपाई

नव विधु विमल तात जस तोरा। रघुवर-किंकर[4] कुमुद चकोरा।
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग-नभ दिनदिन दूना।

४—कवित्त—रन बन[5] घूमे तुव भुज-लतिका पै चढ़ी,
कढ़ी म्यान-बाँबी तें विषम विष भरी है।
जा अरि को डसे सो तो तजे प्रान ताही छिन,
गारडू[6] अनेक हारे झारे त न झरी है॥
भनत 'कविंद' राउ बुद्ध अनिरुद्ध तने,
जुद्ध-बीरता सों एक तै ही बस करी है।
तरल तिहारी तरवार पन्नगी[7] को कहूँ,
तंत्र है न मंत्र है न जंत्र है न जरी[8] है॥

(ख) हीन अभेद रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ कमी दिखलाकर भी रूपक बाँधा जाय। यथा—

१—दो०—महादानि जाचकन को, भाउ देत तुरंग[9]।
पच्छन बिगर विहंग[10] हैं, सुंडन बिगर मतंग[11]॥

---

१ हाथी का मस्तक। २ गेरू के पर्वत की चोटियाँ। ३ हाथी। ४ दास। ५ अरण्य, जंगल। ६ सर्प का विष झाड़ने वाला। ७ नागिन। ८ जड़ी। ९ घोड़ा। १० पक्षी। ११ हाथी।

२—दो०—कलियुग सतयुग सो कियो, खल दल सकल सँहारि।
भुवन भरन-पोषन करत, द्वै भुजधर दनुजारि[1] ॥

३—दो०—सबके देखत व्योम-पथ, गयो सिंधु के पार।
पच्छिराज[2] बिन पुच्छ को, वीर समीरकुमार[3] ॥

४—दो०—है राधे तू उरबसी, धरे मानुषी देह।

(ग) सम अभेद रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान की पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन की जाय। यथा—

१—चौपाई

राम कथा सुन्दर करतारी। संसय-बिहँग उड़ावनहारी।

२—स०—कामना आठहु जाम फलै कलपद्रुम राम नरेस हमारे।

३—दो०—नारि-कुमुदिनी अवध-सर, रघुबर-बिरह-दिनेस[4]।
अस्त भए बिकसित भई, निरखि राम-राकेस[5] ॥

४—दो०—संपति-चकई भरत-चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि मिसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनसार[6]

सूचना—वास्तव में सच्चा और शुद्ध रूपक यही है।

विवरण—अर्थ-निर्णय, न्यायशास्त्र और व्याकरण के अनुसार तो रूपक के यही छः भेद हैं जो, ऊपर कहे गए हैं। परन्तु वर्णन-प्रणाली के अनुसार इन्हीं सब रूपकों के केवल तीन प्रका कहे जा सकते हैं, अर्थात् (१) सांग, (२) निरंग और (३) परंपरित।

(१) सांग रूपक

वह कहलाता है, जिसमें कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में करता है; जैसे—

१ विष्णु। २ गरुड़। ३ हनूमान। ४ सूर्य। ५ चंद्र। ६ सबेरा।

१—पद—देखो माई सुन्दरता को सागर ।

बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन-नागर[1] ॥१॥

तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि[2] कटि-पटपीत तरंग ।
चितवत चलत अधिक छवि उपजत भंवर परत सब अंग ॥२॥

नैन मीन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग ।
मुकुतमाल मिलि मानों सुरसरि[3] द्वै सरिता लिए संग ॥३॥

मोर-मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिनि नख-चंद ।
मनु अडोल वारिधि में बिंबत राका[4] उडुगन[5] बृंद ॥४॥

वदन चंद्र मंडल की सोभा अवलोकत सुख देत ।
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री[6] अरु-सुधा-समेत ॥५॥

देखि सरूप सकल गोपी जन रहीं विचारि विचारि ।
तदपि 'सूर' तरि सकीं न सोभा रहीं प्रेम पचि हारि ॥६॥

यहाँ सूरदास ने श्रीकृष्ण की दृष्टि में समुद्र का रूपक सांगोपांग बांधा है। इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में काशीपुरी के लिये कामधेनु का सांगरूपक बांधा है। जिसका आरम्भ यों है :—

२—पद—सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी" ।

तुलसीदास ने अपने 'रामचरित-मानस' (रामायण) के बालकांड में 'मानसरोवर' का रूपक, लंकाकांड में 'विजय रथ' का रूपक और उत्तरकांड में 'ज्ञान दीपक' और 'मानसरोग' का सांगरूपक बहुत ही अच्छा कहा है। पाठकों को समझ लेना चाहिये।

---

१ चतुर । २ समुद्र । ३ गंगा । ४ पूर्णिमा । ५ तारागण । ६ लक्ष्मी ।

३—पद—नंदनदन बृंदावन चंद ।

जदुकुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन-बंद[1] ॥१॥
जठर-कुहू[2] तें बहिरि बारिनिधि दिसि मधुपुरी[3] स्वछंद ।
बसुदेव संभु सीस धरि आने गोकुल आनंद-कंद ॥२॥
ब्रज-प्राची[4] राका तिथि जसुमति सरस सरद ऋतु नंद ।
उडुगन सकल सखा संकर्षन[5] तम-दनुकुल जो निकन्द[6] ॥३॥
गोपीगन तहँ धरि चकोर गति निरख मेटि पल द्वंद[7] ।
'सूर' सुदेस कला षोड़स[8] परपूरन परमानन्द ॥४॥

सूचना—इस 'सांगरूपक' को अंगरेजी में सस्टेंड मेटैफर (Sustained metaphor) कहते हैं।

सांगरूपक के पुनः दो प्रकार हैं—

(१) समस्तवस्तु-विषयक । (२) एक देश विवर्ति ।

(क) समस्तवस्तु विषयक सांगरूपक

इसके उदाहरण कई एक ऊपर लिख आए हैं। कुछ और लिखते हैं। यथा—

१—दो०—उदित उदयगिरि-मंच पर, रघुबर बाल-पतंग[9] ।
बिकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग ॥

२—चौपाई

नृपन केरि आसा निसि नासी । बचन नखत[10] अवली न प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ।
भये बिसोक कोक[11] मुनि देवा । बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥

---

१ वंदनीय, वंद्य । २ अमावस्या । ३ मथुरा । ४ पूर्वदिशा । ५ बलराम । ६ अंधकार रूपी दैत्यों का संहार करने वाले । ७ टकटकी लगाकर । ८ सोलह । ९ सूर्य । १० नक्षत्र । ११ चकवाक ।

३—दो०—रामनाम नरकेसरी[1], कनककसिपु कलिकाल।
जापक-जन प्रहलाद-जिमि दलि पालिहि सुरसाल[2]॥
४—दो०—वर्षाऋतु रघुपति-भगति, 'तुलसी सालि[3] सुदास।
राम नाम वर बरन[4] जुग, सावन भादों मास॥

(ख) एकदेश विवर्ति रूपक

वह कहलाता है जिसमें कुछ अंगों का निरूपण किया जाता है और कुछ का नहीं। जैसे—

१—दो०—नाम पहरुवा दिवस-निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद-जंत्रिका, प्रान जाहि केहि बाट॥

यहाँ नाम ध्यान और लोचन का रूपक पहरू, कपाट और यंत्र (ताला) से किया गया है, किंतु 'प्राण' का रूपक जो कैदी (बंदी) से होना चाहिए था, नहीं किया गया—अर्थ-कर्त्ता अपनी बुद्धि से लगा लिया है।

(२) निरंग रूपक

वह कहलाता है जिसमें केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाता है। जैसे—

१—दो०—अवसि चलिय बन राम पहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोक-सिंधु बूड़त सबहिं, तुम अवलंबन दीन्ह॥

यहाँ शोक को समुद्र रूप मान लिया है, उसके और अंग नहीं कहे गए। इसी प्रकार और भी जानो।

२—पद

'तुलसीदास' यह बिपति-बाँगुरो तुमहिं सो बनै निबेरे[5]।

यहाँ 'विपत्ति' पर बाँगुर (जाल) का आरोप है।

---

१ नृसिंह। २ देवताओं को कष्ट देने वाले। ३ धान्य। ४ अक्षर। ५ छुड़ाते।

३—पद

महामोह मृगजल-सरिता[1] महँ बोरयौ हौं बारहिं बार।

यहाँ 'मोह' पर मृगजल-सरिता का आरोप है।

सूचना—कभी-कभी कवि लोग निरंग रूपक को मालाकार भी वर्णन करते हैं यथा—

४—कवित्त—विधि के कमंडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरिपद-पंकज प्रताप की लहर है।
कहै 'पद्माकर' गिरीस[2] सीसमंडल की,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्यपथ,
जन्हु-जप-योगफल फैल की फहर[3] है।
छेम की छहर[4] गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर[5] जमजाल को जहर है॥

यहाँ गंगा जी की 'लहर' पर अनेक आरोप हैं और वे सब निरंग हैं।

(३) परंपरित रूपक

वह कहलाता है जहाँ मुख्य रूपक का हेतु एक और ही रूपक होता है अर्थात् मुख्य रूपक एक और (अंतर्गत) रूपक पर निर्भर होता है। जैसे—

१—सो०—सुनिय तासु गुन-ग्राम जासु, नाम अघखग-बधिक।

यहाँ श्रीराम 'नाम' पर 'बधिक' होने का आरोप किया गया, परन्तु ऐसा क्यों किया गया? इसलिये कि पहले 'अघ' पर 'खग' होने का आरोप कर चुके हैं—अर्थात् 'रामनाम' के बधिक होने की सिद्धि के लिए पहले ही अघ को खग कह

---

१ मृग तृष्णा। २ शिव। फैलाव। ४ विस्तार। ५ आफत।

डाला है, नहीं तो रामनाम पर वधिक का आरोप न हो सकता। इसी प्रकार और भी जानो।

२—सो० —सुन गिरिराज कुमारि. भ्रम-तम-रविकर[1] वचन मम।

३—पद्धरि

(क) वंदौं रघुपति करुनानिधान। जाते छूटै भवभेद-ज्ञान।
(ख) रघुवंस-कुमुद सुखप्रद-निसेस[2]। सेवित पद-पंकज अज[3] महेस।
(ग) निज भक्त हृदय-पाथोज[4]-भृंग। लावन्य-वपुष अगनित अनंत।
(घ) अति प्रबल मोह-तम-मारतंड[5]। अज्ञान-गहन-पावक-प्रचंड।
(ङ) अभिमान-सिंधु कुंभज उदार। सुररंजन भंजन भूमिभार।
(च) रागादि सर्पगन पन्नगारि[6]। कंदर्प नाग-मृगपति[7] मुरारि।
(छ) भवजलधि-पोत[8] चरनारविंद। जानकी रमन आनंद कंद।
(ज) हनुमंत प्रेम-वापी-मराल[9]। निष्काम कामधुक गो दयाल।
(झ) त्रैलोक्यतिलक गुनगहनराम। कह 'तुलसीदास' विश्राम धाम।

इस पद में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, और झ सब में परंपरित रूपक है।

४—चौपाई

मोह महाघन-पटल-प्रभंजन[10]। संसय-विपिन-अनल[11] सुररंजन।
अगुन सगुन गुनमंदिर सुंदर। भ्रमतम प्रबल प्रताप दिवाकर[12]

५—चौपाई

काम क्रोध मद-गज-पंचानन[12]। बसहु निरंतर जन-मन-कानन।
बिषय मनोरथ पुँज कुंज-बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।

---

१ सूर्य की किरणें। २ चंद्रमा। ३ ब्रह्मा। ४ कमल। ५ सूर्य। ६ गरुड़। ७ कामदेव रूपी हाथी के लिये सिंह। ८ जहाज। ९ हंस १० आँधी। ११ आग। १२ सिंह। १३ सूर्य।

यह परंपरित-रूपक कभी-कभी श्लेष से भी कहा जाता है। जैसे—

६—चौ०—संकर-मानस-राजमराला।

यहाँ जब तक 'मानस' शब्द में श्लेष न माने, और उसके दो अर्थ (१) मन, (२) मानसरोवर न लें, तब तक रूपक का चमत्कार नहीं भासैगा।

७—चौपाई

अंगद तुहीं बालिकर बालक। उपजेउ बंस अनल कुल-घालक।

इसमें जब तक 'बंश' शब्द के श्लेष से दो अर्थ (१) बाँस, (२) कुल न लिये जायँ तब तक कोई चमत्कार नहीं भासता।

सूचना—अँगरेजी में इस अलंकार को मेटैफर (Metaphor) और फारसी तथा उर्दू में 'तलाजमा' कहते हैं।

(६) परिणाम

दो०—करै क्रिया उपमान रचि, उपमेय को स्वरूप।
अलंकार परिनाम तहँ, बरनैं कवि कुलभूप॥

विवरण—उपमेय द्वारा की जाने वाली क्रिया का उपमान द्वारा किया जाना कहा जाय। इसी को परिणाम अलंकार कहते हैं। परिणाम का अर्थ यहाँ पर स्वभाव का बदलना' है। जैसे—

१—चौ०—कर कमलन धनु-सायक[१] फेरत।

यहाँ 'कर' के उपमान 'कमल' द्वारा 'धनु-सायक फेरना' जो वास्तव में कर द्वारा होना चाहिये, वर्णित है।

२—दो०—सोनजुही कहुँ, कहुँ जुही कहूँ जाति[२] के जाल।
हरे-हरे कर-कमल सों, फूलन बीनति बाल[३]॥

---

१ बाण। २ चमेली। ३ स्त्री।

३—चौ०—अपने कर-कंज लिखो यह पातो।
४—दो०—पदपंकज तें चलत वर, कर पंकज लै कंजु।
मुख-पंकज तें कहत हरि, वचन-रचन[1] मृदु मंजु॥

५—सवैया

सागर श्रीरघुनंदन के कर-कंज सा मानिक मोती झर्‌यौ करैं।
६—दोहा—मुख ससि हरत अँधार।

(१०) उल्लेख

परिभाषा—किसी निमित्त से एक व्यक्ति का बहुविधि वर्णन 'उल्लेख' कहलाता है। इसके दो भेद हैं—

(१) एकहिं बहु बहु विधि लखैं,
(२) एकहिं वरनि बहु रीति॥

विवरण—एक ही व्यक्ति को बहुत से भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न विधि से लखें, कहें वा मानें, वहाँ प्रथम उल्लेख। यथा—

१—सवैया

दुर्जन[2] भानु प्रचंड लखैं नृप-सेवक ते ससि-पूरन जानैं।
मूरतिवंत मनोज कहैं वनिता बस होत रु रीझैं सुजानैं॥
मानैं कवींद्र सुरद्रुम[3] सो रु गिरापति[4] कै सब पंडित मानैं।
आवत देखि कै रामनरिंद को भाँतिन भाँति निरूप बखानैं॥

२—चौपाई

जिनकी रही भावना जैसो। प्रभु-मूरति देखि तिन तैसो॥
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहु वीररस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहु भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप[5] वेषा। तिन प्रभु प्रगट काल सम देषा॥

---

१ वचन रचना। २ दुष्ट, शत्रु। ३ कल्पद्रुम। ४ वाणी के पति। ५ राजा।

पुरबासिन देखे दोउ भाई। नर-भूषन लोचन सुखदाई ॥
बिदुषन[1] प्रभु बिराटमय दीसा। बहुमुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन[2] सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसुसम प्रीति न जाय बखानी ॥
योगिन परम तत्वमय[3] भासा। सांत सुद्ध मन सहज प्रकासा ॥
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव सम सब सुख दाता ॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया ॥
इहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देख्यो कोसलराऊ ॥

(२) एक ही व्यक्ति को एक ही व्यक्ति बहु विधि वर्णन करे। यथा—

१—दो०—साधुन को सुखदानि है, दुर्जनगन दुखदानि।
वैरनि विक्रम हानिप्रद, राम तिहारे पानि[4] ॥

२—सवैया

सत्य की बेर[5] युधिष्ठिर है बल भीम ह्वै युद्ध-धरा महँ गाजै।
बान-विलास में जानो विजै[6] नकुलै इव बाजिन[7] की गति साजै।
आगम[8] जानिबे को सहदेव लखे सबके मनभावते काजै।
पोषकता जग की हरि है लखि 'कूरमराम' नरिंद बिराजै।

३—कवित्त—सारमाला सत्य को बिचारमाला बेदन की,
भारी भागमाला[9] है भगीरथ नरेस की।
तपमाला जन्हु को सुजपमाला जोगिन की,
आछी आपमाला[10] है अनादि ब्रह्म बेस की।
कहै 'पद्माकर' प्रमानमाला पन्नग की,
गंगाजू की धारा मानमाला है धनेस[11] की।
ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,
ध्यानमाला ध्रुव मौलिमाला[12] है महेस की।

---

१ मसखरे। २ स्वजन, संबन्धी। ३ ब्रह्म। ४ हाथ। ५ समय। ६ अर्जुन। ७ घोड़ा। ८ भविष्य। ९ भाग्य। १० जल। ११ धनपति। १२ मुंडमाला।

सूचना—इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में "तन्सीकुलसिफात" कहते हैं।

(११) स्मरण

दोहा

कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास।
सुमिरन ताको भाषिए, बुधवर सहित हुलास॥

विवरण—यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने इस अलंकार की परिभाषा ऐसी लिखी है कि:—

"सदृस वस्तु लखि सदृस की सुधि आवै जेहि ठौर।
सुमिरन भूषन तेहि कहैं, सकल सुकवि सिरमौर"॥

परंतु हिंदी-साहित्य में हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे जान पड़ता है कि प्राचीनों का यह लक्षण पर्याप्त नहीं है। इसीसे हमने इस अलंकार की नवीन परिभाषा गढ़ी है। कारण यह है कि या तो इसको अलंकार ही न मानना चाहिए या अगर अलंकार मानना ही है तो केवल सदृश वस्तु को देखकर सदृश वस्तु की सुधि आने ही में क्यों माना जाय? सब दिशाओं में क्यों न माना जाय? पहले देखी हुई वस्तु का स्मरण कई भाँति से हो सकता है। जैसे—

कछु लखि—

(क)—(समान गुणवाली वस्तु को देखकर स्मरण)

१—चौपाई—प्राची[1] दिसि ससि उयउ सोहावा।
सिय-मुख-सरिसि देखि सुख पावा॥

२—दो०—लखि ससि मुख की होत सुधि, तन-सुधि घन को जोहि[2]।

१ पूर्व। २ देख कर।

३—चौपाई

बीच बास करि जमुनहि आए। निरखि नीर लोचन जल छाए॥

दो०—रघुबर-बरन-बिलोकि बर, बारि[१] समेत-समाज।
होत बिरह-बारिधि मगन, चढ़े बिबेक-जहाज॥

(ख)—(संबंधी वस्तु को देखकर स्मरण)

१—दो०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं[२] वहै, वा जमुना के तीर॥
—(बिहारी)

२—चौपाई

सूल होत नवनीत[३] निहारी। मोहन के मुख-जोग बिचारी॥
—(यशोदा-वचन ऊद्धव-प्रति)

(ग)—(स्वप्न देखकर स्मरण)

१—सवैया

जागि परी तो न कान्ह कहूँ, न कदंब की छाँह नहीं जमुनातट।

२—दो०—देखौं जागि तवै सखी, साँकर[४] लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जात धौं, को जाने केहि बाट॥

(घ)—(कभी-कभी वैधर्म्य दर्शन से भी स्मरण होता है) यथाः—

१—कवित्त—ज्यौं-ज्यौं इत देखियत मूरख विमुख लोग,
त्यौं-त्यौं ब्रजबासी सुखरासी मन भावै है।
खारे जल छीलर[५] दुखारे अंधकूप देखि,
कालिंदी[६] के कूल-काज मन ललचावै है।
जैसो अब बीतत सो कहते ना बनै बैन,
'नागर' ना चैन परै प्रान अकुलावै है।

---

१ बल। २ अब भी। ३ मक्खन। ४ सिकड़ी। ५ छिछले। ६ यमुना।

थूहर[1] पलास देखि-देखि कै बबूर बुरे,
हाय हरे-हरे वे तमाल सुधि आवै हैं।
—(नागरीदास)

कछु सुनि—

१—दो०—सुनि कोकिल ध्वनि वचन की, आवत है सुधि मोहिं॥

२—सवैया

का कहिए 'पिय' बोलि पपीहा व्यथा जिय की पुनि देत जगाये।

(चर्चा या कथा सुनकर स्मरण)

एक समय कृष्ण को सुलाते समय यशोदा ने कथा कहना प्रारंभ किया। विधिवशात् रामावतार की कथा कहने लगीं। कथा कहते-कहते जब सीता-हरण का प्रसंग कहा, तब बाल-रूप कृष्ण को पूर्वावतार का स्मरण आया और अचानक चौंक कर बोले —"लक्ष्मण! लाना तो मेरा धनुष-बाण"। इस बात को कवियों ने अच्छी आलंकारिक-भाषा में वर्णन किया है। यथा-

४—चौपाई

इक दिन महरि[2] स्याम को लैके। परी पलंग पर तकिया दैके॥
लागी कहन कथा सुखदाई। जिमि अवतार लीन रघुराई॥
बाल-विनोद विवाह-उछाहू। विपिन-गवन भूपति कर दाहू[3]॥
भरत-सनेह लखन-सेवकाई। कहि खरदूषन केरि लड़ाई॥
कह्यो जानकी केरि हरन जब।"कहँ धनुसर" कहि कृष्ण उठे तब॥

सोचि कछु -

(कुछ सोच-समझकर, कुछ चिंतवन करके स्मरण)

१—दो०—नृप उदार चिंतन करत, आए जसवँत याद।
—(मुरारिदान)

---

१ सेंहुड़। २ यशोदा। ३ दाह कर्म।

यहाँ उदार राजाओं का चिंतवन करने से जसवंतसिंह का स्मरण आया। कविराज 'भूषण' ने जो उदाहरण अपने 'शिवराज-भूषण' में लिखा है, वह इस चिंतवन का बहुत अच्छा प्रमाण है। भूषण लिखते हैं :—

२—कवित्त—तुम सिवराज ब्रजराज[1]-अवतार आज,
तुम ही जगत काज पोषत भरत हौ[2]।
तुम्हें छाँड़ि याते काहि बिनती सुनाऊँ,
मैं तुम्हारे गुनगाऊ तुम ढीले[3] क्यों परत हौ॥
'भूषन' भनत वहि कुल में नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित में धरत हौ।
और बाम्हनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥

भूषण कहते हैं कि मुझे ब्राह्मण-कुल में पैदा होने का नया गुनाह (पाप) आप लगाते हैं, और विष्णु का अवतार होने के कारण मुझपर आप नाराज होते हैं, क्योंकि भृगुजी ने विष्णुजी की छाती पर लात मारी थी। कृष्ण का अवतार होने के कारण सुदामा की मित्रता का चिंतवन करके अन्य ब्राह्मणों का मानना और विष्णु का अवतार होने के कारण 'भूषण' को भृगुवंशी जानकर उस समय की कसर निकालना क्या ये सब बातें बिना चिंतवन के हो सकती हैं? इस कारण चिंतवन (सोचि कछु) से भी स्मरणालंकार हो सकता है। पाठकों को याद रखना चाहिए कि 'स्मृति' नामक एक 'संचारी' भाव भी होता है। इसमें भी गत वा विस्मृत वस्तुओं के स्मरण का ही वर्णन होता है। उस भाव और इस अलंकार

---

१ श्रीकृष्ण। २ पालन-पोषन करते हो। ३ शिथिल।

में भेद यह होता है कि जब वर्णन में 'स्म' की पुष्टि हो तब तो वह 'स्मृति' सञ्चारी भाव होगी, जब अर्थ में चमत्कार आवे तब अलंकार माना जायगा।

(१२) भ्रांति (भ्रम)

दो०—भ्रांति और की और में, निस्चित जब अनुपान।
भ्रांति, भ्रमालंकार तेहि, कहैं सुकवि मतिमान॥

विवरण—भ्रम से किसी और वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रांति है। जैसे—

१—चौपाई

जो जेहि मन भावै सो लेहीं। मनि मुख मेलि[१] डारि कपि देहीं॥

यहाँ नाना वर्ण की मणियों को देखकर नाना वर्ण के फलों का भ्रम होता है। फल समझकर मुख में डाल लेते हैं पर जब वह फूटती नहीं तब उगल देते हैं।

२—सो०—कपि कर हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जानि असोक[२]-अँगार, सीय हरषि उठ कर गह्यौ॥

यहाँ जानकी जी श्रीरामचंद्र की स्वर्ण-मुद्रिका को अशोक-प्रदत्त अंगारा समझती हैं।

३—दो०—चहुँधा तेरे सुयस की, रूरो[३] रासि निहार।
फिर-फिर टोवत जटनि हर, गिरि गंगा की धार॥

४—दो०—पायँ महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिर फिर जानि महावरी[४], एँड़ी मोड़त जाय॥

---

१ छोड़ कर। २ एक वृक्ष। ३ सुंदर। ४ अलता।

(शकुंतला कहती है)

५—सो०—री सखि मोहिं बचाय, या मतवारे भ्रमर सों।
इसो चहत मुख आय, भरम भरो बारिज[1] गनै॥

६—दो०—जानि श्यामघन[2] घन तुम्हैं, नाचि उठैं वन मोर।
चितै रहत मुख ओर निसि, निस्चल चखन[3] चकोर॥

७—दो०—परत भ्रमर सुकतुंड[4] पर, मन धरि कुसुम-पलास[5]।
सुक ताको पकरन चहत, जंबूफल[6] की आस॥

(१३) संदेह

(दोहा)

बहु विधि बरनत बर्न्य को, नियत न तथ्य अतथ्य।
अलंकार संदेह तहँ, बरनत हैं मतिपथ्य[7]॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय बना ही रहे, निश्चय न हो। 'भ्रांति' में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है, संदेह में किसी पर नहीं जमता। धौं किधौं, किधौं, को, कि, य, अथवा इत्यादि संदेह-सूचक शब्द इस अलंकार के वाचक हैं। जैसे—

१—चौपाई

की तुम तीनि देव मह कोऊ। नर-नारायन की तुम दोऊ॥
की तुम हरिदासन[8] मह कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन-अनुरागी। आए मोहि करन बड़ भागी॥

---

१ कमल २ श्रीकृष्ण। ३ आँख। ४ सुग्गे की चोंच। ५ टेसू का फूल। ६ जामुन। ७ सुबुद्धि। ८ भगवान के भक्त।

२—कवित्त—पाय अनुसासन[1] दुसासन के कोप धायो,
द्रुपदसुता को चीर गहे भीरभारी हैं।
भीषम करन द्रोन बैठे व्रतधारी तहाँ,
कामिनी की ओर काहू नेक ना निहारी है।
सुनिकै पुकार धायो द्वारिका तें जदुराई,
बाढ़त दुकूल[2] खैंचे भुजबल हारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है ॥

३—पद—ये कौन कहाँ तें आए।
मुनि-सुत किधौं भूप-बालक किधौं ब्रह्म-जीव जग जाये।
रूप[3] जलधि के रतन, सुछबि तिय-लोचन-ललित ललाये[4] ॥
किधौं रविसुवन, मदन, ऋतुपति[5] किधौं, हरिहर[6] भेष बनाए।
किधौं आपने सुकृत[7]-सुरतरु के सुफल रावरे[8] पाए ॥
—(गीतावली)

सूचना—यह अलंकार फारसी अरबी तथा उर्दू के 'तजाहुल आरिफ' नामक अलंकार से मिलता-जुलता है।

(१४) अपह्नुति

दो०—मिथ्या कीजै सत्य को, सत्य जु मिथ्या होत।
अपह्नुति पट भेद को बरनत हैं कवि गोत ॥
शुद्ध,[1] हेतु[2] परजस्त,[3] भ्रम[4] छेका,[5] कैतव,[6] देखि।
'ना' बाचक है पाँच को, कैतव को मिस, लेखि ॥

---

१ आशा। २ साड़ी। ३ सौंदर्य। ४ छबि रूपी स्त्री के ये बालक लोचन हैं। ५ वसंत। ६ विष्णु और महादेव। ७ पुण्य। ८ आपने।

विवरण—'अपह्नुति' शब्द का अर्थ है 'छिपाना'। इसलिये इस अलंकार में किसी बात का छिपाना और कोई अन्य बात कहकर दूसरे का संतोष कर देना यही वर्णन रहता है। इसके ६ भेद हैं, जिनमें से प्रथम पाँच में निषेधवाची 'न' 'नहीं' का प्रयोग अनिवार्य है और अंतिम 'कैतवापह्नुति' में 'मिस' शब्द का प्रयोग अवश्य ही होता है। बस इन्हीं वाचक शब्दों से इस अलंकार की ठीक पहचान हो जाती है।

(१) शुद्धापह्नुति

दो०—दुरै सत्य उपमेय को, प्रगट करै उपमान।
शुद्धापह्नुति कहैं तेहि, जे कविंद मतिमान॥

विवरण—उपमेय को असत्य ठहराकर उपमान का स्थापन किया जाय, वही शुद्धापह्नुति अलंकार है। जैसे :—

१—चौपाई

मंजु कहा रघुबीर कृपाला। बंधु[१] न होय मोर यह काला॥

यहाँ सत्य बंधुत्व असत्य ठहराकर उपमानरूपी असत्य कालत्व का स्थापन किया है।

२—दो०—पहिरे स्याम न पीतपट, घन में बिज्जु[२] विलास।
३—दो०—सारद[३] ससि नहिं सुंदरी, उदयो जस जसवंत॥
४—दो०—अंक[४] न संग रह्यो जु लगि, भिक्षुक-जन की पंत[५]।
५—दो०—नहिं सुधांसु यह है सखी, नभगंगा को कंज॥

—सवैया

ये न घने कुंजरमाल[६] हैं, या चपला न दिपै तरवारी।
गर्जनि नाहिं नगारे बजें, बकपाँति नहीं। गजदंत निभारी[७]॥

---

१ भाई। २ बिजली की चमक। ३ शरद् ऋतु का। ४ चंद्रमा का कलंक। ५ पंक्ति। ६ हाथी। ७ केवल, खालिश।

ये न मयूर जो बोलत हैं बिरुदावलि बंदि[1] बदै जस भारी।
या नहिं पावसकाल अली, यह तो सखि है अमरेस सवारी[2]॥

सूचना—याद रखना चाहिये कि यह अपह्नुति अलंकार कई-एक अन्य अलंकारों से मिलकर भी आता है। उदाहरणार्थ देखो 'सापह्नवोत्प्रेक्षा और 'सापह्नवातिशयोक्ति'।

(२) हेत्वापह्नुति

दो०—सुद्धापह्नुति में जहाँ, कहिये हेतु बनाय।
हेतु अपह्नुति कहत हैं, ताहि सकल कबिराय॥

विवरण—शुद्धापह्नुति में जब कोई कारण भी बतला दिया जाय, तब वही हेत्वापह्नुति हो जायगी। जैसे—

१—दो०—रात-माँझ रवि होत नहिं, ससि नहिं तीव्र सुलाग।
उठी लखन अवलोकिये, वारिधि[3] सों बड़वाग[4]॥

यहाँ चन्द्रमा को देखकर रामचंद्र कहते हैं—'हे लक्ष्मण, देखो तो यह चन्द्रमा नहीं है क्योंकि इसकी किरणें तीव्र जान पड़ती हैं और रात्रि में सूर्य का होना असंभव है इससे यह सूर्य भी नहीं है, अतः यह समुद्र से निकलती हुई बड़वाग्नि ही है'। यदि केवल इतना ही कहा जाता कि 'यह चंद्रमा नहीं है, बड़वाग्नि है' तो शुद्धापह्नुति होती॥चन्द्रमा के निषेध का कारण 'तीव्र लगता है' भी कहा गया है, अतः हेत्वापह्नुति है। इसी प्रकार सूर्य नहीं है' इसका भी कारण 'रात्रि है' बतलाया गया है। इसी प्रकार और भी समझना। यथा—

१ भाट। २ इंद्र। ३ समुद्र। ४ समुद्र की अग्नि।

२—सवैया

सेत[1] सरीर हिये विष स्याम कला फन[2] री मनि जातु जुन्हाई।
जीभ-मरीची[3] दसौदिसि फैलती काटत जाहि वियोगन-ताई[4]॥
सीस तें पूँछि लौं गात गर्यो पै डसे बिन ताहि परै न कलाई[5]।
सेस के गोत के ऐसे ही होत हैं चन्द नहीं या फनिंद[6] है माई॥

३—दो०—सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान[7]।
भुज-भुजंगेस भुजंगिनी, भखति पौन-अरि-प्रान॥

(३) पर्यस्तापह्नुति

दो०—धर्म और में राखिए, धर्मी साँच छिपाय।
पर्यस्तापह्नुति कहैं, ताहि सकल कविराय॥

विवरण—(पर्यस्त=फेंका हुआ) किसी वस्तु में उसके सच्चे धर्म का निषेध इसलिये किया जाय कि वह धर्म किसी दूसरी वस्तु में आरोपित करना है। यथा—

१—दो०—है न सुधा यह है सुधा, संगति साधु समाज।

यहाँ 'साधु' में सुधात्व (अमरत्वगुण) का निषेध इसलिये किया गया कि उसका धर्म साधु-समाज की संगति में स्थापित करना मंजूर है।

२—दो०—नहीं सक्र[8] सुरपति अहैं, सुरपति नन्दकुमार।
रतनाकर सागर न है, मथुरा-नगर-बजार॥

३—दो०—यह न चाँदनी चाँदनी, मृदु विहँसनि-नंदलाल।

४—पद—मीन[9] में नहि प्रीति सजनी चातकहि नहिं प्रेम।
एक मति गति एक व्रत, यह भरत ही में नेम॥

---

१ उज्ज्वल। २ कलाएँ फण हैं। ३ किरणें। ४ ताप। ५ चैन। ६ शेषनाग। ७ तलवार। ८ इंद्र। ९ मछली।

५—सो०—कालकूट[1] विष नाहिं विष है केवल इंदिरा[2]।
हर[3] जागत छकि[4] वाहि, यहि सँग हरि नींद न तजत॥

सूचना—प्राय: देखा जाता है कि इस अलंकार के उदाहरणों में जिस के सच्चे धर्म को छिपाना होता है उसे दो बार लाना पड़ता है। उदाहरणों में देखो—सुधा, सुरपति, चाँदनी और विष शब्द दो-दो बार आए हैं।

(४) भ्रांतापह्नुति

दो०—भ्रम संका मन और के, कछु कारन तें होय।
दूरि करै कहि सत्य सो, भ्रांतापह्नुति सोय॥

१—चौपाई

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू। लूक[5] न असनि[6] न केतु न राहू।
ये किरीट दसकंधर केरे। आवत बालि तनय[7] के प्रेरे॥

२—दो०—बेसर[8] मोती-दुति-झलक, परी अधर पर आय।
चूना होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय॥

३—दोहा—आली लाली लखि डरपि[9], जनि टेरहु नँदलाल।
फूले सघन पलास ये, नहिं दावानल-ज्वाल॥

(५) छेकापह्नुति

दो०-संका नासै और की, साँची बात दुराय।
छेकापह्नुति कहत हैं, ताहि कविन के राय॥

विवरण—(छेक=चतुराई) यह अलंकार भ्रांतापह्नुति का ठीक विरोधी है। उसमें सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है और इसमें सत्य को छिपाकर असत्य बात कहकर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है (चाहे वह शंका दूर हो वा न हो)।

---

१ हालाहल, समुद्र से निकला विष। २ लक्ष्मी। ३ महादेव। ४ पीकर। ५ उल्का। ६ वज्र। ७ अंगद। ८ बुलाक। ९ डरकर।

१—कवित्त—साँवरो सलोनो गात[1] पीतपट सोहत सो,
अंबुज-से आनन[2] पै परै छवि हरकी।
मंत्र ऐसी जंत्र ऐसो तंत्र-सी तरकि परै[3],
हँसनि चलनि चितवनि त्यों सुधर की॥
'गोकुल' कहत वन कुंजन को वासी लखे,
हाँसी सी करत है री काम कलाधर[4] की।
एतने में बोली और मिले हरि सुखदानी,
नाही मैं कहानी कही राम-रघुवर की।

यहाँ कोई गोपी कृष्ण की छवि का वर्णन कर रही थी, एक अन्य स्त्री ने आकर पूछा कि क्या तुझे कृष्ण मिले थे, तब वह सत्य बात (कृष्ण-दर्शन) को छिपाकर कहती है कि नहीं, मैं तो राम की कथा कह रही थी।

२—चौपाई

कछु न परीक्षा लीन्हि गुसाँई। कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं।

सूचना—'मुकरी' इसी अलंकार में कही जाती है। जैसे—

१—चौपाई

अर्द्धनिसा वह आयो भौन। सुन्दरता बरनै कहि कौन।
निरखत ही मन भयो अनंद। क्यों सखि साजन[5]? नहि सखि चंद।

२—चौपाई

सोभा सदा बढ़ावनहारा। आँखिन ते छिन[6] करूँ न न्यारा।
आठ पहर मेरो मनरंजन। क्यों सखि साजन? नहिं सखि अंजन।

(६) कैतवापह्नति

दो०—मिस व्याजादिक सब्द दै, कहै आन को आन
ताहि कैतवापह्नती, भूषन कहत सुजान

१ शरीर। २ कमल सा मुख। ३ समझ में आती है। ४ चन्द्रमा। ५ प्रेमी। ६ क्षण।

१—चौपाई

पठै मोह मिस खगपति[1] तोहीं। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोहीं।

२—चौपाई

लखी नरेस बात यह साँची। तिय मिस मीचु[2] सीस पर नाची॥

३—सवैया

लालिमा श्री तरवानि के तेज में सारद[3] लौं सुखमा की निसैनी[4]।
नूपुर नीलमनीन जड़े जमुना जगै जौहर में सुखदैनी।
यों 'लछिराम' छुटा नख-नौल[5] तरंगिनी गंग-प्रभा फल पैनी।
मैथिली के चरनांबुज ब्याज[6] लसै मिथिला मग मंजु त्रिबैनी॥

४—दो०—छनपरभा[7] के छल रही, चमकि मार करवार[8]।
वीरवधू[9] के ब्याज रौ, दहकत आजु अँगार॥

सूचना—इस अलंकार में मिस, छल, ब्याज, बहाना इत्यादि शब्दों का लाना आवश्यक है। जिस वस्तु के बहाने जो वस्तु कथन की जाती है, इन दोनों में कारण और कार्य का सा अथवा उपमेय उपमान का सा संबंध भी होना जरूरी है। 'पर्यायोक्ति' से इसका अंतर समझ लेना चाहिये। पर्यायोक्त अलंकार की सूचना देखिये।

(१५) उत्प्रेक्षा

सूचना—उत्प्रेक्षा (उद्+प्र+ईक्षन) शब्द का अर्थ है "बलपूर्वक प्रधानता से देखना"। इस अलंकार का मुख्य तात्पर्य "किसी उपमेय का कोई उपमान कल्पनाशक्ति द्वारा कल्पित कर लेना है" कल्पना प्रतिभा के बल से ही हो सकती है। जितनी ही शक्तिवती प्रतिभा होगी उतनी ही उत्तम कल्पना हो सकेगी, इसलिये इस अलंकार को उत्प्रेक्षा कहते हैं। अतः उत्प्रेक्षा की यह परिभाषा हुई—

---

१ गरुड़। २ मृत्यु। ३ सरस्वती। ४ शोभा की सीढ़ी। ५ नवल। ६ बहाना। ७ बिजली। ८ कामदेव की तलवार। ९ एक बरसाती लाल कीड़ा।

दो०—बल सों जहाँ प्रधानता करि देखिय उपमान।
उत्प्रेक्षा भूषन तहां कहत, सुकवि मतिमान ॥

वाचक—मनु, जन, मानो, जानो, निश्चय, प्रायः, बहुधा, इव, खलु इत्यादि शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं।

उत्प्रेक्षालंकार तीन प्रकार का होता है- (१) वस्तूत्प्रेक्षा, (२) हेतूत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा।

(१) वस्तूत्प्रेक्षा

किसी वस्तु के अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार कहा जायगा। इसके दो प्रकार हैं।

(क) उक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय पहले कहा जाय, और तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय।

(ख) अनुक्त विषया—जहाँ विषय न कहा जाय, केवल कल्पना की जाय।

(क)—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

१—दो०—सोहत ओढ़े पीतपट, श्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप[1] परयो प्रभात ॥

यहाँ पीतांबर ओढ़े कृष्ण का श्यामतनु' उत्प्रेक्षा का विषय है, सो पहले कह दिया गया है, तब उत्प्रेक्षा की गई कि वह तनु कैसा है मानो नीलमणि का पर्वत है जिस पर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें पड़ रही हों। यहाँ मुख्य तात्पर्य तो कृष्ण के तनु के वर्णन से है परंतु कवि अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक खींचकर एक नीलमणि के पर्वत पर प्रातःकाल की सूर्य किरणों के पड़ने के दृश्य की ओर लिए जाता है।

१ घाम।

इस दृश्य के दिखलाने से कवि का तात्पर्य यह है कि पाठक (दर्शक) कृष्ण के तनु की उत्कृष्ट शोभा का अनुमान कर सकेगा। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कुछ और उदाहरण देखिए।

२—दो०—लता-भवन तें प्रगट भे, तेहि औसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग[1] विमल विधु, जलद पटल बिलगाइ[2] ॥

३—सवैया

संभु-सरासन[3] तोरयो मृनाल[4] सो भाल विसाल प्रताप सोहावै।
त्यों 'लछिराम' स्वयंवर में मिथिलेस-अनंद समात न छावै[5] ॥
राम गरे जयमाल के हेतु सु मैथिली[6] यों समता सरसावै।
मानो रमा रतनाकर[7] में रतनावली श्रीहरि को पहिरावै ॥

४—दो०—सखि सोहति गोपाल के, उर गुँजन की माल।
बाहिर लसत मनो पिए, दावानल की ज्वाल[8] ॥

५—दो०—'पूरन' जमुना-नीर पर, यों आतप छवि होति।
मानहु कृष्ण सरीर पर, पीतपटी की जोति ॥

इन सब उदाहरणों में उत्प्रेक्षा के विषय पहले कह दिये गए हैं तब उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं, इसलिये ये उदाहरण उक्त-विषया के हैं।

सूचना—गोस्वामी तुलसीदासजी तथा कवि-शिरोमणि सूरदासजी ने रामजी तथा कृष्णजी की बालछवि वर्णन में इस अलंकार का बहुत अधिक और उत्तम प्रयोग किया है। जैसे:—

१—लोचन नील-सरोज-से भ्रू पर मसिबिंदु[9] विराज।
जनु विधुमुख छबि-अमी को रच्छक राखे रसराज[10] ॥

---

१ दो। २ फाड़कर। ३ धनुष। ४ कमल दंड। ५ अटता नहीं। ६ जानकी। ७ समुद्र। ८ एक बार श्रीकृष्णजी दावाग्नि पी गये थे। ९ काजल का डिठौना। १० शृंगार।

२—सिसु-सुभाव सोहत जब कर गहि,
वदन[१]-निकट पद-पल्लव लाए।
मनहु सुभग जुग भुजँग[२] जलज[३],
भरि लेत सुधा ससि सों सचु[४]पाए॥

३—बंधुक[५] सुमन अरुन पद-पंकज,
अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए।
नूपुर जनु मुनिवर कलहंसन,
रचे नीड़[६] दै बाँह बसाए[७]॥

४—भाल विसाल ललित लटकन वर,
बालदसा के चिकुर[८] सुहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज[९] आगे करि,
ससिहिं मिलन तम के गन आए॥

५—गजमनिमाल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई।
जनु उड़गन वारिद-मंडल पर नवग्रह रची अथाई[१०]॥

६—मंजु मेचक[११] मृदुल तनु अनुहरत भूषन-भरनि[१२]।
जनु सुभग शृंगार-सिसुतरु[१३] फर्‌यो अद्‌भुत-फरनि॥

(ख) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय कथन न करके उत्प्रेक्षा की जाय। जैसेः—

१—दो०—अंजन बरसत गगन यह, मानो अथए भानु।

यहाँ सूर्यास्त के अनंतर 'अंधकार का फैलना' जो उत्प्रेक्षा का विषय है वह पहले कहा नहीं गया. परंतु उत्प्रेक्षा की गई

१ मुख। २ सर्प। ३ कमल। ४ अनंद। ५ फूलदुपहरिया। ६ घोसला। ७ शरण में रखा। ८ केश। ९ मंगल। १० बैठक, गोष्ठी। ११ काला। १२ गहने। १३ छोटा वृक्ष।

है कि मानो सूर्यास्त के अनंतर यह आकाश का जल बरसता है। ऐसे ही कथन को अनुक्तविषया जानो।

२—दो०—उदित सुधाधर करत जनु, सुधामयी वसुधाहि।

यहाँ चंद्रोदय के अनन्तर जो 'चाँदनी फैलती' है, वही इसका विषय है, सो कवि ने कहा नहीं। उत्प्रेक्षा यह की कि चन्द्रमा उदय होकर मानो समस्त धरातल को सुधामय कर देता है (सुधा का रंग सफेद माना गया है)।

३—दो०—सरद-ससी बरसत मनों, घन घनसार अमंद।

यहाँ भी चाँदनी का प्रकाश' जो उत्प्रेक्षा का विषय है, वह नहीं कहा गया, उत्प्रेक्षा यह की गई कि मानो शरद्-ऋतु का चन्द्रमा बहुत सा सफेद कपूर बरसाता है। चाँदनी की तरह कपूर का रंग भी श्वेत ही होता है।

४—सवैया

मोर लों मंजु नचैं धरती पर मंडित फेन लगाम उमाहैं[1]।
कान के बीच लसै कलंगी सिरी त्यौर तिरोछी अनूप अदा[2] हैं।
काम-कबूतर लों 'लछिराम' छलै यों अटेरन[3] का परमा[4] हैं।
बाजि बली रघुबंसिन के मनो सूरज के रथ चूमन चाहैं।

इसमें श्रीरामजी की बारात के घोड़ों का वर्णन है, उनके तन की छवि वर्णन करके कवि कहता है कि वे घोड़े मानो सूर्य का रथ चूमना चाहते हैं' अर्थात् उछलने में बहुत ऊंचे तक उछलते हैं, परन्तु उनको 'उछाल' जो इस उत्प्रेक्षा का मुख्य 'विषय' है कवि ने कहा ही नहीं। इससे अनुक्त-विषया जानो। इसी प्रकार और भी समझ लो।

१ उत्साहित होते हैं। २ अनुपम शोभा। ३ कावा काटना। ४ शोभा।

५—दो०—बरसै जनु काजल गगन, तम लिपटत सब गात।
दीठि नीच-सेवा सरिस, बिफल भई-सी जात॥

सूचना—उपमा में दो वस्तुओं की समता वस्तुतः दिखलाई जाती है। उत्प्रेक्षा में केवल उस समानता का संभव संशय रूप से कहा जाता है।

(२) हेतूत्प्रेक्षा

अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ हेतूत्प्रेक्षा समझो। इसके भी दो प्रकार हैं—(१) 'सिद्धास्पद' अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो), (२) 'असिद्धास्पद' अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध न हो (असंभव हो)।

(सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

१—दो०—मनो कठिन आँगन चली, ताते राते[1] पायँ।

सुकुमार स्त्रियों के चरणों में ललाई स्वाभाविक ही होती है, परन्तु कवि उसका हेतु कल्पित करता है कि मानो कठिन आँगन में चलने से वह ललाई आ गई है। स्त्रियाँ आँगन में चलती हैं यह तो सिद्ध आधार है। अहेतु में हेतु की कल्पना की गई है, यही अलंकारता है।

२—दो०—रवि-अभाव लखि रैन में, दिन लखि चन्द-विहीन।
सतत[2] उदित यदि हेतु जनु, जस प्रताप भुवि कीन॥

यहाँ भी रात में सूर्य का अभाव और दिन में चन्द्रमा का अभाव सिद्ध आधार है, पर इन्हीं कारणों से कोई राजा पृथ्वी भर में अपना यश और प्रताप नहीं फैलाता (उसका कारण कुछ और ही होता है)।

३—क०—घोर निरधनता सुदामा-घर वास कीन्हो,
दारुन कलेस दै दै दीन को सतायो है।

---

१ लाल। २ निरंतर।

संमति लै बाम[1] की सिधायो द्विज स्याम-पास,
भेंट करि तंदुल[2] अखंड धन पायो है॥
'पूरन' जू मानों भई द्वारिका गया की पुरी,
जाय विप्र जामें मनमानो फल पायो है।
दारिद-पिसाच मानि आखर[3] निमंत्रण को,
संग जाय तिरगो न फेरि भौन आयो है॥

'गया' में तर जाना सिद्धास्पद हेतु है। दरिद्ररूपी पिशाच के लौटकर न आने का यही हेतु कहा गया है।

(असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

जहाँ उत्प्रेक्षा का कथित हेतु असंभव हो। जैसे—

१—दो०—मुख सम नहिं यातें मनो चंदहिं छाया छाय।

राधिका के मुख के समान नहीं है, इससे मानों चंद्रमा में छाया (काला दाग) छाई हुई है यहाँ असिद्ध आधार कहा गया है, अतएव असिद्धास्पद है।

२—दो०—पूस दिनन में ह्वै रहो, अगिन-कोन में भानु।
मैं जानो जाड़ो बलो, तें यह डरे निदानु[4]॥

सूर्य का जाड़े से डरना असिद्ध आधार है और डर के कारण सूर्य पूस में अग्निकोण में (जाड़े से डरकर) अग्नि तापन के लिये चला जाता है, यह कारण ठीक नहीं।

३—दो०—तुव चख[5] निरखि लजाय मनु, किय बनवास मृगोन॥
कुवलय[6] रहत मलीन दिन, रहे पैठि जल मीन॥

नेत्रों से मृगियों, कुमुद-पुष्पों तथा मीनों का लजाना, असिद्ध आधार है, और इसी लज्जा के कारण मृगी वन में

---

१ स्त्री। २ चावल। ३ अक्षत, चावल। ४ आखिरकार। ५ नेत्र। ६ श्वेत कमल।

रहने लगीं, कुवलय (कुई के फूल) दिन में मलीन रहते हैं, और मछलियां पानी में डूबी रहती हैं, ये बातें ठीक नहीं।

४—दो०—मोर-मुकुट की चंद्रकनि, यों राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर[1] की अकस, [2]किय सेखर[3] सत चंद॥

५—दो०—भाल लाल बेंदी ललन, आखत[4] रहे विराजि।
इंदु-कला[5] कुंज[6] में बसी, मनहुँ राहु-भय भाजि॥

६—पद—भुजन भुजँग सरोज नैननि बदन, विधु जीत्यो लरनि।
बसे कुहरन[7] सलिल नभ, उपमा अपर दुरि[8] डरनि॥

यहाँ 'राम की भुजाओं' से हारकर सर्प बिलों में रहने लगे, नेत्रों से हारकर कमल पानी में जा डूबे, और मुख से हारकर चंद्रमा आकाश में जा बसा और अन्य उपमा भी डरकर छिप रही' ऐसा कहा गया है।

इन उपमानों का हार जाना या डर जाना 'असिद्ध आधार' है और उपमानों के वहाँ रहने का जो कारण कल्पित किया गया है वह ठीक नहीं है, इसीसे 'असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा' है।

७—पद—उपमा हरि तन देखि लजाने।
कोउ जल में कोउ बनहिं रहे दुरि कोऊ गगन उड़ाने॥
मुख देखत ससि गयो अंबर[9] को तड़ित[10] दसन छवि हेरो।
मीन कमल कर चरन नयन डर जल मों कियो बसेरो॥
भुजा देखि अहिराज लजाने बिवरनि पैठे धाय।
कटि निरखत केहरि[11] हरि मानो बन बिच रह्यो दुराय॥
—(सूरसागर से)

---

१ महादेव। २ विरोधी (कामदेव)। ३ सिर पर धारण किया। ४ अक्षत (चावल)। ५ चंद्रमा की कला। ६ मंगल। ७ बिल। ८ छिप गई। ९ आकाश। १० बिजली। ११ सिंह।

( ) फलोत्प्रेक्षा

अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा करना फलोत्प्रेक्षा है। इसके भी दो भेद हैं :—

१—सिद्धास्पद—जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)।

२—असिद्धास्पद—जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध हो (असंभव हो)।

(सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१—दो०—मधुप निकारन के लिये, मानो रुके निहारि।
दिनकर निज कर देत है, सतदल[1] दलनि उघारि॥

सूर्योदय से कमलों का खिलना सिद्ध आधार है, परंतु कवि कल्पना करता है कि मानों रात भर बंद रहे हुए भौंरों को बंद से छुड़ाने के लिये सूर्य कमलों को अपने करों (किरणों) से खोल देता है। सूर्य का कमलों को खिलाना इसलिये नहीं होता कि उसमें बंद रहे हुए भौंरे बंद से छूट जावें, वरन् वह स्वयं सिद्ध विषय है। भौंरों का बंद से छूटना यह अफल है, उसे ही फल कल्पित किया है: अतः फलोत्प्रेक्षा है।

२—दो०—दुवन[2] सदन सब के बदन[3], सिव सिव आठो जाम।
निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम॥
—(भूषण)

'शिव-शिव' कहने से मनुष्य संकटों से बच सकता है, यह (हिंदूधर्मानुसार) सिद्ध आधार है। परंतु मुसलमान लोग इस फलप्राप्ति के लिये 'शिव-शिव' (शिवाजी का नाम) नहीं कहते थे, वरन् डर से बहुधा उनकी चर्चा किया करते थे, उस चर्चा में उनका नाम बार-बार लेना पड़ता था।

---

१ कमल। २ शत्रु। ३ मुख।

८—सवैया

मौज भयो मिथिलापुर में चतुरंग चमू[1] सजि आई बरात है।
त्यों उछले तें जवाहिर की लरें टूटें तुरंगन[2] के लहरात है॥
लक्खनराम को यों दसरत्थ लिए निज गोद न मोद अमात[3] है।
ताप मिटाइबे के हित मानो पपीहरा स्वाती के बुंद नहात है॥

(असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१—दो—तो पद समता को कमल, जल सेवत इक पाँय।

कमल स्वतः जल में रहता है, राधिका के चरणों की समता रूपी फल की प्राप्ति के लिये नहीं। जड़ कमल में समता की इच्छा का होना असिद्ध आधार है। इसलिये यहाँ असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

२—घोर—दमयंती कचभार प्रभा से पिच्छभार[4]हतप्रभा निहार।
कार्तिकेय की सेवा करता है मयूर खलु संयम धार॥

यहाँ मयूर में दमयंती के बालों की शोभा की, समता प्राप्ति रूपी फल की इच्छा का होना असिद्ध आधार है (सर्वथा असम्भव है) और यह कहना कि उसी फल की प्राप्ति के लिये मयूर कार्तिकेय की सेवा करता है। अफल को फल कल्पित करना है, यहाँ असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है। इसमें खलु (निश्चय) उत्प्रेक्षा का वाचक है।

३—सवैया

वारि में बूड़ि जपें रवि को सरि[5] पंकज पायन की गहिबे को।
बास उपास करें बन में कटि[6] की सरि सिंहिनियाँ चहिबे को॥
... ... ।
रोज अन्हात है छीरधि[7] में ससि तो मुख की समता लहिबे को॥

---

१ सेना। २ घोड़ा। ३ अंटना। ४ मोर की पूँछ। ५ समता। ६ कमर। ७ दूध का समुद्र, क्षीरसागर।

ऊपर जितने उदाहरण दिए गये हैं उन सबों में उत्प्रेक्षा वाचक शब्द मनो, जनो, खलु, मनु, जनु, इव, ध्रुव इत्यादि मौजूद है। परंतु कहीं-कहीं बिना वाचक शब्द के भी उत्प्रेक्षा की जाती है। ऐसी उत्प्रेक्षा गम्योत्प्रेक्षा, गुप्तोत्प्रेक्षा वा ललितोत्प्रेक्षा कही जाती है।

सूचना—फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा की पहचान करना विद्यार्थियों के लिए तनिक कठिन बात है। इसकी जाँच के लिए सर्व प्रथम 'क्रिया' को जाँचो। यदि क्रिया किसी हेतु से कही गई जान पड़े तो हेतूत्प्रेक्षा समझो और यदि उस क्रिया से किसी फल की इच्छा प्रगट होती हो तो फलोत्प्रेक्षा समझो। नीचे लिखे उदाहरणों पर विचार करो—

१—राधिकाजी के अधर और नासिका की छवि अनूप है, मानों बिंबाफल को देखकर लालच-वश आकर शुक बैठा हो (सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)।

२—राधिकाजी के अधर और नासिका की छवि अनूप है, मानों बिंबाफल का स्वाद लेने के लिये शुक चोंच मारना चाहता है (सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

३—श्रम से पसीने की बूंदें लटों द्वारा मुख पर गिर रही हैं, मानों चंद्र को राहु का सताया हुआ समझ कर नागवृंद उसपर अमृत बरसा रहे हैं (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

४—मानों राहु-युद्ध-जनित पीड़ा दूर करने के लिये नागवृंद चंद्र पर अमृत बरसा रहे हैं (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

(गम्योत्प्रेक्षा)

दो०—तोरि तीरतरु के सुमन, बर सुगंध के भौन।
जमुना कौ पूजन करत, वृंदाबन को पौन॥

१—चौपाई

इनहिं देखि विधि मन अनुरागा। पटतर[1] जोग बनावन लागा॥
कीन्ह बहुत स्रम अइकि[2] न आए। तेहि इरषा बन आनि दुराए॥

२—चौपाई

कह प्रभु गरल[3] बंधु ससि केरा[4]। अतिप्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये।

सूचना—जानना चाहिये कि सब प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ गम्योत्प्रेक्षा हो सकती हैं।

(सापह्नवोत्प्रेक्षा)

कभी-कभी अपह्नुति सहित उत्प्रेक्षा की जाती है, उसे 'सापह्नवोत्प्रेक्षा' कहते हैं। सब प्रकार की अपह्नुतियों से मिला कर सब प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण लिखें तो बड़ा विस्तार होगा, इसलिए केवल एक उदाहरण लिखते हैं—

१—दोहा—कमलन कहँ तेहि मित्र गुनि, मानहु हतिबे काज।
प्रविसहिं सर नहिं न्हान हित, रवि-तापित गजराज॥

यहाँ सूर्यताप से तापित गज का सरोवर में प्रवेश स्नानार्थ निषेध करके, तदनंतर सूर्य के मित्र जान कर कमलों का नाश करने के लिये उत्प्रेक्षा की गई है. अतः यह 'सापह्नव फलोत्प्रेक्षा' है। इसी प्रकार सब उत्प्रेक्षाएँ सापह्नव हो सकती हैं।

(१६) अतिशयोक्ति

दो०—जहँ अत्यंत सराहिबो, अतिसयोक्ति सुकहंत।
भेदक, सम्बन्धी, चपल, अक्रम, रूप, अत्यंत॥

---

१ समता के योग्य। २ अंदाज। ३ विष। ४ का।

विवरण—जहाँ किसी की अतिशय सराहना करना मंजूर हो उस उक्ति के कथन में अतिशयोक्ति होती है। इसके छः भेद हैं—

(१) भेदकातिशयोक्ति, (२) सम्बन्धातिशयोक्ति, (३) चपलातिशयोक्ति, (४) अक्रमातिशयोक्ति, (५) रूपकातिशयोक्ति और (६) अत्यंतातिशयोक्ति।

सूचना—इस अलंकार को अँगरेजी में हाइपरबोल (Hyperbole) और फारसी तथा उर्दू में मुबालगा कहते हैं।

(१) भेदकातिशयोक्ति

दो०—औरै सब्दन की जहाँ, उत्कर्षता सुबेस।
भेदक अतिसै उक्ति तहँ, मानत सुकवि-नरेस॥

'औरै-औरै' शब्द इस अलंकार का वाचक है। जैसे—

१—दो०—औरै कछु बोलनि चलनि, औरै कछु मुसुकानि।
औरै कछु सुख देत है, सकै न बैन बखानि॥

२—दो०—अनियारे[1] दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान[2]।
वह चितवनि औरै कछू, जेहि बस होत सुजान॥

(कभी कभी 'न्यारी रीति है' 'और ही बात है' 'अनोखी बात है' इत्यादि, या इसी अर्थ के और भी शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं)। जैसे :—

३—क०—जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगजेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की।
—(भूषण)

४—दो०—अवलोकनि बोलनि हँसनि, डोलनि औरै-और।
आवनि मृदु गावनि सबै, औरै वाके तौर[3]॥

१ तीक्ष्ण। २ अभिमानपूर्ण। ३ ढंग।

५—कवित्त—मंगलीक[1] बदन-बिलास 'लछिराम' औरै,
कलँगी मरोर[2] मौर भाल सजवारे में।
औरै आनि औरै बानि औरै चढ़ी सान भुज,
औरै धनुबान राम-कर गजरारे[3] में॥

६—दो०—औरै हँसनि बिलोकिबो, औरै बचन उदार।
'तुलसी' ग्रामवधून के देखे रह न सँभार॥

(२) संबंधातिशयोक्ति

दो०—जहँ अयोग्य है योग्य में, जहँ अयोग्य में योग्य।

विवरण—सम्बन्धातिशयोक्ति के दो भेद हैं—(१) योग्य में अयोग्यता प्रगट करके प्रस्तुत की अतिशय बड़ाई करना।

(२) अयोग्य में किसी के सम्बन्ध से ऐसी योग्यता दिखलाना कि अतिशय बड़ाई प्रगट हो।

(१) योग्य में अयोग्यता

१—स०—सानभरे[4] भुज-दंड अखंड तिहूँ पुर मंडन मान भरे को?
आँगुरी व अलकंस घनी मनो मोजन में अनुमान करे को?
यो नखभा 'लछिराम' लखे नखतावलि के परमान[5] धरे को?
श्रीरघुनाथ के हाथन सामुहें कल्पलता सनमान करे को?

कल्पलता सम्मान करने योग्य वस्तु है, पर अयोग्य ठहरा कर उसके सम्बन्ध से रामजी के हाथों की अतिशय उदारता प्रकट की गई है।

२—चौपाई

अति सुन्दर लखि मुख सिय तेरो। आदर हम न करत ससि केरो।

१ मंगलकारी। २ आनबान। ३ हाथी की सूँड़। ४ शानदार।
५ समान।

यहाँ शशि सम्मान योग्य होने पर भी मुख की अतिशय सुंदरता वर्णन करने के हेतु अनादर-पात्र ठहराया गया है।

३—सवैया

कानन कुंज प्रमोद वितान[1] भरे फल फूल सुगंध विधानैं॥
बावली के अरविंदन पै मकरंद मलिंद[2] सने सुभ गानैं।
त्यों 'लछिराम' तरंगन तें सरजू के कहै सुर साजि विमानैं।
औधपुरी महिमा औ चितै अमरावति को हम क्यों सनमानैं॥

(९) अयोग्य में योग्यता

१—चौपाई—छवि फहरैं अति उच्च निसाना[3]।
जिन महँ अटकत विबुध[4]-बिमाना॥

विबुध-विमान अवश्य ही बहुत ऊँचे पर होंगे। उनसे संबंध प्रगट करने से 'ध्वजा' में यह योग्यता हो गई कि उसकी ऊँचाई की अतिशयोक्ति हो गई। विबुध-विमान के संबंध से अत्यन्त ऊँचाई लक्षित हुई।

२—सवैया

बासन[5] बाँस कठौता हुतो औ फटी दुपटी जेहि बीतत सीवत[6]।
'गोकुल' छानी मरी[7] गरो भीति[8], रहे जित चूहन के गन जीवत॥
धाम सुदामा लह्यो हरि सों जेहि देखिए देखि दिगम्पति भीवत[9]।
बैठि जितै गन चातक के घन तें वन[10] चोंच चलाय कै पीवत॥

इसमें चातक और घन के संबंध द्वारा यह प्रगट किया है कि सुदामा का मंदिर बहुत ऊँचा था। कोई घर इतना ऊँचा नहीं होता, परंतु यहाँ घन चातक के संबंध से अयोग्य घर में भी अतिशय ऊँचाई की योग्यता कथन की गई है।

---

१ चँदवा। २ भौंरा। ३ ध्वजा। ४ देवता। ५ बर्तन। ६ सीते। ७ सड़ी गली। ८ दीवार। ९ डरता था। १० जल।

सूचना—'संबधातिशयोक्ति' का कविता में बहुत अधिक काम पड़ता है। इस अलंकार के बहुत प्रचलित उदाहरण यों कहे जाते हैं कि इसका वर्णन शेष, शारदा भी नहीं कर सकते वेद भी नेति-नेति कहता है। यथा-

४—चौपाई

जेहि वर बाजि[1] राम असवारा। तेहि सारदौ न बरनै पारा[2]।

५—छन्द

सारद श्रुति[3] सेषा ऋषय असेषा[4] जा कहँ कोउ नहिं जाना॥

६—दो०—जो सुख भा सिय-मातु-मन, देखि राम वर वेष।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस[5] सारदा सेष॥

७—हरिगीतिका

कोटिहु वदन[6] नहिं बनै बरनत जगजननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शेष, शारदा, श्रुति इत्यादि को कथन के अयोग्य ठहराकर उनके संबंध से प्रस्तुत वस्तु में अतिशयोक्ति की स्थापना की जाती है।

(३) चपलातिशयोक्ति

दो०—कारन के लखतहि सुनत, कारज आसहि, होय।
चपला अतिसय उक्ति यह, अलंकार है सोय॥

१—सवैया

पंचवटी के विहँग उमंग में बोलत बानी सुधारस घूटे।
त्यों 'लछिराम' अदेव[8] ललाट तें आयु की रेखा के अंक[9] वे छूटे॥
आसुरी हाथन तें पल एक में भाग सोहाग के भाजन[10] फूटे।
आगम श्रीरघनाथ सुने मुनि-मंडली के मन-बंधन छूटे॥

---

१ घोड़ा। २ वर्णन नहीं कर सकती। ३ वेद। ४ समस्त। ५ हजार। ६ मुख। ७ शीघ्र। ८ असुर। ९ चिह्न। १० बर्तन।

२—चौपाई

तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयो जरि छारा॥

३—चौपाई

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

४—दो०—आयो-आयो सुनत ही, सिव सरजा तुव नाँव।
बैरि-नारि-दृग-जलन सों, बूड़ि जात अरि-गाँव॥

५—क०—'भूषन' भनत साहि तनै सिवराज एते,
मान तव धाक आगे दिसा उबलनि है।
तेरी चमू[1] चलिबे की चरचा चले तें चक्र-
वर्तिन की चतुरंग चमू बिचलनि है॥

(४) अक्रमातिशयोक्ति

दो०—कारन अरु कारज जहाँ, होत एक ही संग।
अक्रमातिसयउक्ति सो बरनत सुकवि सुढंग॥

१—चौपाई

संधान्यौ प्रभु बिसिष[2] कराला। उठी उदधि-उर अंतर ज्वाला॥

२—सवैया

पायन को जमुना उमहीं जल बाढ़ो जबै बसुदेव गये लौं।
ह्वैकत ही जदुनंदन के जमुनाजी वहीं तरवा के तरे लौं।

३—दो०—बानासन[3] तें रावरे, बान बिषम रघुनाथ।
दससिर-सिर धर तें छुटे, दोऊ एकहि साथ॥

४—दो०—उठ्यो संग गज कर[4] कमल चक्र चक्रधर[5] हाथ।
कर तें चक्र सु नक्र[6] सिर धर तें बिलग्यो साथ॥

---

१ सेना। २ बाण। ३ धनुष। ४ हाथी की सूँड़। ५ विष्णु। ६ मगर, ग्राह।

५—क०—उद्धत अपार तुव दुंदुभी धुकार साथ,
लंघै पारावार[1] बाल-वृंद[2] रिपुगन के।
तेरे चतुरंगन के तुरंगन रंगे रज[3],
साथ ही उड़ात रजपुँज हैं परन[4] के॥
दच्छिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़,
धनुष के साथ गढ़-कोट दुरजन[5] के।
'भूषन' असीसें तोहि करत कसीसे[6] पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के॥

सूचना—संग ही, साथ ही, एकै साथ, साथ अथवा इसी अर्थ का कोई शब्द इस अलंकार का वाचक जान पड़ता है

(५) रूपकातिशयोक्ति

दो०—जहँ केवल उपमान कहि, प्रगट करै उपमेय।
रूपकातिसय उक्ति तहँ, बरनत सुकवि अजेय॥

विवरण—जहाँ केवल उपमान कह कर उपमेयों का अर्थ समझा जाता है, वहाँ यह अलंकार होता है। जैसेः—

१—दो०—कनकलता पर चंद्रमा धरे धनुष द्वै बान।

यहाँ कनकलता=कोई स्त्री। चंद्रमा=मुख। धनुष=भौंहें। बान=कटाक्ष।

ब्याह के समय रामचंद्रजी सीताजी के सिर में सिंदूर देते हैं।

२—चौपाई

राम सीय-सिर सेंदुर देहीं। उपमा कहि न जात कवि केहीं॥
अरुन-पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के॥

---

१ समुद्र। २ स्त्रियाँ। ३ धूल। ४ शत्रु। ५ दुष्ट, शत्रु। ६ खींचते ही।

यहाँ अरुणपराग=सेंदुर। जलज=शंख वा कमल। ससि=सीताजी का मुख। अहि=रामजी का हाथ।

सूचना—सूरदास ने इस अलंकार में अनेक पद कहे हैं। उनमें से एक यह है। इसमें राधिका जी के समस्त अंगों का वर्णन है।

३—पद—(राग सारंग)

अद्भुत एक अनूपम बाग।
युगल कमल पर गज क्रीड़त है तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत-फल लाग
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव ता पर सुक पिक मृगमद काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग।

युगल कमल=दोनों चरण। गज=मंद चाल। सिंह कटि। सरवर=नाभि। गिरिवर=कुच। कंज=मुख। कपोत=कंठ। अमृतफल=चिबुक। पुहुप=गोदना बिंदु। पल्लव=होंठ। सुक=नासिका। पिक=बानी। मृगमद=कस्तूरीबिंदु। काग=काकपक्ष, पाटी। खंजन=नेत्र। धनुष=भौंहें। चंद्रमा=ललाट। मणिधरनाग=सीस-फूल सहित गुंथी हुई वेणी।

सूचना—इसी प्रकार और भी समझना चाहिये।

४—कवित्त—'भूषन' भनत देस-देस बैरि-नारिन में,
होत अचरज घर-घर दुःख दंद के।
कनकलतानि इंदु, इंदु माँहि अरबिंद,
झरें अरबिंदन तें बुंद मकरंद के॥

यहाँ कनकलता=स्त्रियाँ। इंदु=मुख। अरबिंद=नेत्र। मकरंद-बुंद=आँसू।

रामायण में तुलसीदासजी ने रामचंद्रजी के मुख से सीताजी के लिये कहलाया है :—

५—चौपाई

खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप-निकर कोकिला प्रबीना॥
कुंद-कली दाड़िम दामिनी। सरद्-कमल ससि अहि-भामिनी।
बरुन-पास मनोज-धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कमल कदलि हरखाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाय जनु राजू॥

इसमें भी उपमानों द्वारा जानकीजी के अंगों को (उपमेय को) सूचित किया है। जैसे:—

खंजन = नेत्र। सुक = नाक। कपोत = ग्रीवा। मृग, मीन = नेत्र। मधुप = बाल। कोकिला = वाणी। कुंद-कली = दंत। दाड़िम = दंत। दामिनी = मुसकान। सरद्-कमल, ससि = मुख। अहिभामिनी = वेणी। वरुण-पास = बाल (छूटे हुए)। मनोज-धनु = भौंहें। गज = चाल। केहरि = कटि। श्रीफल = कुच। कमल = हाथ। कदलि = जंघा।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब तुम मेरे संग थीं, तब ये सब उपमान तुम्हें देखकर लज्जित रहते थे। अब तुम्हारा हरण हो जाने से ये सब प्रसन्न हुए हैं।

सूचना—इस जगह हम सूरदास-कृत दो-तीन पद ऐसे लिखे देते हैं जिनको समझ लेने से इस अलंकार की सामग्री अच्छी तरह से समझ में आ जायगी। पद दानलीला के समय के हैं।

६—पद—लेहौं दान [1] इनन्ह को तासों।
मत्तगयंद [2] हंस [3] तुम पै है कहा दुरावति मो सों॥ १॥
केहरि [4] कनक-कलस [5] अमृत के कैसे दुरै दुरावति।
बिद्रुम [6] अहैं बज्र के किनका नाहिन [7] हमें दिखावति॥ २॥

१ कर। २ मतवाला हाथी (चाल)। ३ गति के लिए। ४ सिंह (कमर)। ५ सोने का घड़ा (कुच)। ६ मूँगा (ओठ)। ७ नहीं तो।

खग कपोत[1] कोकिल[2] कोर[3] खंजन[4] चंचल मृग[5] जानति।
मनि कंचन के चक्र[6] जरे हैं एते पर नहिं मानति॥ ३॥
सायक[7] चाँप[8] तुरे[9] वनि जनियति[10] नितप्रति आवहु जाहु।
दान दिये बिनु जान न पैहौ दिये ते होय निबाहु॥ ४॥
यए बनिजति[11] वृषभानु-सुता तुम हम सों बैर बढ़ावत।
सुनहु 'सूर' एते पै कहति है हम धौं कहा लदावत॥ ५॥

७—पद—यह सुनि चकित भई ब्रजबाला।

तरुनी सबै परस्पर बूझैं कहा कहत गोपाला॥ १॥
कहँ तुरंग कहँ गज केहरि कहँ हंस सरोवर सुनिए।
कंचन-कलस गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिए॥ २॥
कोकिल कीर कपोत बनहि में मृग खंजन एक संग।
तिनके दान लेत हैं हम पै देखहु इनके ढंग॥ ३॥
चन्दन और सुगन्ध बतावत कहाँ हमारे पास।
'सूर' स्याम जो ऐसे दानी देखि लेहु हम पास॥ ४॥

८—पद—भूलि रहे तुम कहा कन्हाई।

तिनको नाम लेत तुम आगे जे सपनेहु दृष्टि न आई॥ १॥
हयवर[12] गयवर[13] सिंह हंस खग मृग कहँ हैं हम लीन्हें।
सायक चाप तुरी[14] मुनि चक्रत चमर न देखे चीन्हें॥ २॥
चन्दन और सुगंध कहत हो कंचन-कलस बतावहु।
'सूर' स्याम ये सब जो ह्वै हैं तबहिं दान तुम पावहु॥ ३॥

९—पद—प्रगट करौं अब तुमहि बताऊँ।

चिकुर[15] चौंर घूँघट हयवर वर, भ्रू सारंग[16] दिखाऊँ॥ १॥

१ कबूतर (गर्दन)। २ वाणी के लिये। ३ सुग्गा (नाक)। ४, ५ आँख के लिये। ६ तलवे। ७ बाण (कटाक्ष)। ८ धनुष (भौंह)। ९ घोड़ा (घूँघट)। १० जानी जाती हैं। ११ वाणिज्य करती हैं। १२ घोड़ा। १३ हाथी। १४ घोड़ा। १५ केश। १६ धनुष।

बान कटाक्ष, नैन खंजन मृग, नासा सुक उपमाऊँ।
तरिवन चक्र, अधर बिद्रुम वर, दसन वज्रकन ठाऊँ ॥ २ ॥
ग्रीव कपोत, कोकिला बानी कुच घट-कनक समाऊँ।
यौवन-मद रस-अमृत भरे हैं रूप रंग झलकाऊँ ॥ ३ ॥
अंग सुगन्ध बास पट अंबर गनि-गनि तुमहिं सुनाऊँ।
कटि केहरि, गयन्द[१] गति सोभा हंस सहित इक ठाऊँ ॥ ४ ॥
फेर किए कैसे निबहोगो घरहि गए कहँ पाऊँ।
सुनहु सूर यह बनिज तुम्हारे फिर-फिर तुमहिं सुनाऊँ ॥ ५ ॥

सूचना—इसको फारसी में 'सनअत तअज्जब' कह सकते हैं।

(सापह्नवातिशयोक्ति)

जहाँ अपह्नुति सहित रूपकातिशयोक्ति हो। जैसे :—

—दो०—अहि ससि-मंडल पै लसै, जिय पताल जिन जानु।

यहाँ मुख रूपी चंद्रमा पर वेणी रूपी सर्प का वर्णन है। उसे पाताल में मत जानो कह कर अपह्नुति प्रगट की गई है।

(६) अत्यंतातिशयोक्ति

दो०—जहाँ हेतु तें प्रथम ही, प्रगट होत है काज।
अत्यंतातिसयोक्ति तेहि, कहैं सकल कविराज ॥

१—दोहा—हनूमान की पूँछ में लगन न पाई आग।
लंका सिगरी जरि गई, गए निसाचर भाग ॥

२—दो०—राजन् ! राउर नाम जस, सब अभिमत दातार।
फल-अनुगामी[२] महिपमनि, मन-अभिलाष तुम्हार ॥

इसमें पहले 'फल' तदनंतर मनोभिलाष वर्णन किया गया है।

३—कवित्त—मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहि,
कामधेनु कामतरु सो गनाइयतु है।

---

१ हाथी। २ फल के पीछे-पीछे चलने वाला।

याते तेरे गुन सब गाय को सकत,
कवि बुद्धि अनुमान कछु तऊ गाइयतु है ॥
'भूषन' भनत साहितने सिवराज निज,
बखत[1] बढ़ाय करि तोहि ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि,
दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है ॥

४—दो०—कवि-तरुवर सिव-सुजस-रस, सींचे अचरज-मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल[2] ॥

५—दो०—ग्राह-ग्रहीत गयंद-मुख, कहत न पाई 'त्राहि'।
पहले ही हरि आय कै, निज कर उधर्यो ताहि ॥

६—कवित्त—धूम-धाम ऐसो रामचंद्र-वीरता को मचो,
'लछिराम' रावन सरोष सरकस[3] तें।
बैरी मिले गरद मरोरत कमान-गोसे,[4]
पीछे कढ़े बान तेजमान तरकस तें ॥

७—चौपाई

कहहु कपि मुनि गुरुदछिना लेहू। पीछे हमहिं मंत्र तुम देहू ॥

८—दोहा—पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लै पार ॥

(१७) तुल्ययोगिता

दो०—क्रिया और गुण करि जहाँ, धर्म एकता होय।
चतुर चतुर[5] विधि कहत हैं, तुल्ययोगिता सोय ॥

विवरण—क्रिया द्वारा अथवा गुण द्वारा जहाँ कई-एक व्यक्तियों का एक ही धर्म कथन किया जाय, वह तुल्ययोगिता है। यह चार प्रकार की होती है—

१ भाग्य। २ प्रसन्नता। ३ प्रचंड ४। कोना, कोटि। ५ चार।

उल्लेख में बहुतों के गुण पृथक्-पृथक् वर्णन करने का तात्पर्य होता है। नीचे लिखे उदाहरण को समझो।

तुल्ययोगिता—यह राजा इन्द्र, करण और युधिष्ठिर के समान है।

उल्लेख—यह राजा तेज में इन्द्र, दान में कर्ण और धर्म में युधिष्ठिर है।

(भेद) तुल्ययोगिता में समान-कथन का भाव रहता है, उल्लेख में केवल गुण-वर्णन का भाव रहता।

(४) चौथी

दो०—हितु में अनहितु में जहाँ, करिए एकै धर्म।

१—दो०—जो सींचे सर्पिप[1] सिता[2] अरु जो हने कुठाल[3]।
कटु लागै तिन दुहन को, यहै नींव की चाल॥

२—दो०—कोऊ काटो क्रोध करि, वा सींचो करि नेह।
बंधत वृक्ष बबूल को, तऊ दुहन की देह॥

३—दो०—जो सींचत काटत जु है, जो पेरत जन कोइ।
जो रक्षक तिन सबन को, ऊख मीठिए होइ॥

४—दो०—वंदौं संत समान-चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलि-गत सुभ सुमन जिमि, समसुगंध कर दोउ॥

५—सवैया

'दास' जू पापी सुरापी[4] तपी अरु जापी हितू-अहितू सम भाई।
गंग तिहारी तरंगन सों सब पावै पुरंदर[5] की प्रभुताई।

६—सवैया

श्रीरघुनाथपुरी की प्रभा सरयू के तरंग ते संत गली में।
सिद्ध सुरापी असंत औ संत विमान चढ़े लसैं व्योमथली में॥

---

१ घी। २ मिश्री। ३ कुल्हाड़ी। ४ शराबी। ५ इंद्र।

(१८) दीपक

दो०—वर्ण्य वर्ण्यनको जहाँ, एकै धर्म कहाय।
दीपक तासों कहत हैं, सगरे कवि-समुदाय॥

विवरण—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म कथन किया जाय, वहाँ दीपक होता है। जैसेः—

१—दोहा—सोहत भूपति दान सों, फल-फूलन आराम[1]।

२—सवैया

'गोकुल' दोऊ सराहिबे जोग जगे जग में जस मोद महा ते।
राधे के नैन-कटाच्छन ते वलि खंजन राजत चंचलता ते॥

३—सवैया

थाह न पैए गँभीर बड़ो है सदा ही रहै परिपूरन पानी।
राकैं[2] विलोकि के 'श्रीयुत दासजू' होत उमाहिल[3] में अनुमानी॥
आदि घहो मर जाद लिए रहै है जिनको महिमा जग जानी।
काहू के केहूँ घटाए घटै नहिं सागर औ गुन-आगर[4] प्रानी॥

पहले उदाहरण में 'भूपति' वर्ण्य है 'आराम' अवर्ण्य है, दोनों का धर्म 'सोहत' एक ही कहा गया है, परंतु सोहने के कारण भिन्न-भिन्न कहे गए हैं। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में नैन वर्ण्य, खंजन अवर्ण्य है, दोनों का धर्म 'राजत' एक ही कहा गया है, परन्तु राजने का कारण कटाक्ष और चंचलता भिन्न-भिन्न हैं। तीसरे उदाहरण में 'गुण-आगर प्राणी' वर्ण्य है और 'सागर' अवर्ण्य। 'घटाए घटै नहीं' धर्म एक है। श्लेष से दोनों के कारण को भी एकता दिखलाई है, पर वास्तव में कारण यहाँ भी भिन्न-भिन्न हैं।

---

१ बागीचा। २ पूर्णिमा की उजेली। ३ उत्साहित होता है, बढ़ता है। ४ गुणी।

४—चौपाई

संग ते जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान[1] ते लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं वेगि नीति अस सुनी॥

इसमें 'राजा' वर्ण्य है और शेष सब अवर्ण्य हैं। कारण भिन्न-भिन्न हैं। 'नासहिं' सबका धर्म एक कहा गया है। (इसी प्रकार और भी समझना)।

५—दो०—सुरसरिता सों सिंधु, अरु चंद्रिकाहि सों चंद।
कीरति सों जसवंत नृप, महिमा धरत अमंद॥

सूचना—(१) तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों का वा केवल उपमानों का एक धर्म कथन किया जाता है। (२) दीपक में उपमेय और उपमान के धर्म का एक ही साथ कथन किया जाता है।

(१६) आवृत्ति-दीपक

दो०—क्रियापदन को होत जहँ, आवर्तन को जोग।
दीपक आवृत्ति कहत हैं, ताहि सकल कवि लोग।
दीपक आवृति तीन विधि, पदावृत्ति एक जानु।
अर्थावृति दूजो तृतिय, पद अर्थावृति मानु।

[१] पदावृत्ति

दो०—अर्थ दोय पद एक की, आवृति करिए जौन।
पदावृत्ति दीपक तहाँ, कहिए मति के भौन॥

१—दो०—बहै रुधिर सरिता, वहै[2] किरवानें[3] कढ़ि कोस[4]।
बीरन बरहिं[5] वरांगना, बरहिं[6] सुभट रन-रोस॥

१ मदपान। २ चलती है। ३ तलवार। ४ म्यान। ५ वरण करती है। ६ जलते हैं।

२—दो०—नंद-सुवन ब्यारू[1] करत, बाढ़ी प्रीति अथोर।
परसति[2] सुन्दरि सरस तिय, परसति दृग की कोर[3] ॥

३—सवैया

'रघुनाथ' जहाँ तक गोधन हैं, सँग ते चरिबो परित्यागत हैं।
सुर साँवरे सारंग[5] रागत हैं[6], वन के सब सारँग[7] रागत हैं[8] ॥

(२) अर्थावृत्ति

दो०—सब्द पृथक एकै अरथ, जहाँ सु आवृत लेत।
अर्थावृत्ति दीपक तहाँ, कहैं सुकबि करि हेत ॥

१—चौपाई

पय-पयोधि[9] तजि अवध बिहाई[10]। जहँ सिय राम लखन रहे आई ॥

२—दो०—दौरहिं सगर मत्त-गज, धावहिं हय[11] समुदाय।
नटहिं[12] रंग महँ बहु नटी, नाचहि नट हरखाय ॥

३—दोहा—दिस-दिस विकसे कुंज-वन, फूले रुचिर रसाल[13]।

४—सवैया

छिन होत हरीरी[14] मही को लखै निरखै छिनही घन-जोति-छटा।
अवलोकति इंद्रवधून[15] की पाँति विलोकति है छिन कारीघटा ॥
तकि डार कदंबन को तरसै दरसै तउ नाचत मोर अटा।
अध ऊरध आवत जात भयो चित नागरि को नट कैसो बटा[16] ॥

५—चौपाई—कूजहिं, कोकिल गंजहि भृंगा।

६—सवैया

काहे ते आप नहीं 'रघुनाथ' ये आइकै औधि के बासर पूजे[17]।

---

१ रात का भोजन। २ परोसती है। ३ किनारा। ४ स्वर। ५ वंशी। ६ बजाते हैं। ७ मृग। ८ अनुरक्त होते हैं। ९ क्षीरसागर। १० छोड़कर। ११ घोड़ा। १२ नाचती हैं। १३ आम। १४ हरी हरी १५ एक बरसाती-लाल कीड़ा। १६ गोल बट्टा। १७ पूर्ण हो गए।

देखु मधुव्रत गुंज चहूँ दिसि कोयल बोली कपोतहु कूजे[1] ॥

(३) पदार्थावृत्ति

दो०—पद अरु अर्थ दुहून की, आवृति फिरि फिरि होय।
कहत पदार्थावृत्ति तेहि, दीपक सब कबि-लोय[2] ॥

१—दो०—गरजत है रन रामज, गरजत है दससीस।
धावत रिस भरि रजनिचर, चहुँ दिसि धावत कीस।

२—दो०—बोलत चातक चाय सों, बोलत मत्त मयूर।

३—दो०—तोर्‌यौ नृपगन को गरब, तोर्‌यौ हर-कोदंड[3]।
राम जानकी जीव को, तोर्‌यो दुःख अखंड ॥

४—कवित्त—'ग्वाल कवि' आन भरे सान भरे स्यान[4] भरे,
कछू अलस्यान भरे भरे मान माल के ॥
लाज भरे लाग[5] भरे लाभ भरे लोभ भरे,
लाली भरे लाड़ भरे लोचन हैं लाल के ॥

५—दो०—भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच[6] ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि लाटानुप्रास तथा यमक नामक शब्दालंकारों में भी शब्दों का आवर्तन होता है। भेद यह है कि उन में केवल क्रियापद का आवर्तन होता है। वे आवर्तन केवल 'कान' को सुखकर हैं। यह अर्थालंकार है और इसके क्रियापदों का आवर्तन अर्थ में विलक्षणता लाता है।

(२०) कारक-दीपक

दो०—क्रम तें क्रिया अनेक को, कर्ता एकै होय।
कारक दीपक ताहि को, बरनत हैं सब कोय ॥

१ बोल। २ लोग। ३ शिव का धनुष। ४ चतुराई। ५ लाग-डाँट। ६ मृत्यु।

विवरण—क्रियाएँ कई-एक हों, पर उनका कर्ता एक हो, वह कारक-दीपक अलंकार कहलाता है।

१—चौ०—लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े।

२—दो०—दरस दियो तो मित्रवर; आओ बैठो पास।
कुसल कहौ निज भवन की, बाढ़ै हिए हुलास॥

३—दो०—नृपहिं देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय॥

सूचना—स्मरण रखना होगा कि 'समुच्चय' अलंकार में भी कई क्रियाओं का कर्ता एक होता है, पर दोनों में भेद यह है कि 'कारकदीपक' की क्रियाओं से प्रगट किये का कार्यों क्रम से (पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा इत्यादि) होना समझा जाता है, और 'समुच्चय' वाली क्रियाओं से प्रगट किए हुए कार्य एक तो केवल भाववाचक होते हैं दूसरे उनका होना एक साथ पाया जाता है अर्थात् उनमें क्रम नहीं प्रगट होता। इसीलिए इस अलकार की परिभाषा में क्रम से' पद दिया गया है।

(२१) मालादीपक

दो०-दीपक अरु एकावली, मिलैं जहाँ ए दोय।
बरनत कवि कोविद सकल, मालादीपक सोय॥

१—सो०—जग की रुचि[1] ब्रजवास ब्रज की रुचि ब्रजचंद हरि।
हरि-रुचि बंसी 'दास', बंसी-रुचि मन बाँधिबो॥

२—दो०—रस सों काव्यरु काव्य सों, सोहत बचन महान।
बानी ही सों रसिक-जन, तिन सों सभा सुजान॥

३—चौपाई

भरत-सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही॥

---

१ इच्छा।

४—क०—मन कवि 'भूषन' को सिव की भगति जीत्यो,
सिव की भगति जीत्यो साधु-जन-सेवा ने।
साधुजन जीते या कठिन कलिकाल,
कलिकाल महावीर महाराज महिमेवाने [१] ॥
जगत में जीते महावीर महाराजन तें,
महाराज बावनहू पातसाह लेवा ने।
तापसाह बावनौ दिलो के पातसाहि,
पातसा दिल्लीपति है जीत्यो हिंदूपति सेवा ने ॥

(२२) देहरीदीपक

दो०-परै एक पद बीच में, दुहुँ दिसि लागै सोई।
सो है दीपक देहरी, जानत हैं सब कोई ॥

१—सवैया

है नरसिंह महामनुजाद [२] हन्यो प्रह्लाद को संकट भारी।
'दास' बिभीषनै लंक दई निज रंक सुदामा को संपत भारी ॥
द्रौपदी चीर बढ़ायो जहान में पांडव के जस को उजियारी।
गर्विन के खनि गर्व बहावत दीनन के दुख श्रीगिरधारी ॥

यहाँ रेखांकित शब्द दोनों ओर लगते हैं। शब्द का ऐसा ही प्रयोग देहरीदीपक है।

२—दो० लहि जसवंत नरेस पद, कबिन निहाल सु 'कीन'।
अभय प्रजा मरुदेस अरु, सभय जु अखिल अरीन ॥

यहाँ 'कीन' शब्द दोहे के उत्तरार्द्ध में भी लगता है।

(२३) प्रतिवस्तूपमा

दो०-जुग वाक्यन को होते जहँ, एक धर्म बखान।
भूषन प्रतिवस्तूपमा, ताहि कहैं मतिमान ॥

---

१ महिमावान। २ राक्षस, मनुष्य को खानेवाला।

विवरण—इस अलंकार में तीन बातें जरूरी हैं—(१) उपमेय और उपमान-स्वरूप दो वाक्य, (२) दोनों वाक्यों का एक ही धर्म, (३) उस धर्म का समानार्थ वाची शब्दों द्वारा अलग-अलग कथन। जैसे—

१—दो०—सोहत भानु प्रताप सों, लसत सूर[1] धनु-बान।

(क)—लसत सूर धनु-बान=उपमेय-वाक्य है।
सोहत भानु प्रताप सों=उपमान-वाक्य है।
(ख)—'शोभित होना' दोनों वाक्यों का एक धर्म है।
(ग)— उपमेय में वही धर्म 'लसत' से कहा गया है।
उपमान में वही धर्म 'सोहत' से कहा गया है।

२—दो०—चटक[2] न छाँड़त घटत हू, सज्जन नेह[3] गँभीर।
फीको परै न बरु फटै, रँग्यो चोल-रंग[4] चीर॥

इस दोहे में सज्जन की प्रीति की दृढ़ता का वर्णन है। पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य, और उत्तरार्ध उपमान-वाक्य है। 'कम न होना' दोनों का एक धर्म है जो 'चटक न छाँड़त' और 'फीको परै न' दो एकार्थवाची शब्दों द्वारा प्रगट किया गया है। केवल शब्द अलग-अलग हैं, अर्थ एक ही है।

३—चौपाई

तिनहिं सोहात न अवध बधावा। चोरहिं चाँदनि राति न भावा॥

इसमें पूर्वार्द्ध वाक्य उपमेय-रूप और उत्तरार्द्ध वाक्य उपमान-रूप है, दोनों का एक धर्म 'सोहत न' और 'न भावा' पृथक-पृथक शब्दों द्वारा कथन किया गया है। पुनः—

४—दो०—साधु-संग पायहु नहीं, खल को खलपन[5] जाय।
सुधा पियायहु अहि[6] नहीं, तजत गरल दुखदाय॥

---

१ वीर। २ चटकीलापन। ३ प्रेम, तेल। ४ एक प्रकार का लालरंग। ५ दुष्टता। ६ सर्प।

५—दो०—पिसुन[1] बचन सज्जन-चितै[2], सकै न फोरि न फारि।
कहा करै[3] लगि तोय[4] में, तुपक[5] तीर तरवारि॥

यहाँ 'सकै न फोरि न फारि' और 'कहा करै' भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा 'अशक्तता' रूपी एक धर्म प्रगट किया है।

६—सवैया

रंग सो वारिज छाजें भरे छवि राधे के नैन कटाच्छ सों राजैं।

७—सवैया

राजै सुधा सों सुधानिधि यों मुसकानि सों साहन तो-मुख जैसे।

सूचना—कभी-कभी 'काकु' से और 'एकार्थवाची' शब्दों के बदले विरोधवाची शब्दों द्वारा भी इसका 'एक धर्म' कहा जाता है। जैसे:—

(काकु से)—८—चौपाई

सो मैं बरनि सकौं बिधि केही। डावर-कमठ कि मंदर लेहीं॥

यहाँ उपमेय रूपी पूर्वार्धवाक्य में, वर्णन की 'अशक्तता' कही गई है और उपमान रूपी उत्तरार्द्धवाक्य में 'काकु' से अशक्तता प्रगट है।

(विरोधवाची शब्दों से)

९—दो०—प्रगट होत गुन आप ही; कहे और के नाँय[1]।
लहसुन की दुर्गंध नहिं, सौगंध किए छिपाय॥

यहाँ उपमेय-वाक्य में 'गुण' और उपमान-वाक्य में दुर्गंध (अवगुण) कहा गया है, और उपमेय-वाक्य में 'आप ही प्रगट होत' 'विधि-वाक्य' से और उपमान-वाक्य में 'नहिं सौगंध किए छिपाय'-निषेध-वाक्य से दोनों की 'एक धर्मता' गुण का प्रगट हो जाना कहा गया है।

सूचना—इस अलंकार की माला भी देखी जाती है। जैसे:—

---

१ छली। २ चित्त को। ३ बल। ४ गोली। ५ नाम।

१—दो०—वहत[1] जु सर्पन को मलय[2], धरत जु काजर दीप।
चंदहु भजत[3] कलंक को, राखहिं खलन महीप॥

इसमें चार वाक्य हैं चारों में अंतिम वाक्य उपमेय रूप है, और शेष तीन उपमान रूप हैं। चारों की एक-धर्मता 'वहत, धरत, भजत और राखहिं' एकार्थवाची शब्दों से कही गई है।

१२—लीलावती

मद-जल-धरन द्विरद[4] बल राजत, बहु जल-धरन जलद छवि साजै।
पुहुमि-धरन फनिनाथ[5] लसत अति तेज-धरन ग्रीषम रवि छाजै।
खग्ग-धरन सोभा तहं राजत रुचि 'भूषन' गुन-धरन समाजै।
दिल्लि-दलन दक्खिन-दिसि थंभन एंड़-धरन सिवराज विराजै॥

(२४) दृष्टांत

दो०—लखि विंब प्रतिबिंब गति, उपमेयो उपमान।
वाचक पद के लोप तें, हैं दृष्टांत सुजान॥

विवरण—दृष्टांत में दो वाक्य होते हैं, एक उपमेय-वाक्य दूसरा उपमान वाक्य। दोनों वाक्यों के पृथक्-पृथक् धर्म होते हैं। दोनों में बिंब-प्रतिबिंब भाव-सा जान पड़ता है अर्थात् एक प्रकार की समता-सी जान पड़ती है। परंतु यह समता बिना 'वाचक' शब्दों के दिखलाई जाती है।

२—दो०—पगी प्रेम नँदलाल के, हमें न भावत जोग।
मधुप राजपद पाय कै, भीख न मांगत लोग॥

इसमें पूर्वार्ध उपमेय वाक्य है। इसका धर्म है जोग न भाना और उत्तरार्ध उपमान-वाक्य है जिसका धर्म है 'भीख

१ धारण करता है। २ चंदन। ३ रखता है। ४ हाथी। ५ शेषनाग।

न माँगना' परंतु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिंब-प्रतिबिंब झलकता है। अर्थात् कृष्ण के प्रेमियों का जोग में लिप्त होना वैसा ही है जैसे किसी राजा का भीख माँगना।

२—सवैया

रामकलाधर[1] की सुषमा[2] लखि आँखिन को रुख और न भावै।
छोड़ि तरंग सुधा-सरि की कोउ पोखरि[3] को जल पीवन धावै ?

३—दो०—सिव औरंगहि जिति सकै और न राजा राव।
हत्थिमत्थ पै सिंह बिनु, आन न घालै घाव[4] ॥

४—दो०—निरखि रूप नँदलाल को, दृगन रुचै नहिं आन[5]।
तजि पियूष[6] कोऊ करत, कटु औषधि को पान ॥

(दृष्टांत-अलंकार की माला भी देखी जाती है)

५—सवैया

अरविंद प्रफुल्लित देखि कै भौंर अचानक जाय अरैं पै अरैं।
बनमाल थली लखि कै मृगसावक दौरि बिहार करैं पै करैं।
सरसी[7] ढिग पाय कै व्याकुल मीन विलास सों कूदि परैं पै परैं।
अवलोकि गोपाल को 'दासजू' ये अँखियाँ तजि लाज ढरैं पै ढरैं।

सूचना—दृष्टांत से मिलता हुआ प्राचीनों ने 'उदाहरण' नामक एक अलंकार माना है जिसकी हिंदी-काव्य में बड़ी भरमार है, परंतु हाल के आचार्यों ने इसे न जाने क्यों छोड़ दिया है। यह उदाहरण अलंकार, उपमा, दृष्टांत और अर्थांतरन्यास में से किसी में भी अंतर्भूत नहीं हो सकता।

---

१ चंद्रमा। २ शोभा। ३ गड़ही। ४ चोट करना। ५ अन्य, दूसरा। ६ अमृत। ७ तालाब।

ज्यों, यों जैसे कहि, करि य, जुग घटना समतूल।
उदाहरन भूषन कहैं, ताहि सुकबि बुधिमूल॥

कोई साधारण बात कह कर 'ज्यों, जैसे' इत्यादि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से जहाँ समता दिखलाई जाती है वहाँ 'उदाहरण' अलंकार होता है। दृष्टांत और अर्थांतरन्यास में वाचक शब्द नहीं आता। उदाहरण अलंकार के उदाहरण ये हैं—

१—दो०—एक दोष गुन-पुंज में, होत निमग्न 'मुरार'।
जैसे चंद्र-मयूष[1] में, अंक-कलंक[2] निहार॥
२—दो०—अनरसहू रस पाइए, रसिक रसीली-पास।
जैसे सांठे[3] की कठिन, गांठौ भरी मिठास।
३—दो० —जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं॥
४—दो०—बुरो बुराई जो तजै, तो चित खरो सकात[4]।
ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनैं लोग उतपात॥
५—दो०—यों दल काढ़े बलख तें, तैं जयसाह भुवाल[5]।
उदर अघासुर[6] के परे, ज्यों हरि गाय गुवाल॥

इन उदाहरणों में ज्यों, जैसे वाचक शब्द आये हैं, अतः ये दृष्टांत नहीं हैं (परिभाषा देखो)।

सूचना—(१) दृष्टांत अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमान-वाक्य (उत्तरार्द्ध भाग) पर होता है। उदाहरण अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमेय-वाक्य (पूर्वार्द्ध भाग) पर होता है; उत्तरार्द्ध केवल बानगी के तौर पर होता है।

(२) स्मरण रखना चाहिए कि इसी से मिलता-जुलता हुआ 'अर्थांतरन्यास' अलंकार भी होता है। दोनों में भेद यह है कि—

१ किरण। २ कलंक का चिह्न। ३ ऊख। ४ डरता है। ५ राजा। ६ एक राक्षस।

दृष्टांत में दो समवाक्यों की एकता दिखाने का भाव होता है। अर्थान्तर-न्यास में एक वाक्य का समर्थन दूसरे वाक्य से किया जाता है।

१—दो०—काटे पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच॥

यहाँ कदली वृक्ष और नीच पुरुष की एकता दिखलाने का भाव है, इसलिये यह दृष्टांत अलंकार है।

२—चौ०—टेढ़ जानि संका सब काहू। वक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू॥

यहाँ एक वाक्य का दूसरे वाक्य से समर्थन करने का भाव है, इसलिये यह अर्थांतरन्यास अलंकार है।

अर्थांतरन्यास में साधारण का समर्थन विशेष से और विशेष का समर्थन साधारण से होता है। और दृष्टांत में साधारण की समता साधारण से और विशेष की समता विशेष से की जाती है।

बहुधा विद्यार्थी इन दोनों के उदाहरणों में भेद नहीं कर सकते ऐसा हमारा अनुभव है। इसलिये इन दोनों के भेद को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों का एक एक ही धर्म होता है और वह दोनों वाक्यों के साथ अलग-अलग एकार्थवाची शब्दों में कहा जाता है।

दृष्टांत में दोनों वाक्यों के धर्म भिन्न भिन्न होते हैं, अर्थात् केवल उपमेय वाक्य और उपमान-वाक्य में बिंब प्रतिबिंब भाव होता है, धर्म में बिंब प्रतिबिंब भाव नहीं होता, परन्तु कवि उसका कथन ऐसी युक्ति से करता है कि उस युक्ति के कारण दोनों वाक्यों में एक प्रकार की एकता सी भासने लगती है। इसी विलक्षणता का नाम अलंकार है।

(२५) निदर्शना

दो०—सरिस वाक्य जुग के अरथ, करिए एक अरोप।
भूषन ताहि निदर्सना, कहत बुद्धि दै ओप॥

विवरण—जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में (विभिन्नता रहते हुए भी) समता-भाव-सूचक ऐसा आरोप किया जाय कि दोनों

एक से जान पड़ें, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। प्राचीन आचार्यों ने इसके दो भेद कहे हैं, परंतु नवीन आचार्यों ने इसके पांच भेद माने हैं।

(१) पहली निदर्शना

दो०—जो सो, जे, ते, पदन करि, असम वाक्य सम कीन।
ता कहँ प्रथम निदर्सना, बरनैं कवि परबीन॥

१—चौपाई

जो अति सुभट सराह्यो रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन[1]।

२—चौपाई

सुन खगेस हरिभक्ति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन[2] उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी[3]। पैरि पार चाहत जड़ करनी॥

३—दो०—जग-जीव जे चहत हैं तो सों बैर बढ़ाय।
जीवे की इच्छा करत, कालकूट[4] ते खाय॥

४—सवैया

जो सुभ बानी[5] बसै विधि संग सदा सिव अंग लसै सु भवानी[6]।
जो कमला[7] कमलापति के संग 'देव' सचीस[8] सची[9] सुखदानी॥
दीप-सिखा ब्रज-मंदिर सुंदर जागति जोति सबै जग जानी।
साधु की साधिका सिद्ध समाधिका सो ब्रजराज की राधिकारानी॥

सूचना—

दो० वाचक शब्द कहूँ कहूँ, लोप करैं कबिराय।
अर्थ गौर करि कीजिए, निदर्सना दरसाय॥

१—दो०—साहन-सों-रन मांड़िबो,[10] कीबो सुकबि निहाल[11]।
सिव सरजा को ख्याल है, औरन को जंजाल॥

---

१ दूत। २ अन्य। ३ नाव। ४ जहर। ५ सरस्वती। ६ पार्वती। ७ लक्ष्मी। ८ इंद्र। ९ इंद्राणी। १० युद्ध करना। ११ संतुष्ट।

अर्थात् जो शिवाजी के लिये एक खेल के समान है, वही औरों के लिये महा कठिन काम है।

२—दो०—मीठे वचन उदार के, सोने माहिं सुगंध।

अर्थात् उदार में मधुर भाषण गुण का होना ही सोने में सुगंध का होना है।

३—सवैया

अति खीन¹ मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह² को बधि सकै न तहाँ परतीत को टाँड़ो³ लदावनो है।
'कविबोधा' अनी⁴ घनी नेजहु की चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल⁵ है री तरवार की धार को धावनो है।

(२) दूसरी निदर्शना

दो०—थापिय गुन उपमान को, उपमेयहि के अंग।
ता कहँ द्वितिय निदर्शना, कहिउ सुमति उतंग॥

१—दो०—जब कर गहत मकान-सर, देत अरनि को भीति⁶।
भाउसिंह में पाइए, सब अरजुन की रीति॥

२—दो०—लीन्ह्यो तेरे करन नृप, करन करन की रीति।
पायन अंगद की वहै, लई रीति करि प्रीति॥

३—चौपाई

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुखससि भए नैन चकोरा॥

(३) तीसरी निदर्शना

दो०—थापिय गुन उपमेय को उपमानहि के अंग।
ताकहँ त्रितिय निदर्शना कहिए सुमति उमंग॥

---

१ पतला। २ छेद। ३ भार। ४ नोक। ५ कराल। ६ भय।

१—सवैया

आनन ओज अमंद प्रमान कलाधर[1] में यहाँ छाँह परी है।
बंक बिलोचन की 'लछिराम' प्रकासक लालिमा कुंज करी है॥
मौज महातम की महिमा किल[2] कल्पलता परतीति धरी है।
गौर गँभीरता श्री रघुनाथ की छीर-समुद्र के बीच भरी है॥

२—सवैया

नेकु हँसी सो भई नखतावली मालती कुंद जुहीन पै दाया।
बैन कहे ते भए वे सुधा गति सों भई हसन की सुचि काया॥
जोति के भूषन पोत[3] से लागत यों 'गुरुदत्त' करी विधि माया।
चंद भयो मुख को प्रतिबिंब उदै भई चाँदनी अंग की छाया॥

३—कवित्त—कीरति सहित जो प्रताप सरजा में बर,
मारतंड मध्य तेज चाँदनी सो जानी में।
सोहत उदारता औ सीलता खुमान[4] में,
सो कंचन में मृदुता सुगंधता बखानी में॥
'भूषन' भनत सब हिंदुन के भाग फिरे,
चढ़े ते कुमति चकताहु की पेसानी[5] में।
सोहत सुबेस दान कीरति सिवा में सोई,
निरखी अनूप रुचि[6] मोतिन के पानी में॥

४—दो०—तुव बचनन की मधुरता, रही सुधा महँ छाय।
चारु चमक चल नैन की, मीनन लई छिनाय॥

(४) चौथी निदर्शना

दो०—अपने सद व्योहार तें, औरहिं सिखवै ज्ञान।
सो सद अर्थ निदर्शना, मानें सब बुधिमान॥

---

१ चंद्रमा। २ निश्चय। ३ शीशे की साधारण गुरिया। ४ [illegible]
। माथा, ललाट। ६ चमक।

१—दो०—गुरुपादोदक[1] सिर धरिय, सदा जतावत एहु ।
सिर धारत हैं गंग को, महादेव करि नेहु ॥
२—दो०—उदय होत ही जगत को, हरत तपनि दुख दंद ।
सबही को सुख दीजिए, बढ़े बतावत चंद ॥
३—चौपाई
पदकर हिय मुख चख समताई । पाय कमल अहिमिति[2] नहिं लाई ॥
कोच-बीच बसि अस सिखलावै । नमि जो चलै ऊँच पद पावै ॥
१—दो०—दै सुफूल फल दल सुद्रुम, यह उपदेसत ज्ञान ।
लहि सुख संपति कीजिए, आए को सनमान ॥

(५) पाँचवीं निदर्शना

दो० – असत क्रिया निज सों असत, अर्थ जनावै कोय ।
पंचम असद निदर्शना, तेहि भाषत सब कोय ॥
१—दो०—खोवत प्रान अजान जे, करत कूर को संग ।
यहै सिखावत छोड़ि तन, दीपक-सिखा पतंग[3] ॥
२—सो०—कच घुँघुरारे जोय, यहै जनावत दुरजनहिं ।
नितहू बंधन होय, तऊ न तजिए कुटिलता ॥
३—दो०—राजबिरोधी नसत है, यों जग को दरसात ।
चंद उदय तें तमनि कर, छिन-छिन छीजत[4] जात ॥
४—दो०—पदकंदुक[5] सिखवत सबहिं, सहि-सहि लातअघात ।
सारहीन संसार में, लातन मारे जात ॥
५—सवैया
धूर धुरेटे चपेटे परे महि संग न कोऊ सहायक गोत है ।
भैया सगो भयो बैरी, समैं लहि बूड़ि गयो बल बाँह उदोत है ॥

---

१ बड़ों के चरणों का जल । २ अहंकार । ३ फतींगा । ४ क्षीण होना । ५ पैर का गेंद (Foot-ball) ।

और कहा कहिए 'लछिराम जू' सोई मिलै कोउ वीज जो बात है।
तारा कहै मुख बालि निहारि कै राम न जाने का या फल होत है॥

सूचना—(१) प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं। (२) दृष्टांत और निदर्शना के दोनों वाक्य परस्पर अपेक्षित होते हैं, स्वतंत्र नहीं (३) दृष्टांत में वाचक नहीं होता। (४) निदर्शना में वाचक होता है।

(२६) व्यतिरेक

दो०—उपमा ते उपमेय में, अधिक कछु गुन होय।
व्यतिरेकालंकार तेहि, कहैं सयाने लोय॥

विवरण—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ उत्कृष्टता कही जाय, वहाँ यह अलंकार होता है। यह उत्कृष्टता दो प्रकार से प्रकट की जाती है।

(१) उपमेय में उपमान से कोई गुण अधिक कहा जाय।

(२) उपमान में कोई हीनता दिखाई जाय।

(पहले ढंग के उदाहरण)

१—दो०—मुख है अंबुज सा सही, मीठी बात विसेष।

२—चौपाई

संत-हृदय नवनीत[1] समाना। कहा कबिन पै कहत न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर-दुख द्रवैं सुसंत पुनीता॥

३—सवैया

सखि वा में जगै छन जोति-छटा इत पीतपटा दिनरैन मड़ो।
वह नीर कहूँ बरसै सरसै यह तो रसजाल[2] सदाहीं अड़ो॥
वह स्वेत ह्वै जात अपानिप[3] ह्वै यह रंग अलौकिक रूप गड़ो।
कह 'दास' बराबरी कौन करै घन औ घनश्याम सों बीच बड़ो॥

---

१ मक्खन। २ आनंद का समूह। ३ पानी से हीन।

४—उल्लाला

सिवराज साहिसुव[1] सत्थ नित, हय गय लक्खन संचरइ।
यक्कय गयंद[2] यक्कय तुरंग, किमि सुरपति सरवरि करइ॥

(दूसरे ढंग के उदाहरण)

१—चौपाई

जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।

२—दो०—जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक॥

३—दो०—घटै बढ़ै सकलंक लखि, सब जग कहै ससंक।
सीय बदन सम है नहीं, रंक मयंक एकंक[3]॥

(२७) सहोक्ति

दोहा—जहँ मनरंजन बरनिए, एक संग बहु बात।
सो सहोक्ति आभरन है, ग्रंथन में विख्यात॥

१—चौपाई

जस प्रताप बीरता बड़ाई। नाक[4] पिनाकहि[5] संग सिधाई॥

२—पद

यहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहिं उठाय लियो।
नृपगन मुखन समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो॥
आकरष्यो सिय मन समेत हर हरष्यो जनक हियो।
भंज्यो भृगुपति गर्व-सहित तिहुँ लोक विमोह कियो॥

३—चौपाई

त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहि बिचार बरै[6] हठि तेही।

---

१ शाहजी के पुत्र। २ गजेंद्र, ऐरावत। ३ निश्चय। ४ इज्जत। ५ शिव का धनुष। ६ वरण करे।

४—कवित्त—जनक निरासा, दुष्ट नृपन को आसा,
दुरजन को उदासी, सोक रनिवास मनु के।
बीरन के गरब गरूर भरपूर सब,
भ्रम मोह आदि मुनि कौसिक के तनु के॥
'हरिचंद' भय देव मन के पुहुमि[1] भार'
बिकल बिचार सबै पुरनारी जनु[2] के।
संका मिथिलेस की सिया के उरसूल सबै,
तोरि डारे रामचंद्र साथै हरधनु के॥

सूचना—संग, सहित, समेत, साथ, एकै साथ इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द इस अलंकार के वाचक हैं।

(२८) विनोक्ति

दो०—द्वै विधि कहैं विनोक्ति को सुकवि बुद्धि के ऐन।
प्रस्तुत कछु बिन न्यून अरु कछु बिन सोभा दैन॥

(प्रथम विनोक्ति)

दो०—कछू वस्तु बिन बरनिए, वननीय जहँ हीन।

१—सवैया

राम सुरूप निधान को रूप प्रकासक पंचवटी न अमात है[3]!
लक्खन मैथिली साथ जऊ रिपुदौन[4] भरत्थ बिना न सोहात है॥

२—दोहा

कबि बिन नहिं सोहै सभा, निसि बिनु सुधानिवास[5]।
फबत न गिरिधरदास बिनु गिरिधर 'गिरिधर-दास'॥

३—चौपाई

जिय बिन देह नदी बिनु बारी[6]। तैसइ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

---

१ पृथ्वी। २ लोग। ३ नहीं अटता। ४ शत्रुघ्न। ५ चंद्रमा। ६ जल।

४—हरिगीतिका

जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तन, चंद्र बिनु जिमि जामिनी[1]।
तिमि अवध 'तुलसीदास' प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी[2]॥

५—चौपाई

अस जिय जानि भजहिं जे आना। ते नर-पसु बिन पूँछ बिषाना[3]

(द्वितीय विनोक्ति)

दो०—वर्ननीय बनत जहाँ, कछू वस्तु बिनु रम्य।

१—दो०—भलो प्रीति बिन कपट की, देत सबहिं चित चैन।
कैसे नीके लगत ए, बिनु सकोच के बैन[4]॥

२—सोरठा—बिनु कठोरता अम्ब, लसत रावरे के चरन॥
सब जग के अवलंब, बसत साधु-जन के हिये॥

(मिश्रित)

(प्रथम)—दान बिना सोहत नहीं, नृप जिमि द्विरद[5] बिसाल।
(द्वितीय)—मान बिना सोहत सुभट, जैसे मनि गन माल।
दान = (क) दक्षिणा, (ख) गजमद।

(ध्वनि में)

(प्रथम)—बड़े दृगन को फल कहा, जो न लख्यो हरि-रूप।
धिक श्रवनन जो नहिं सुने, प्रभु के चरित अनूप॥
अर्थात् बिना हरि-दर्शन नेत्र और बिना हरि-कथा सुने कान शोभा नहीं पाते।

(२६) समासोक्ति

दो०—जहँ प्रस्तुत में होत है, अप्रस्तुत को भान।
समासोक्ति तेहि कहत हैं, कविजन परम सुजान॥

१ रात्रि। २ स्त्री। ३ सींग। ४ वचन। ५ हाथी।

दो०—कवि इच्छा जेहि कथन को, 'प्रस्तुत' ताको जानु ।
अनचाहे हूँ फुरि परै, 'अप्रस्तुत' सो मानु ॥

विवरण—जब किसी कथन में कवि इच्छित अर्थ के अलावा। (शब्दों की गंभीर गठन के कारण) कोई दूसरा अर्थ भी भासमान होता है तब उस कथन में समासोक्ति अलंकार माना जाता है। ऐसे कथन में बहुधा ऐसे श्लिष्ट शब्द अनायास आ जाते हैं, जिससे दूसरे अर्थ का भान होने लगता है। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि श्लिष्ट शब्दों ही द्वारा यह अलंकार सिद्ध हो सके अश्लिष्ट शब्दों से भी काम चल सकता है।

सूचना—इस अलकार को अँगरेजी में 'माडेल मेटैफर (Model Metaphor) कहते हैं।

(अश्लिष्ट शब्दों द्वारा)

चौपाई

लोचन मगु रामहिं उर आनी[1]। दीन्हें पलक-कपाट सयानी ॥

इसमें कवि इच्छित अर्थ के अलावा यह भी भासित होता है कि किसी चंचल व्यक्ति को बँधुवा बनाने के व्यवहार में किवाड़ों को बंद कर देना होता है।

२—दो० कुमुदिनि हू प्रमुदित भई, साँझ कलानिधि जोय।

इसमें कवि इच्छित अर्थ तो यह है कि 'संध्या समय में चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी फूली।' परन्तु इससे किसी नायिका की दशा की सूचना मिलती है।

(श्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१—दो०—बड़ो डील लखि पील[3] को सबन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत में ताको हर्यो गुमान ॥

---

१ लाकर। २ श्वेत कमल। ३ हाथी।

इसमें 'सरजा' शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ है (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब होने के कारण स्वयं शिवाजी।

कवि की इच्छा सिंह वर्णन की है। परंतु 'सरजा' शब्द श्लिष्ट होने के कारण उसमें शिवाजी और औरंगजेब के व्यवहार का भी भान होता है।

२—दो०—तुही साँच द्विजराज[1] है, तेरी कला[2] प्रमान।
तोपै सिव [3]किरपा करी, जानत सकल जहान॥

इसमें कवि का इच्छित तात्पर्य तो चंद्रमा की प्रशंसा है, परंतु 'द्विजराज' और 'शिव' शब्द श्लिष्ट होने से भूषण कवि और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है।

३—कवित्त—'भूषन' जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।
खोइहौ प्रबल मदगल [4]-गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की॥

यहाँ भी कवि-इच्छा हाथी के वर्णन की है, परंतु पहले उदाहरण की तरह इसमें भी शिवाजी और औरंगजेब के व्यवहार का भान होता है।

४—सो०—लता नवल तनु अंग जाति जरी जीवन [5] बिना।
कहा सिख्यो यह ढंग, तरुन अरुन[6] निरदै[7] निरखु॥

इस सोरठे में दोपहर के प्रचंड तापयुक्त सूर्य के तेज से किसी नाजुक लता के सूख जाने का वर्णन है, परंतु गौर करने से किसी विरहिनी नायिका की दशा का भी भान होता है।

---

१ श्रेष्ठ ब्राह्मण, चंद्रमा। २ चंद्रमा की कला, विद्या। ३ महादेव, शिवाजी। ४ मदगलित। ५ जल, जिंदगी। ६ सूर्य। ७ निर्दय।

५—कवित्त—जीवन के दानि हो सुना हो सरस अति,
जगत के जीवन को आनंद उमाहे हो।
सुजस को पाओ परस्वारथ को धाओ,
धरा-तपनि मिटाइबे की मति अवगाहे हो॥
'गोकुल' कहत इन्हें आस रावरे की है,
जू प्यास इनकी न मेटि देते काहे हो।
गरजि घुमरि घनस्याम[1] क्यों बरावत[2] हो,
कछु चातकीनहूँ को अपराध चाहे[3] हो॥

इसमें कवि की इच्छा बादल और चातकियों के वर्णन की है, परंतु तनक ही गौर करने से इसमें कृष्ण और गोपियों के व्यवहार का भान मिलता है।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये।

सूचना—(श्लेष और समासोक्ति के भेद)—

(१) श्लेष में सब ही अर्थ प्रस्तुत समझे जाते हैं।

(२) समासोक्ति में प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भान-सा होता है।

(३०) परिकर

दो०—अभिप्राय जहँ क्रिया को, सुविसेषन में होय।
अलंकार परिकर तहाँ, बरनत हैं कवि लोय॥

विवरण—जहाँ कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जो उस पद की क्रिया से संबंध रखता हो।

१—सवैया

जानो न नेकु बिथा पर[4] की बलिहारी तऊ पै सुजान कहावत।

२—सवैया

भाल में जाके सुधाधर है वही साहेब ताप हमारो हरैगो।

१ बादल, श्रीकृष्ण। २ बरकना। ३ देखना। ४ अन्य।

अंग है जाको बिभूति[1] भरो वहै भौन में संपति भूरि भरैगो।
घातक है जो मनोभव को जग पातक वाही के जारे जरैगो।
'दास' जू सीस पै गंग लिए रहै ताकी कृपा कहौ को न तरैगो।

३—दो०—चक्रपानि हरि की निरखि, असुर जात भजि दूरि।
रस[2] बरसत घन स्याम तुम, ताप हरत मुद पूरि॥

४—कवित्त—सीतल करैगे मेटि ताप त्रिभुवन राम,
स्यामघन बरन बरसि दान-धारा को।

सूचना—इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत इश्तकाक' कह सकते हैं।

(३१) परिकरांकुर

दो०—अभिप्राय जहँ क्रिया को, है विसेष्य पद माहिं।
सुकवि सकल बरनन करैं, परिकर-अंकुर ताहि॥

१—दो०—रतनाकर[3] वासी रमा, प्रानन को आधार।
हरि कुबेरपति रावरो, हरै रोग बिकरार॥

२—चौ०—बदन मयंक[4] ताप त्रय-मोचन।

३—चौपाई

सुनहु विनय मम-बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।

४—दो०—धरनिसुता[5] धीरज धरेउ, समय सुधर्म बिचारि।

५—पद—हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।

६—दो०—जम करि मुँह तरहरि[6] पर्यो, यह धरहरि चित लाय।
विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाय

यहाँ 'नरहरि' शब्द साभिप्राय है। जमराज को हाथ

---

१ भस्म, ऐश्वर्य। २ जल, आनंद। ३ समुद्र। ४ चंद्रमा। ५ पृथ्वी की पुत्री, सीता। ६ नीचे करके।

(करि) माना तो हाथी को मारने के लिये नरहरि (नृसिंह) समर्थ हैं।

७—पद

हृषीकेस सुनि नाउँ जाऊँ बलि अति भरोस जिय मोरे।
'तुलसिदास' इंद्रिय-संभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे॥

८—पद

'तुलसिदास' भवव्याल-ग्रसित तव सरन उरगरिपुगामी।

'हृषीकेस' और 'उरगरिपुगामी' संज्ञाएँ साभिप्राय हैं, क्योंकि हृषीकेस (हृषीक + ईश = इंद्रियों का मालिक) ही इंद्रिय-संभव दुख दूर कर सकता है और उरगरिपुगामी (गरुड़ पर सवार होनेवाला) ही 'भवव्याल' से रक्षा कर सकता है।

सूचना—इस अलंकार को भी फारसी तथा उर्दू में 'सनअत इश्तकाक' कह सकते हैं।

(३२) श्लेष

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ।
श्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ॥

सूचना इस अलंकार के कुछ उदाहरण और विवरण शब्दालंकार वाले वर्णन में देखो। कुछ उदाहरण नीचे लिखते हैं।

१—दो०—द्विजतिय-तारक[1] पूतना मारन में[2] अति धीर।
काकोदर[3] को दरपहर, जय यदुपति रघुबीर॥

२—दो०—सगुन[4] सभूषन[5] सुभ सरस[6], सुवरन[7] सुपद[8] सराग।
इमि कविता अरु कामिनी, लहै जु सो बड़ भाग॥

---

१ ब्राह्मण की स्त्री को तारने वाले। २ पूतना के मारने में, पूतनामा (पवित्र नाम वाले) रण में। ३ एक राक्षस, जयंत। ४ गुण, माधुर्य आदि गुण। ५ गहना, अलंकार। ६ आनंद देनेवाली (रसों से युक्त) ७ अक्षर, रंग। ८ पैर, शब्द।

३—सवैया

सुंदर सोहै सुगंधित अंग अभंग अनंग कला ललिता है।
तैसी 'किसोर' सोहात सुयोनिन[1] भोगिनहूँ[2] को मनोहरता है॥
संग अली[3] अवली रव राजत अंग रसीली वसीकरता है।
कोमलता युत बीर[4] बसंत की बैहर[5] की बनिता[6] कि लता है॥

४—कवित्त—ढरै मधुमाधुरी राग[7] सुबरनसनो[8];
सरस सलोनी पाप-तापन के अंत को।
कामना जुगति को उकुति सरसावत सी,
छावै मधुराई कल कोकिल के भंत की॥
'गोकुल' कहत भरी गुनन[9] गँभीर सोरी,
कानन[10] लौं आवति पियूष ऐसे बात[11] को।
ऐसो सुखदानी है न जानी जगती में,
और कबिन की बानी बर बैहर बसंत की॥

५—कवित्त—पापिन[12] के आगर सराहैं सब नागर,
कहत 'दास' कोस[13] में लख्यो प्रकासमान में।
रज[14] के संयोग तें, अमल होत जब तब,
हरि हितकारी बास जाहिर जहान में॥
श्री[15] को भाय सहजै करत मनकाम,
थकै बरनत बानि जा दलन[16] के विधान में।
एतो गुन देखो राम साहिब सुजान में,
कि बारिज बिहान[17] में कि कीमत[18] कृपान में॥

---

१ संयोगी, योगिराज। २ संभोगी, सर्प। ३ सखी, भ्रमर। ४ संबोधन में। ५ वायु। ६ स्त्री। ७ पुष्प-धूलि, सुन्दर राग। ८ सुन्दर अक्षर, सुन्दर रंग। ९ माधुर्य, मधु आदि गुण। १० वन, कर्ण। ११ वायु, वचन। १२ जल, शोभा। १३ पद्मकोश, घन, म्यान। १४ धूलि, रजपूती। १५ लक्ष्मी, शोभा। १६ सेना, पँखुड़ी। १७ प्रातः काल का कमल। १८ बहुमूल्य।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए अर्थ-श्लेष कि अलंकार में बहुधा संदेहालंकार वा विकल्पालंकार से सहायता ली जाती है, परंतु मुख्यता श्लेष की होती है इसलिये वही माना जाता है, उदाहरण नं० ३, ४, ५ में देखो और समझो। बाबू हरिश्चंद्र जी ने अपने 'सत्यहरिश्चंद्र' नाटक में एक दोहा कहा है जो शिव, राजा, कवि, कृष्ण और चंद्रमा इन पाँचों पर घटित हो सकता है, और सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र पर भी लगता है। दोहा यह है—

दो०—सत्यासक्त[1] दयाल द्विज, प्रिय[2] अघहर सुखकंद।
जनहित[3] कमलातजन[4] जय, सिव, नृप, कवि, हरिचंद॥

सूचना—इस अलंकार को फारसी और उर्दू में 'ईहाम' कहते हैं।

(३३) अप्रस्तुत प्रशंसा

दो०—अप्रस्तुत बर्नन विषे, प्रस्तुत बरनो जाय।
अप्रस्तुत-परसंस तेहि, कहैं कबिन के राय॥

विवरण—जिस विषय को कहना हो, उसे स्पष्ट शब्दों में न कहकर इस ढंग से कहें कि वह असली बात लक्षित हो जाय, वहाँ यह अलंकार कहा जायगा।

सूचना—इस अलंकार को अंग्रेजी में 'मेटानोमी' (Metonomy) कह सकते हैं।

ऐसा कथन पांच प्रकार से हो सकता है।

दो० कारज मिस कारन कथन, कारन के मिस काज।
कहुँ सामान्य बिसेष है, होत ऐसही साज।

---

१ सती में आसक्त (शिव), सत्यभामा में आसक्त, सत्य में आसक्त। २ ब्राह्मण, गणेश, चंद्र। ३ दास, प्रजा, मनुष्य। ४ लक्ष्मी, धन।

कहुं सिरस सिर डारि कै, कहै सरिस सों बात।
अप्रस्तुत परसंस के पंच भेद अवदात॥

(१) कारज मिस कारण कथन-कारज निबंधना—अर्थात् इष्ट तो है कारण का कथन, पर उसे सीधे शब्दों में न कहकर उसके कार्य का कथन करके वह कारण जनाया जाय।

१—दो०—मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीप किसोर।

यहाँ परशुरामजी का असल मतलब तो यह कहने का कि 'मैं तुम्हें मार डालूँगा' पर ऐसा न कहकर कहते हैं कि हे राजकुमार! 'तू अपने माता-पिता को शोचवस मत कर'। 'किसी का मारा जाना' यह कारण है, और उसके 'माता-पिता का शोचबस होना' यह कार्य है। सो कार्य कह कर कारण जताते हैं।

२—सवैया

राधिका के अँसुवान को सागर बाढ़त जात मनो नभ छ्वै है।
बात कहा कहिए ब्रज की अब बूड़ोई ह्वैहै कि बूड़त ह्वैहै॥

इसमें अश्रु-सागर का बढ़ना और ब्रज का बूड़ना जो कार्य रूप है सो कहा, पर असल कारण 'विरह की अधिकता' साफ शब्दों में न कहा। इससे यहाँ भी 'कारज मिस कारण का कथन' है।

३—दो०—गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोप[1] अपार।
डगर डगर नै[2] ह्वै रही, बगरा-बगर[3] के बार[4]॥

४—क०—राधे को बनाय विधि धोयो हाथ ताको रंग,
जनि[5] भयो चंद हाथ झारे भए तारे हैं।

यहाँ भी धोवन से चंद और तारों का होना जो कार्य रूप

१ जो सूख न सके। २ नदी। ३ घर। ४ दरवाजा। ५ उत्पन्न होकर।

है कहकर राधिकाजी की 'अत्यन्त सुन्दरता' जो कारण है जताई गई है।

५—दो०—तव पद-नख की दुति कछुक धोय गई जल साथ।
तेहि कारन मिलि दधि[1] मथत चंद्र भयो है नाथ॥

यहाँ भी धोवन से चंद्रमा का होना जो कारज रूप है वर्णन करके श्रीकृष्ण के पदनख की 'महान् छटा' जो कारन-रूप है। सूचित की गई है।

(२) कारण के मिस काज-कारण निबंधना—अर्थात् जहाँ कार्य तो कहना हो, पर कहा जाय कारण। जैसे—

१—चौपाई

कोउकहजबविधि[2]रतिमुख कीन्हा। सारभाग ससिकरहरिलीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं।। तेहि मग देखिय नभ-परिछाहीं॥

यहाँ रतिमुख की अत्यंत सुन्दरता जो कार्यरूप है—न कहकर उसका कारण (चंद्रमा का सारभाग) कथन किया गया है। यहाँ कारण मिस कार्य कथन है।

२—दो०—लीन्हों राधा मुख-रचन, विधि ने सार तमाम।
तेहि मग होय अकास यह, ससि में दीखत स्याम॥

३—सवैया

जोति के गंज में आधो बराय बिरंचि रचो वृषभानु-दुलारी।
आधो रह्यो फिर ताहू में आधो लै सूरज चंद्र-प्रभान में डारी।
'दास' द्वै भाग किये उबरे के तरैयन में छबि एक की सारी[3]।
एक ही भाग ते तीनहूँ लोक की रूपवती युवतीन सवारी॥

४—सवैया

राधे के अंग गोराई सो और गोराई विरंचि बनावन लीनो।
कै सत बुद्धि बिबेक सों एक अनेक बिचारन में मति दीनो॥

१ उदधि, समुद्र। २ ब्रह्मा। ३ छोड़ी।

बानिक तैसो बनी न बनावत 'केसव' प्रस्तुत ह्वै गई होनी।
लै तब केसरि, केतकि, कंचन, चंपक, केद्लि, दामिनि कीनी॥

इन सब कथनों से, जो कारणरूप हैं, 'राधा के मुख को अत्यन्त छवि' जो कार्य रूप है प्रगट होती है। इसलिये यह सब कारण मिस कार्य का कथन है।

५—दो०—गर्भन के अर्भक[1]दलन, परसु मोर अति घोर।

यहाँ भी परशुराम ने कारणरूप परशु का वर्णन करके मारणरूप कार्य को सूचित किया है। ऐसा ही यह भी है—

६—दो०—तदपि कठिन दसकंध सुनु, छत्रि-जात कर रोष।

(३) सामान्य मिस विशेष का कथन-सामान्य निबंधना—

जहाँ कोई सामान्य सी बात कह के विशेष का तात्पर्य जताया जाता है। यथा—

१—चौपाई

सूपनखा की गति तुम देखी। तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी।

इस कथन में 'सूपनखा की दशा' सामान्य रीति से कह-कर यह प्रस्तुत जताया गया कि तुम्हें रामचंद्र के समान सबल पुरुष से वैर न करना चाहिए।

२—दो०—धरे न मन में सोच जे, वैर प्रबल सों ठानि।
सोवत आगि लगाय ते, सदन माँझ पट[2] तानि॥

३—दो०—बड़े प्रबल सों वैर करि, करत न सोच-बिचार।
ते सोवत बारूद पर, पट में बाँधि अँगार॥

ऊपर के इन दोनों दोहों में कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का किसी विशेष सबल पुरुष से वैर करने को मनाही करना चाहता है, पर उस विशेष पुरुष का नाम न लेकर सामान्य भाव से एक साधारण बात कहता है।

---

१ गर्भ के बच्चे। २ चादर।

(४) विशेष मिस सामान्य का कथन—विशेष निबंधना—

१—सवैया

'दास' परस्पर प्रेम लखो गुन क्षीर[1] को नीर मिले सरसातु[2] है।
नीरै बेचावत आपने मोल जहाँ जहाँ जायकै क्षीर बिकातु है।
पावक[3] जारन क्षीरै लगै तब नीर जरावत आपनो गातु है।
नीर की पीर निवारन कारन क्षीर घरी ही घरी उफनातु है।

यहाँ जो क्षीर और नीर की प्रीति का वर्णन किया गया है सो अप्रस्तुत है अर्थात् कवि का प्रयोजन क्षीर-नीर की प्रीति के वर्णन से नहीं है, वरन् यह विशेष उदाहरण देकर प्रस्तुत बात यह सूचित करता है कि सब लोगों को प्रीति ऐसी ही करनी चाहिए।

२—दो०—धन्य सेष सिर जगत हित, धारत भुवि को भार।
बुरो बाघ अपराध बिनु, मृग को डारत मार॥

इसमें शेष और बाघ के अप्रस्तुत वर्णन से यह प्रस्तुत जताया गया कि बड़े होकर सब का भार अपने सिर लेना अच्छा काम है और सशक्त होकर निरपराधों को सताना बुरा काम है।

३—दो०—निज मंडल मधि राखि मृग, मृगलांछन भो चंद।
मृगपति भो मृग मारिकै, सिंघ सु सदा स्वच्छंद॥

इस दोहे में चंद्रमा और सिंह के विशेष उदाहरणों से यह सूचित किया गया कि अयोग्य को साथ रखने से कलंक लगता है और उसको विनष्ट कर देने से प्रशंसा होती है।

४—दो०—काटि लेत तरु बाढ़ई, सूधे सूधे-जोय।
बन में बाँके[4] वृक्ष को, काटत है नहिं कोय॥

---

१ दूध। २ बढ़ता है। ३ अग्नि। ४ टेढ़े।

इस दोहे के विशेष उदाहरण से सामान्यतया यह प्रस्तुत निकलता है कि सीधेपन मे दुख होता है और कुटिल लोगों को सताने को कोई इच्छा ही नहीं करता।

(५) सरिस से सिर डारि कै सरिस के बात कहना—

(इसी को सारूप्य-निबंधना और अन्योक्ति भी कहते हैं)।

सूचना—

दो०—और एक पिछान है, मानि लेहु परतीत।
समासोक्ति भूषन जू है, ताको यह बिपरीत॥

१ दो०—भयो सरितपति सालिपति, अरु रतनन की खानि।
कहा बड़ाई समुद्र की, जु पै न पीजत पानि॥

यहाँ समुद्र पर ढारकर यह बात किसी ऐसे धनी के लिये कही गई है, जो धनी तो बहुत बड़ा है, परंतु उससे किसी को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता है। कवि की इच्छा (प्रस्तुत) यही है, समुद्र का वृत्तांत अप्रस्तुत है।

२—सवैया

काल कराल परै कितनो पै मराल[1] न ताकत तुच्छ तलैया[2]।

यहाँ हंस पर ढारकर यह बात कही गई है कि विवेकी पुरुष दुःख पाने पर भी अनुचित कार्य करने की ओर नहीं झुकता।

३—चौपाई

मानस[3]सलिल-सुधा-प्रतिपाली। जियै कि लवन-पयोधि[4]मराली।
नवरसाल[5]बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल विपिनकरीला[6]॥

यहाँ हंसिनी और कोयल पर ढारकर यह जताया गया है कि सुकुमार और सुखभोगिनी स्त्रियाँ वनवास का कष्ट सहन नहीं कर सकीं।

१ हंस। २ गड़ही। ३ मानसरोवर। ४ खारा समुद्र। ५ आम। ६ करील का वन।

४—चौपाई

सुन दसमुख खद्योत[1] प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी[2] करहि बिकासा॥

यहाँ सीताजी कमलिनी पर ढारकर रावण से अपना वृत्त कहती हैं।

५—कवित्त—हारे बारबारे जे बिचारे मंजलिन[3] मारे,
दुखित महा रे तिन को न सुख तैं दियो।
बन के जे पंछी तिनहू के काम को न कछू,
साँझ समै आय बिसराम उन ना लियो॥
आपनेहू तन की न छाया करि सक्यौ मूढ़,
'दयानिधि' कहै जग जन्म ही वृथा गयो।
घास को न आड़ भयो फूल फल को न लाड़,
एरे ताड़ वृक्ष एतो बढ़िकै कहा कियो॥

यहाँ भी अप्रस्तुत ताड़ वृक्ष के वर्णन से किसी ऐसे बड़े मनुष्य का वर्णन प्रस्तुत है जिससे किसी को कुछ लाभ नहीं पहुँचता।

इसी अलंकार को लेकर गोसाँई 'दीनदयालगिरि' ने 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' नाम का एक छोटा सा ग्रंथ ही रच डाला है।

६—दो०—नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनु तरुवर मति भूल।
अपत[4] भए बिन पाइहै, क्यों नव दल फल फूल॥

७—दो०—स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखु विहंग विचारि।
बाज पराये पानि[5] परि तूँ पंछीन न मारि॥

सूचना—(अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति और पर्यायोक्ति का भेद

(१) अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है।

---

१ जुगुनू। २ कमलिनी। ३ रास्ते का टिकाव। ४ पत्ते से हीन, अप्रतिष्ठित। ५ हाथ।

(२) समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन से किसी अप्रस्तुत का भी भान होता है।

(३) पर्यायोक्ति में प्रस्तुत का कथन कुछ घुमा फिराकर किया जाता है, सीधे-साधे नहीं, उसमें अप्रस्तुत का कोई आभास नहीं होता।

(३४) प्रस्तुतांकुर

दो०—प्रस्तुत में प्रस्तुत जहाँ, प्रगटत अंकुर न्याय।
प्रस्तुत अंकुर कहैं तेहि, बुद्धिमान कविराय॥

विवरण—जब कोई बात इस प्रकार कही जाती है कि जिससे कही जाय और एक दूसरा व्यक्ति जिसको सुना कर कही जाय दोनों को लाभ पहुँचे, तब यह अलंकार होता है। कहने वाले का तात्पर्य (प्रस्तुत) दोनों से कथन करने का होता है। एक से तो प्रत्यक्ष कहता है, और दूसरे को सुनाने का तात्पर्य होता है। इस प्रकार मानो प्रस्तुत में से एक अंकुर निकलता। प्रस्तुत बात एक के लिए होती है। और वह अंकुरवत् निकली हुई (प्रस्तुत) बात दूसरे के लिए। दूसरे को सुना कर दूसरे के प्रति जो उपालंभ या उपदेश दिया जाता है उस कथन में यह अलंकार अवश्य होता है।

१—दो०—सीता वात[1] आतप[2] सही, राख तरिये आस।
तऊ पपीहा की जलद, तैं न बुझाई प्यास॥

यहाँ 'जलद' से तो प्रत्यक्ष ही कथन है, परन्तु करने वाले का तात्पर्य एक अन्य जन को सुनाने का भी है जिससे वह कुछ आशा रखता था।

२—सो०—अलि कदंबतरु पाय, सुमन[3] भरो मकरंदमय।
तजि करील पै जाय, निरस[4] अपत[5] परसे कहा॥

१ वायु। २ घाम। ३ पुष्प, सुन्दर मन। ४ रसहीन। ५ पत्रहीन, अप्रतिष्ठित।

यहाँ प्रत्यक्ष कथन भौंरे से और सुनाना एक ऐसे व्यक्ति को है जो सर्वांग सुंदर वस्तु पाकर भी एक नीरस वस्तु पर प्रेम रखता है।

सवैया

दल[1] देखो नहीं, अस जाड़ो बड़ो अरु घाम घनो जल क्यों हरि है।
कहि 'केसव' बात बहै, दिन दाव दहै[2], धर धीरज क्यों धरि है।
फलिहै फुलि नाहिं कि तौलों तुही कहि तो यहँ भूख सही परि है।
कछु छाँह नहीं सुख सोभ नहीं रहि कीर[3] करीर कहा करि है।

यहाँ कीर के प्रति तो प्रगट कथन है, पर सुनाना है एक ऐसे व्यक्ति को जो एक धनधान्यसंपन्न पुरुष को छोड़कर (करीलवृत्त समान पत्ररहित) एक निर्धन मनुष्य का आश्रय लेना चाहता है।

४—कवित्त—निपट कठोर घोर कंटकन पर्यो तन,
मूढ़ मन कहा गूढ़ गुन गावैगो।
कहै 'रघुनाथ' ताते आपनो अगारो[4] चेत,
हेत मत करै जानि ही में सोच छावैगो॥
गंध को न लेस मकरंद को न बुंद यामें,
छायाहू न सुखद सताप तन तावैगो।
साहेब सुजान अलि मेरी कही मान,
पर अपत करील सेये तू न सुख पावैगो॥

सूचना—यह अलंकार गूढ़ोक्ति से मिलता-जुलता है। दोनों का भेद 'गूढ़ोक्ति' की सूचना में दिखलाया गया।

(३५) पर्यायोक्ति

दो०—परयायोक्ति प्रकार द्वै, कछु रचना सों बात।
मिस करि कारज साधिए, जो हित चितहि सोहात॥

---

१ समूह। २ दावाग्नि। ३ सुग्गा। ४ भविष्य।

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में पेरीफ्रेसिस (Periphrasis) कहते हैं।

(१) कछु रचना सं बात'—जो बात कहनी हो उसे सीधे शब्दों में न कहकर कुछ घुमा फिराकर कहना। (कोई-कोई इस अलंकार में व्यंग्य मुख्य मानते हैं, परंतु हम ऐसा नहीं मानते) जैसे—कहना हो कि 'अमुक व्यक्ति मर गया।' इस बात को इन्हीं शब्दों में न कहकर यों कहें कि 'अमुक व्यक्ति को सुरराज ने अपने पास बुला लिया' यह पर्यायोक्ति है।

१—दो०— जाके लोचन[१] करत हैं, कुवलय[२] कंज[३] प्रकास।
सो भाऊ भूपाल के, करत हिए में बास॥

२—दो०—कत भटकत गावत न क्यों, वाही के गुन गाथ।
जाके लोचन हो किये, बिन बलयनि[४] रति-हाथ।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में यह न कहकर कि 'शंकर का भजन कर' यों कहा कि क्यों भटकता फिरता है, उसी के गुणगाथ क्यों नहीं गाता, जिसके नेत्रों ने रति के हाथों को बिना कंकण के कर दिया (अर्थात् काम को जलाकर रति को विधवा कर दिया था)।

३—दो०—सीताहरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाय।
जो मैं राम तो कुलसहित, कहहि दसानन आय॥

इसमें रामजी ने सीधे शब्दों में यह न कहकर कि 'मैं रावण को मारूँगा' इस प्रकार कहा जैसा कि दोहे के उत्तरार्ध से प्रगट है।

(२) 'मिस करि कारज साधिए'—जहाँ किसी बहाने से इच्छित कार्य के साधन वर्णन हो, वहाँ दूसरी पर्यायोक्ति होगी। यथा—

---

१ चंद्र, सूर्य। २ कुमुदिनी। ३ कमल। ४ चूड़ी।

१—चौपाई

नाथ ! लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु-संकोच डर प्रगट न कहहीं।
जौ राउर अनुसासन[1] पाऊँ। नगर दिखाय तुरत लै आऊँ॥

यहाँ स्वयं रामजी को जनकपुर देखने की इच्छा थी, पर लक्ष्मण की इच्छा का बहाना करके आज्ञा माँगते हैं।

२—दो०—देखन मिस मृग विहँग-तरु, फिरहि बहोरि-बहोरि[2]।
निरखि-निरखि रघुवीर छवि, बाढ़ै प्रीति न थोरि॥

३—चौपाई

पुर-बालक कहि-कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना।

४—दो०—सब सिसु यहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हर्ष हिय, देखि-देखि दोउ भ्रात॥

५—दो०—पूस-मास सुनि सखिन सन, साईं[3] चलत सवार[4]।
लै कर बीन प्रवीन पिय, गायो राग मलार॥

यहाँ मलार राग गाकर पानी बरसा देने से स्वामी का विदेश-गमन रोक दिया। इसके बहाने से इच्छित कार्य साधन किया।

सूचना—इस अलंकार में मिस, व्याजादि शब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है चाहे कथन करे, चाहे और प्रकार से कहे। कैतवापह्नुति में एक वस्तु के छिपाने के हेतु से मिस या व्याज से दूसरी वस्तु प्रगट की जाती है, और इस अलंकार में किसी विशेष इच्छित कार्य साधन के लिए कोई युक्तियुक्त क्रिया की जाती है, जिसे केवल मिस वा छल कहा जा सकता है।

(३६) व्याजस्तुति (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—देखत तो निंदा लगै समुझे अस्तुति होय।
व्याजस्तुति भूषन सवै, ताहि कहैं कबि लोय॥

---

१ आपकी आज्ञा। २ बार-बार। ३ स्वामी। ४ शीघ्र।

१—दो०—कहा कहौं कहत न बनत, सुरसरि तेरी रीति।
ताके तू मूड़े[1] चढ़ै, जो आवै करि प्रीति॥

इसे देखने में तो गंगा को निंदा सी जान पड़ती है, समझने से यों स्तुति होती है कि जो प्रेम सहित तेरे पास आता है उसे तू महादेव बना देती है और फिर उसकी जटा में बैठ जाती है।

२—दो०—भसम जटा विष अहि-सहित, गंग कियो तैं मोहिं।
भोगी तैं जोगी कियो, कहा कहौं अब तोहिं॥

३—दो०—जमुना तुम अविवेकनी, कौन लियो यह ढंग।
पापिन सों निज बन्धु[2] को, मान करावति भंग॥
—(पद्माकरकृत गंगालहरी से)

४—कवित्त—जोग जप जागै[3] छोड़ि जाहु ना पराग[4] भैया,
मेरी कही आंखिन के आगे जु तो आवैगी।
कहै 'पद्माकर' न ऐहै काम सरसुती,
साँचहू कलिंदी[5] कान करन न पावैगी॥
लैहै छीनि अंबर[6] दिगंबर कै जोराबरी[7],
बैल पै चढ़ाय फेरि सैल पै चढ़ावैगी।
मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की,
सु गंगा गजखाल की खिलत[8] पहिरावैगी॥

५—कवित्त—एक महापातकी स्वगात की दसा बिलोकि,
देत यों उराहनो सु आठहूँ पहर है।
मीच समै तेरो उत आप[9] गयो कंठ इत,
व्यापि गयो कंठ कालकूट[10] सो जहर है॥
आप चढ़ी सीस मोहिं दीन्ही बकसीस,

१ शिर। २ भाई (यम)। ३ यश। ४ प्रयाग। ५ यमुना। ६ वस्त्र। ७ बरबस। ८ पोशाक। ९ बल। १० हलाहल।

औ हजार सोमवारे की लगाई अटहर[१] है।
मोहि करि नंगा अंग-अंगन भुजंगा बाँधो,
एरी मेरी गंगा तेरी अद्‌भुत लहर है॥
६—बरवा—कुजनपाल[२] गुनवर्जित[३], अकुल[४] अनाथ[५]।
कहहु कृपानिधि राउर, कस गुननाथ॥

सूचना—पद्माकर कृत 'गंगालहरी' में इस अलंकार के बहुत उत्तम उदाहरण हैं। विनयपत्रिका में 'बावरो रावरो नाह भवानी' वाला पद इसी अलंकार में कहा गया है।

(दूसरी)

दो०—कीन्हे पर-अस्तुति जहाँ, पर-अस्तुति दरसाय।
ताहू को व्याजस्तुते, कहैं कबिन के राय॥

१—चौपाई

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कौनि भलाई॥
यहाँ दूत की बड़ाई से दूत के मालिक (रामचंद्रजी) की बड़ाई झलकती है।

२—दो०—या बृंदावन-बिपिन में, बड़भागी मम कान।
जिन मुरली की तान सुनि, किय हर्षित अँग आन[६]॥
यहाँ कानों की बड़ाई से मुरली की अत्यंत बड़ाई प्रगट होती है।

(३७) व्याजनिंदा (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—अस्तुति कीन्हेहु जहाँ, निंदा ही दरसाय।
ताहि व्याजनिंदा कहैं, कबि कोबिद दरसाय॥

---

१ जटा। २ बुरे लोगों को पालनेवाले, पृथ्वी के लोगों को पालनेवाले। ३ गुणहीन, निर्गुण। ४ कुलहीन, जिसका कोई कुल न हो। ५ दीन, जिसके ऊपर कोई स्वामी न हो। ६ अन्य।

१—दो०—सेमर तू बड़ भाग है, कहा सराह्यो जाय।
पंछी करि फल आस तोहि, निस-दिन सेवहिं आय॥

२—चौपाई

राम साधु तुम साधु सुजाना। राम मातु तुम भलि पहचाना॥

३—चौपाई

धन्य कीस[1] जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा॥
नाचि कूद करि लोग रिझाई। पति हित करत कर्म निपुनाई॥
४—चौपाई—अहो मुनीस महाभट-मानी।

५—चौपाई

नाककान बिनु भगिनि निहारी। क्षमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी॥
लाजवंत तुम सहज सुभाऊ। निजगुन निजमुख कहसि न काऊ[2]।

(दूसरी)

दो०—औरै की निंदा किए, पर की निंदा होय।
निंदा-व्याज तहौं कहैं, कबि कोविद सब कोय॥

१—दो०—दई[3] निरदई सों भई, 'दास' बड़ी यै भूल।
कमलमुखी के जिन कियो, हिय कठिनई अतूल[4]॥

यहाँ दई की निंदा से कमलमुखी (नायिका) की निंदा झलकती है।

२—दो०—जु हरि हमारो जीव निजु[5] ताहि चल्यो लै दूर।
का सो जो यहि कूर[6] को, धर्‌यो नाम अक्रूर॥

यहाँ अक्रूर की निन्दा से नामकरण करने वाले को भारी निंदा प्रगट होती है।

सूचना—इस अलंकार को अँगरेजी में आयरनी (Irony) और फारसी तथा उर्दू में 'हजो मलेह' कहते हैं।

---

१ बंदर। २ कभी। ३ दैव, ब्रह्मा। ४ अतुल कठिनता। ५ निश्चय। ६ दुष्ट।

(३८) आक्षेप

दो०—कारज के आरंभ ही, जहँ कीजे प्रतिषेध।
आक्षेप तासों कहत, तासु तीन हैं भेद॥
उक्ताक्षेप सु प्रथम है दुतिय निषेधाक्षेप।
तीजा सब कविजन कहैं सुन्दर व्यक्ताक्षेप॥

विवरण—आक्षेप का अर्थ है 'बाधा' वा 'मुमानियत', अतः आक्षेपालंकार से मतलब है ऐसी क्रिया वा ऐसा कथन करना जिससे कार्य में बाधा डालने का तात्पर्य सिद्ध हो। इसके तीन भेद हैं।

(१)—उक्ताक्षेप

दोहा

जहाँ कथित निज बात को, समुझि करिय प्रतिषेध।
उक्ताक्षेप तहाँ कहैं, कबिजन मति-उतषेध[१]॥

जहाँ अपनी ही कही हुई प्रथम बात का निषेध करके दूसरी बात कही जाय।

१—दो०—तुव मुख विमल प्रसन्न अ त, रह्यो कमल-सो फूलि।
नहिं नहिं, पूरन चंद सो कमल कह्यो मैं भूलि।

२—दो०—प्रभु प्रसन्न ह्वै दीजिए, स्वर्ग-धाम को बास।
अथवा याते भल कहा, करहु आपनो दास॥

३—दो०—सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु[२] फेरिए बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि इसमें निज कथित प्रथम बात का निषेध इसलिए किया जाता है कि दोबारा उससे बढ़कर बात कही जाय।

१ श्रेष्ठ बुद्धिवाले। २ नहीं तो।

(२) निषेधाक्षेप

दो०—पहले करै निषेध जो, फिर ठहरावै ताहि।
कहत निषेधाक्षेप तेहि, कबिजन सकल सराहि॥

विवरण—पहले किसी बात से इनकार किया जाय फिर अन्य प्रकार से उसकी स्थापना की जाय। यथा—

१—चौपाई

कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति-अनुरूप रामगुन गाऊँ।

२—चौपाई

दसमुख मैं न बसीठी आयो। अस बिचारि रघुनाथ पठायो।

३—दो०—मैं न मान मेरा चहति कहति यहै उर धारि।

४—कवित्त—सरजा सिवा पर पठावत मुहीम[1] काज,
हजरत हम मरिबे तें नाहिं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते॥

५—सवैया

मोहि तू जानत है कपि हौं यह मैं कपि हौं नहीं, काल हौं तेरो।

(३) व्यक्ताक्षेप

दो०—करिबे की आज्ञा प्रगट, छिप्यो निषेध जु होय।
व्यक्ताक्षेप कहैं तहाँ, कबि कोविद सब कोय॥

१—दो०—राज देन कहि दीन बन, मोहिं न सोच लवलेस।
तुम बिन भरतहिं भूपतिहि, प्रजहिं प्रचंड कलेस॥

२—दो०—सुख सों पीय सिधारिए, पग-पग होय कल्यान।
हौं हूँ जनमौंगी तहाँ, तुव जेहि देस पयान[2]॥

---

१ दूत। २ चढ़ाई।

३—कवित्त— जो हौं कहौं रहिए तो प्रभुता प्रगट होति,
चलन कहौं तो हित-हानि नाहिं सहनो।
भावै सो करहु तो उदास-भाव प्राननाथ,
साथ लै चलहु कैसे लोकलाज बहनो[1]॥
'केसोराय' की सौं[2] तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जौपै नाहिं राज[3] रहनो।
तैसिए सिखाओ सीख तुमही सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो॥

(३६) विरोधाभास

दो०—द्रव्य क्रिया गुन जाति में, भासत जहाँ विरोध।
कहत विरोधाभास तेहि, बुधजनसहित सुबोध॥

विवरण—जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय वह विरोधाभास अलंकार है। ऐसा वर्णन वर्णनीय की विशेषता या उत्कृष्टता जताने के लिये होता है। प्रस्तार करने से इसके दस भेद हो जाते हैं। जैसे—

जाति का विरोध—(१) जाति से (२) गुण से (३) क्रिया से (४) द्रव्य से।

गुण का विरोध—(१) गुण से (२) क्रिया से (३) द्रव्य से।

क्रिया का विरोध—(१) क्रिया से (२) द्रव्य से।

सूचना—कुछ उदाहरण लिख देते हैं। पाठक स्वयं विचार कर लें कि किसका किससे विरोध है।

(सूरसागर से)

१—पद—चरन कमल बंदौं हरि राई[4]।
जाको कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कछु दिखराई।

---

१ लोक लाज की रक्षा। २ शपथ। ३ हे प्रियतम। ४ श्रीकृष्ण।

बहिरो सुनै मूक[1] पुनि बोलै रंक[2] चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार-बार बंदौ तेहि पाई[3]॥

(रामायण से)

२—दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होत विधाता[4] बाम।
धूरि मेरु सम जनक[5] जम, ताहि ब्याल सम दाम[6]॥

३—चौपाई—तृन से कुलिस कुलिस तृन करई।

४—चौपाई

गरल[7] सुधा, रिपु करै मिताई। गोपद[8] सिंधु, अनल[9] सितलाई॥
गरुअ सुमेर रेनु[10] सम ताही। राम-कृपा करि चितवहिं जाही॥

५—दो०—पवन अचल गिरि रेनु पुनि, जलधि नहीं गंभीर।
धरा अतिहिं लघु होति है, कृपादृष्टि रघुबीर॥

६—कवित्त—झांकी रघुबीर को बिलोकि कै अचेतन भे,
चेतन, अचेतनहू चेतन भे देख्यो आज।

७—दो०—सो अज[11] प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद।

८—कवित्त—कुलिस कठोर कूर्म-पीठि ते कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि[12] चढ़ायो है।
'तुलसी' सो राम के सरोजपानि[13] परसत ही,
टूट्यो मानो बारे ते[14] पुरारि[15] ही पढ़ायो है॥

९—सवैया

वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगै अंखियान लुनाई[16]।

१०—दो०—लाल तिहारे दृगन को, कहौ रीति यह कौन।
जासों लागैं पलक[17] दृग, लागैं पलक पलौ न॥

---

१ गूँगा। २ दरिद्र। ३ पैर। ४ ब्रह्मा। ५ पिता। ६ रस्सी। ७ विष। ८ गो खुर से बने गड्ढे में अँटनेवाला जल। ९ अग्नि। १० धूल। ११ अजन्मा। १२ शीघ्रता से। १३ कर-कमल। १४ लड़कपन से। १५ महादेव। १६ लावण्य। १७ क्षणभर के लिये।

११—दो०—तंत्री-नाद[1] कवित्त-रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग॥
१२—दो०—कितो मिठास दयो दई इते सलोने रूप।

सूचना—(१) यह अलंकार अद्भुत रस की कविता के लिये बड़े काम का है। (२) इससे मिलता जुलता विषमालंकार का दूसरा भेद है। दोनों की पहचान भली-भाँति कर लेनी चाहिये। दोनों में भेद यह है कि इस विरोधाभास में जो विरोध कथन किया जाता है केवल आभासमात्र (नितांत झूठा) है। विषमालंकार के दूसरे भेद में जो विरोध कहा जाता है वह सत्य होता है और केवल कार्यकारण के संबंध ही में कहा जाता है। (३) इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में मुहतमिलुल् ज़िद्दैन कहते हैं।

(४०) विभावना

किसी घटना के कारण के संबंध में कोई विलक्षण कल्पना की जाय, उसे 'विभावना' कहते हैं। इसके छः भेद हैं—

(पहली)

दो०—कारण बिनही होत है, कारज कीनो सिद्ध।

१—चौपाई

बिन पद चलै सुनै बिन काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना[2]।
आननरहित[3] सकल रस-भोगी। बिन बानी बकता[4] बड़ जोगी॥

२—पद—केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति[5] पर चित्र रंग नहिं तनु-बिनु लिखा चितेरे।
... ...
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन[6] जे जाहिं।

१ बाजे का शब्द। २ अनेक प्रकार से। ३ मुख के बिना। ४ बोलने वाला। ५ दीवार। ६ पीने के लिये।

३—दो०—सुनत लखन श्रुति नैन बिनु, रसना[1] बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसे बिना निकेत[2] ॥

(दूसरी)

दो०—हेतु अपूरन ते जहाँ कारज पूरन होय।

१—चौपाई

काम कुसुम-धनु-सायक[3] लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हें।

२—कवित्त—सासो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सों,
जीत्यो जंग सरदार सौ हजार असवार को।

३—सवैया

राजकुमार सरोज से हाथन सों वहि संभु-सरासन[4] तोर्यो।

४—सवैया

संकर पायन में लगु रे मन थोर ही बातन सिद्ध महाई।

५—दो०—मंत्र परम लघु जासुबस, विधि हरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुस खर्व[5] ॥

(तीसरी)

दो०—प्रतिबंधक के होत हू होय काज जेहि ठौर।

१—दो०—अति विचित्र गति रावरी, जग जाहिर जसवंत।
तेज छत्रधारीनहू[6], असहन ताप करंत ॥

२—चौपाई

रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहिं अछय[7] जेइ मारा।

३—दो०—नैना नेक न मानहीं, कितो कहौं समुझाय।
ये मुँहजोर तुरंग लौं[8] ऐंचत हू चलि जाँय ॥

---

१ जीभ। २ स्थान। ३ फूल के धनुष बाण ४ धनुष । ५ छोटा
६ राजा (छाता लगाए हुए)। ७ अक्षय कुमार। ८ घोड़े की तरह।

४—दो०—तुव बेनी नागिन रहै, बाँधो गुनन[1] बनाय।
तऊ बाम[2] ब्रजचन्द को, बदाबदी[3] डसि जाय॥

सूचना—तऊ, तौभी, इस अलंकार के वाचक हैं।

(चौथी)

दो०—जाको कारन जो नहीं उपजत तातें तौन।

१—सवैया

चंपक की लतिका तें सुबास कुमालती को पसरै सुखदैन री।
कौल[4] के कोस तें गंध गुलाब को आवत है लखि[5] दायक चैन री॥
'गोकुलनाथ' कुहू[6] निसि में यह राका[7] की रातिको दाह बहैन री।
देखु कपोत के कंठ ते आली कहै कल कोकिल को बर बैन री॥

२—दो०—भयो कंबु[8] तें कंज[9] इक, सोहत सहित बिकास।
देखहु चंपक की लता, देत गुलाब सुवास॥

३—दो०—बन बिहार थाकी तरुनि, खरे थकाये नैन।

४—चौपाई—भयो तात निसिचर-कुल-भूषन।

५—दो०—बीना नाद जु संख सों, होत सुनौ दै ध्यान॥

(पाँचवीं)

दो०—बरनत हेतु विरुद्ध तें, उपजत है जहँ काज।

१—दो०—प्रिय हिय सीतल भी लगै, जरत लंक की झार[10]।

२—सवैया

आनन ऐन[11] सुधा को हहा तहितें इतनो विषबैन बकै तू।

३—दो०—तुव मुख रवि बालातप[12] जु, मरुनायक जसवंत।
अन्य नृपन के कर-कमल, युत-संकोच करंत॥

---

१ डोर। २ टेढ़ा। ३ शर्त बाँधकर, अवश्य। ४ कमल। ५ देखो। ६ अमावस्या। ७ पूर्णिमा। ८ शंख (गर्दन)। ९ कमल (मुख)। १० ज्वाला, लपट। ११ ठीक। १२ बाल सूर्य की धूप।

४—कवित्त—क्यों न उतपात होइ बैरिन के झुंडन में,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं[१]।

(छठी)

दो०—कारज सों जहँ होति है, कारन की उतपत्ति।

१—दो०—तुव कृपान धुव[२] धूम तें, भयो प्रताप-कृसानु[३]।

२—कवित्त—और नदी नदन तें कोकनद[४] होत तेरो,
कर-कोकनद नदी नदो प्रगटत है[५]।

३—दो०—कल कलपद्रुम सों कर्यो, जस-समुद्र उतपन्न।

४—सवैया

हाय उपाय न जाय कियो ब्रज बूड़त है बिनु पावस पानी।
धारन तें अँसुवान की है चखमीनन[६] तें सरिता सरसानी॥

(४१) विशेषोक्ति

दो०—विद्यमान कारन बन्यो, तऊ न फल जहँ होय।
ताहि विसेषाकति कहैं, कवि कोविद सब लोय॥

१—सवैया

हाथी हजारन के बल 'केसव' खैंचि थके पट को डर डारे।
द्रौपदी को दुहसासन पै तिल अंग तऊ उघर्यो न उघारे॥

२—दो०—त्यों त्यों प्यासेई रहत ज्यों ज्यों पियत अघाय[७]।
सगुन सलोने रूप की, जु न चख तृषा[८] बुझाय॥

३—दो०—लिखन बैठ जाकी सबिहि[९] गहि गहि गरब गरूर[१०]।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर[११]॥

---

१ काले केशों में बँधे लाल गिरे पड़ते हैं। २ निश्चय। ३ अग्नि। ४ कमल। ५ दान के बल से। ६ नेत्र रूपी मछली। ७ छककर। ८ नेत्र की प्यास (दर्शन की इच्छा)। ९ छबि चित्र। १० अभिमान। ११ मूर्ख।

८—सवैया

दौलति इंद्र समान बढ़ो पै खुमान को नेक गुमान न आयो।

५—सो०—लग न उर उपदेश, जदपि कह्यो सिव बार बहु।

(४२) असंभव

दो०—अनहोनी सी बात कछु होय असंभव सोय।

१—सवैया

जोग सिखावन को हमको बहुर्यो तुमसे उठि धावन[1] ऐहैं।
ऊधो नहीं हम जानती तीं मनमोहन कूबरी हाथ बिकैहैं॥

२—कवित्त—ऐसो कौन जानत हो ए हो कवि 'रघुनाथ',
बूड़ि घरी द्वै लौं[2] तरे पानी ही के लरिहैं।
सीस पर चढ़ि आपु तालो दै करत नृत्य,
नाथ ब्याल-काली[3] कालीदह ते निकरिहैं॥

३—दो—को जानै था गोपसुत, गिर धारैगो आज।

४—दो०—यह को जानत हो जु कपि, जैहैं लंका जारि॥

५—कवित्त—जासो बैर करि भूप बचै न दिगंत ताके,
दंत तोरि तखत तरे ते[4] आयो सरजा[5]।

सूचना—'कौन जानता था कि' या इसी भाव के अन्य शब्द इस अलंकार के सूचक हैं।

(४३) असंगति

दो०—कारन कारज को जहाँ लखो विरोधाभास।
ताहि असंगति जानिये कबि जन सहित हुलास॥

(असंगति अलंकार के तीन भेद हैं।)

---

१ दूत। २ तक। ३ कालीय नाग। ४ पास से। ५ शिवाजी।

(प्रथम)

दो०—कारन कहुँ कारज कहूँ, देस काल को बीच।
है असंगत प्रथम तेहि, कबिजन बुद्धि-अनीच॥

१—सवैया

सीतहि लै दसकंध गयो पै गयो है विचारो समुन्दर बांध्यो।

२—दो०—और करै अपराध कोउ, और पाव भल-भोग।
अति विचित्र भगवंत-गति, को जग जानै जोग॥

३—दो०—कोयल मदमाती भई, झूमत अम्बा-मौर[1]।

४—कवित्त—महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जाति नै करि गनीम[2] अतिबल की।
'भूषन' चलत सरजा की सैन भूमि पर।
छाती दरकति है खरी अखिल खल की॥
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कटि नाक सिगरेई दिल्ली-दल की।
सूरति जराई कियो दाहु पातसाहु उर,
स्याही[3] जाय सब पातसाही मुख झलकी॥

(दूसरी)

दो०—और ठौर करनीय जो, करै और ही ठौर।
द्वितिय असंगति कहैं तेहि, जे कविता सिर मौर॥

१—दो०—पहिर कंठ बिच किंकिनी[4], कस्यो कमर बिच हार।

२—सवैया

पायन की सुधि भूलि गई अकुलाय महाउर आंखिन दीन्हीं।

---

१ आम की बौर। २ शत्रु की गरदन झुक जाती है। ३ कालिमा।
४ करधनी।

(तीसरी)

दो०—का। कियो चाहत प्रथम. तासों करै बिरुद्ध।
ताहि असंगति तीसरी, बरनत जे मति सुद्ध॥

१—चौपाई

राज देन कहँ सुभ दिन साधा[1]। कह्यो जान बन केहि अपराधा॥

२—दो०—प्रगट भये घनस्याम[2] तुम, जग प्रतिपालन-हेत।
नाहक बिथा बढ़ाय के, प्रेमिन के जिय लेत॥

३—दो०—प्रगट भयो है जलद तू, जग को जीवन[3] दान।
मेरो जीवन लेत है. कौन बैर मन आन॥

४—दो०—मोह मिटावन हेत प्रभु, लीन्हों तुम अवतार।
उलटो मोहन-रूप धरि, मोहीं सब ब्रजनार॥

५—सवैया

काज महाऋतुराज बली के यहैं बनि आवत है लखते ही।
जात कह्यो न कहा कहिए 'रघुनाथ' कहैं रसना एक एही[4]॥
साल रसाल तमालहिं आदि दै जेतिक वृत्त लता बन जेही।
नौ दल को वहि को प्रगट्यो पर कै पतझार दियो पहिले ही॥

(४४) विषम

अनमिल वस्तुओं वा घटनाओं के वर्णन में विषम अलंकार होता है।

(प्रथम)

अनमिल अनमिल बस्तु को, बरनन है जेहि ठौर।
प्रथम बिषम तेहि कहत हैं, सकल सुकवि सिरमौर॥

१ ठीक किया। २ बादल (श्रीकृष्ण)। ३ जल। ४ यही

१—दो०—मैं केवा[1] बिनती करी, मान ठानि दुःख दैन।
कहाँ मधुर मृदु मुख कहाँ, कठिन काठ[2] से बैन॥

२—सवैया

जोग कहाँ मुनि लोगन जोग कहाँ अबला मति है चपला सी।
स्याम कहाँ अभिराम सुरूप कुरूप कहाँ वह कूबरी दासी॥
३—चौपाई—कहँ कुंभज[3] कहँ सिंधु अपारा।

४—सवैया

राजकुमार के कंज से पानि[4] कहाँ कहँ संभुसरासन वज्र सो।
५—दो०—कहाँ सीप मुक्ता कहाँ, कहाँ कमल कहँ पंक।
कहँ कस्तूरी मृग कहाँ, बिधि बुधि है सकलंक॥
६—दो०—को कहि सकै बड़ेन को, लखै बड़ी हू भूल।
दीन्हें दई[5] गुलाब के, इन डारन ये फूल॥

७—चौपाई

जेइ बिधि तुमहिं रूप[6] अस दीन्हा। तेइ जड़ वर[7] बाउर[8] कस कीन्हा॥
८—हरि०—कस कीन्ह वर बौराह जेइ बिधि तुमहिं सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहि[9] सो बरबस बबूरहिं लागई॥

९—सवैया

खारो कियो है पयोनिधि[10] को पयकारो[11] कियो पिकसो[12] अनुमानो
कंटक पेड़ गुलाब किये अरु चातक बारहु मास तृषानो[13]॥
पंक को अंक[14] कियो है मयंक में आग कियो है चकोर को खानो।
'सागर मित' सबै परखो[15] कर हंसपती[16] हर-वाहन[17] जानो॥

---

१ कितनी ही बार। २ काठ से कड़े। ३ अगस्त्य। ४ हाथ। ५ दैव, ब्रह्मा। ६ सौंदर्य। ७ दूल्हा। ८ पागल। ९ कल्प वृक्ष। १० समुद्र। ११ जल। १२ कोयल। १३ प्यासा। १४ चिन्ह। १५ देख लिया। १६ ब्रह्मा। १७ बैल।

(दूसरी)

दो०—कारन औरै रूप जो, कारज औरै रूप।
विषम अलंकृत दूसरो, बरनत हैं कविभूप॥

१—दो०—खड्ग-असित[1] जसवंत को, प्रगट कर्यो जस सेत।

२—बरवै—स्याम गौर दोउ मूरति, लछिमन-राम।
इनते भइ सित[2] कीरति, अति अभिराम॥

३—दो०—उपजे जदपि पुलस्ति-कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर[3]-साप बस, भये सकल अघरूप[4]॥

४—दो०—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम[5] रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥

५—सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं वैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेद लखे गुनबा[6]-नृप सारे॥

६—कवित्त—'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही[7] के उड़ाय गये जियरे[8]।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याम मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे॥

सूचना—विषमालंकार के इन भेदों को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत तज़ाद' कह सकते हैं।

(तीसरी)

दो०—और भलो उद्यम कियो होत बुरो फल आय।
ताहि विषम तीजो कहत बुद्धिवंत कविराय।

---

१ काला। २ सफेद। ३ ब्राह्मण। ४ काले। ५ काला, श्रीकृष्ण।
६ वश। ७ बादशाहत। ८ हृदय।

१—चौपाई

सीतलसिख[1] दाहक भइ कैसे। चकइहिं सरद चाँदनी जैसे॥

२—चौ०—भलो कहत दुख रउरेहु लागा।

३—दो०—सोने मुख दीठि न लगै, यों कहि दीन्हों ईठ[2]।
दुनी ह्वै लागन लगी, दिये दिठौना दीठ[3]॥

४—कवित्त—कोप बस ह्वै कै हिरनाकुस उदित[4],
प्रह्लादै मारिबे को भया आपु ही हनों गयो[5]।

५—कवित्त—जारिबे को चाहत लंगूर जातुधान देखो,
बीर हनुमान जू जराय दई लंका को।

६—कवित्त—जीतिबे को आये भृगुनंद रघुनंदन को,
जीते गये आपु भये रीते[6] वीरताई सों॥

सूचना—कई एक कवियों ने 'विषम' अलकार के ६ भेद लिखे हैं। परन्तु विचार करने से ज्ञान पड़ता है कि आगे के तीन भेद इसी तीसरे भेद के अन्तर्गत आ जाते हैं।

(४५) सम

यह विषमालंकार का ठीक विरोधी है, इसके भी तीन भेद हैं,

(पहिला)

दो०—बरनत जहाँ बिसुद्ध मति यथा योग्य को संग।
प्रथम समालंकार तेहि भाषत बुद्धि उतंग॥

१—सो०—जेहि विधि रच्यों गोपाल, तेइ ठकुराइन[7] राधिका।
लखि चख होत निहाल[8], समसरि जुगुल किसोर को॥

२—दो०—चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ए वृषभानुजा[9] वे हलधर के वीर[10]॥

---

१ शिखा। २ इष्ट, सखी। ३ दृष्ट। ४ उद्यत। ५ मार गया। ६ रहित। ७ स्वामिनी। ८ आनंदित। ९ वृषभानु की पुत्री, (वृषभ=बैल+अनुजा=बहन, गाय)। १० बलदेव के भाई, (हलधर=बैल, बीर=भाई)।

३—चौपाई

जेइ बिरचि[1] रचि सीय सँवारी। तेइ स्यामल वर रच्यो बिचारी॥

४—कवित्त—देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान वेद,
बूझे हैं सुजान साधु नरनारि पारखी[2]।
ऐसे सम समधी समाज न विराजमान,
राम से न वर दुलही न सीय सारखी॥

५—चौपाई

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक[3] बिबिध होहिं मग जाता॥

६—दो०—कुबजा को कूबर मधुप, अहै त्रिभंगिहि[4] जोग।

(विनय पत्रिका से)

७—पद—देव! तू दयाल, दीन हौं तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी[5] तू पाप-पुंजहारी॥ १॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत[6] नहिं आरतिहर[7] तोसो॥ २॥
ब्रह्म तू, हौं, जीव हौं, तू ठाकुर[8], हौं चेरो[9]।
... ... ॥ ३॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों 'तुलसी' कृपालु चरन-सरन पावै॥ ४॥

८—दो०—मो सम दीन न दीन हितु, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिषम भव-भीर[10]॥

(दूसरा)

दो०—कारन के सम बरनिये कारज को जेहि ठौर।
दुवि सरिस गुन रूप तहँ, बरनत हैं 'सम' और॥

---

१ ब्रह्मा। २ परखने वाले। ३ खेल। ४ तीन जगह (ग्रीवा, कमर, पैर) से टेढ़े, श्रीकृष्ण। ५ पापी। ६ दुःखी। ७ दुःख हरने वाला। ८ स्वामी। ९ दास। १० सांसारिक पीड़ा।

१—दो०—सिय जु दुसह दुख सहि लियो सुता[1] भूमि की होय।
२—सो०—जग जीवन को दाद[2], उदय होत ही तम हरै।
क्षीर-सिंधु को नंद[3], क्यों न उजेरी होय ससि॥
३—दो०—मधुप ! बालपन ही पियो, दूध पूतना केर ।
ताही ते दासी रुची, यामें कछू न फेर॥

(तीसरा)

दो०—ताकी सिद्धि अनिष्ट बिनु, उद्यम जाके अर्थ।
ताको मम तीजो कहैं, जिनकी बुद्धि समर्थ॥

१—चौपाई

दुंदुभि अस्थि[4] ताल[5] दिखराये। बिनु प्रयास[6] रघुबीर ढहाये॥

सुग्रीव ने राम की परीक्षा लेनी चाही। राम ने तुरंत परीक्षा दी और परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

२—दो०—हरि ढूंढ़न ब्रज में गई, पाये गिरधर लाल।
३—चौ०—छुवतहि टूट पिनाक[7] पुराना।
४—चौ०—छुयत टूट रघुपतिहिं न दोषू।
५—दो०—अति उतंग[8] गिरि पादप[9] लीलहिं[10] लेहिं उठाय।
आनि[11] देहिं नल नीलहिं, रचहिं ते सेतु[11] बनाय॥

६—चौपाई

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक[12] इव नलनील सो लेहीं॥

७—चौपाई

तुरत बैद्य तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

(४६) विचित्र

दो०—जहाँ करत उद्यम कछू, फल चाहत बिपरीत।
बरनत तहाँ विचित्र कवि, जे कविता के मीत॥

---

१ पुत्री। २ दुःख। ३ पुत्र। ४ हड्डी। ५ ताड़। ६ प्रयत्न। ७ शिव का धनुष। ८ ऊँचा। ९ वृक्ष। १० खेल में। ११ लाकर। १२ फल।

१—दो०—जीवन हित प्रानहिं तजत, नवत उँचाई हेत।
सुख कारन दुख संग्रहैं, बहुधा पुरुष सचेत॥
२—दो०—क्यों नहिं गंगा को सुमिरि, दरस परस सुख लेत।
जाके तट में मरत नर, अमर होन के हेत॥
३—कवित्त—करिबे को उज्वल सुधा सो अभिराम देखो,
मन ब्रजवाम रंगती है स्यामरंग[1] में।
४—सवैया
भवसागर के तरिबे के लिये बहु डूबत तीरथ नीर मँझारे।
५—दो०—इक सौं इक निजु पुरवजु, तृप्त करन के हेत।
अनछाने जव चून[2] को, पिंड गया में देत॥
६—दो०—अमर होन हित समर महँ जूझत पुरुष पुनीत॥

(४७) अधिक

इस अलंकार में आधार और आधेय का उत्कर्ष कहा जाता है। इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०—जहाँ बड़े आधार ते, अधिक होय आधेय।

अर्थात् बड़े आधार से भी आधेय का बड़ा कहना। जैसे:—

१—दो—जामे भारो भुवन सब, गँवई से दरसात।
तेहि अखंड ब्रह्मंड में, तेरो जस न अमात[3]॥
२—सवैया
सातो समुद्र धरी वसुधा यह सातो गिरीस धरे सब ओरे।
सात हो दीप सबै दरम्यान में होहिंगे खंड किते तेहि ठोरे।
'दास' चतुर्दस लोक प्रकासित हैं ब्रहमांड इकीसहि जोरे।
एते हो में भजि जैहै कहाँ खल श्रीरघुनाथ सों बैर बिथोरे[4]।

---

१ कालारंग, श्रीकृष्ण का प्रेम। २ चूर्ण, आटा। ३ अँटना। ४ बैर करके।

इसमें व्यंग से यह बात निकलती है कि श्रीरामजी का अमल दखल इससे भी अधिक स्थानों में है, अर्थात् इतने आधार से बहुत बड़ा है।

(दूसरा)

दो०—जहँ अति लघु आधार महँ, धरै बड़ो आधेय।

अर्थात् बड़े आधेय का छोटे आधार में रखना। जैसे—

१—दो०—जो यदुपति के उदर में, सिगरो बसत जहान।
सुख सों राखति ताहि तू, हियरे हार-समान॥

२—दो०—बिस्वामित्र मुनीस की, महिमा अपरम्पार।
करतलगत आमलक[1] सम, जिनको सब संसार॥

३—चौपाई

ब्रह्मांड-निकाया[2] निर्मित माया रोम-रोम प्रति बेद कहै।
मम उदर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर थिर न रहै॥

४—दो०—व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत-बिनोद।
सो अज प्रेम-भगति-बस, कौसल्या की गोद॥

५—दो०—तुम जो गिरिवर कर धर्‌यो, सो है हलको बात।
गिरि-समेत मैं उर धर्‌यो, नेको ना गरुआत॥

(४८) अल्प

दो०—अति छोटे आधेय ते, अति छोटो आधार।
ताहि अल्प भूसन कहैं, जे सुबुद्धि-आगार॥

अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म आधेय की अपेक्षा आधार का अति सूक्ष्म वर्णन करना इस अलंकार का मुख्य उद्देश्य है। यथा:—

१—बरवा—अब जीवन की हे कपि, आस न मोहिं।
कन गुरिया की मुंदरी, कँगना होहिं॥

---

१ आँवला। २ समूह

जानकीजी हनुमानजी से कहती हैं कि छिगुनी का छल्ला (अति छोटा छल्ला) हाथ में कंकण की तरह होता है (अर्थात् इतनी दुबली हो गई हूँ)।

यहाँ छल्ला आधेय और कर आधार है। अति छोटे आधेय से आधार को और भी सूक्ष्म कहा गया है।

२—दो०—रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि-कोटि ब्रह्मांड।

३—दो०—भुजा भई अति दूबरी, कंकन कीन्हीं छाप॥

(मुरारिदान की सम्मति)

चौपाई—अल्प होय जेहि ठाँ मळपाई।
अल्प अलंकृत सो सुखदाई॥

इस परिभाषा से आधार और आधेय का झगड़ा मिट जाता है। हमारी भी सम्मति है कि इस अलंकार के लिये आधार और आधेय का झगड़ा न लगना चाहिये। मनोरंजक अल्पता के वर्णन में इसे स्वच्छंद विचरने देना चाहिये।

(४६) अन्योन्य

दो०—जो जासों जैसो करै, सो तासों तस कीन।
अन्योन्यालंकार तेहि, भाषैं सब मतिपीन॥

१—चौपाई

मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन अगोचर[1] मन अनुभवहीं।

२—दो०—सर की सोभा हंस है, राजहंस को ताल।

३—सवैया

वे उनको अपराध करैं नहिं, वे उनको न उदास करै चित।
वे मित[2] राखे रहैं उनकी 'रघुनाथ' वे राखे रहैं उनकी मित॥

---

१ जो वचनों द्वारा न कहा जा सके, अनिर्वचनीय। २ प्रेम-भाव की मर्यादा।

प्रेम पगे दोउ आपुस में यहि भाँति बराबर क्यों न बढ़े हित।
वे सुख देत रहैं उनको नित वे सुख देत रहें उनको नित ॥
४—दो०—सब्द सु सोभा अर्थ को देत बढ़ाय निहार।
त्योंही सोभा सब्द को बढ़वत अर्थ 'मुरार' ॥
५—चौ०—ससि सों निसा निसा सों ससि भल।
६—चौ०—कवि सों सभा सभा सों कविवर।
७—दो०—रामचन्द्र बिनु सिय दुखी, सिय बिनु उत रघुराय।
८—सो०—मनमोहन तन घन, घन सु रमनि-राधिका-मोर।
श्रीराधा-मुखचंद्र को गोकुलचंद[1] चकोर ॥

(५०) विशेष

इस अलंकार के तीन भेद हैं।

(पहला)

दो०—जहँ जाहिर आधार बिनु, है आधेय सुरंग।

१—दो०—सुभदाता, सूरो, सुकवि संत करै आचार।
बिना देहहू 'दास' ये जीवित हैं संसार।
२—दो०—बन्दनीय केहिके नहीं, ये कविंद मतिमान।
स्वरग गयेहू काव्यरस, जिनको जगत[1] जहान।

३—सवैया

सैनप[2] केते लपेटि लँगूर सों दीन्हे उड़ाय फटे फहरात हैं।
सागर व्योम के बीच लटे[3] उलटे दल ऊपर ते मँडरात हैं ॥
४—दो०—बिन वारिद बिजुरी बिना, वारि लसत जुग मीन।
बिधु ऊपर तम-तोम[4] है निरखो रीति नवीन ॥
५—कवित्त—मार के करैया अरि अमरपुरै[5] गे तऊ,
अजौं मारु-मारु सोर होत है समर में।

---

१ जगमगाता है। २ सेनापति। ३ लटके हुए। ४ समूह। ५ स्वर्ग।

(दूसरा)

दो०—थोरे ही आरंभ में, लाभ अलभ्य बखान।

१—दो०—पाइ चुके फल चारहू करि गंगाजल पान।

२—सवैया

आज की या छबि देखि सखी अब देखिबे को न रह्यो कछु बाकी।

३—चौपाई

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहिं राम पिरीते[1]।

(तीसरा)

दो०—वस्तु एक जहँ युक्ति तें, बहु थल बरनी जाय।

१—दो०—घर बाहर अध[2] ऊरध्यो सब ठां राम लखाय।

२—दो०—सोवत जागत दिसि बिदिसि, देखि परें घनस्याम।

कसम हृदय आठहु पहर, कृष्ण करें बिश्राम॥

३—चौपाई

सती दीख कौतुक[3] मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता।

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर भेषा।

जहँ चितवै तहँ प्रभु आसीना[4]। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना।

४—चौपाई

सीयराम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

५—दो०—निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सों करें बिरोध।

६—दो०—गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रमेस रास।

लहाछेह[5] अति गतिन की; सबन लखे निज पास॥

७—दो०—जल में थल में गगन में, जड़ चेतन में 'दास'।

चर अचरन में एक है, परमातमा-प्रकास॥

---

१ प्यारे। २ नीचे। ३ तमाशा। ४ बिराजमान। ५ एक प्रकार का नाच

सूचना—यह अलंकार पर्याय अलंकार से मिलता-जुलता है। भेद यह है कि इसमें एक वस्तु का 'एक ही समय' में 'बहु थलों' में होना कहा जाता है और पर्याय में एक ही वस्तु का बहु थलों में क्रमशः आश्रय लेना वर्णन किया जाता है।

(५१) व्याघात

व्याघात=धक्का—इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०—एकहि वस्तु जहाँ कछु, करै सुकाज विरुद्ध।
प्रथम तहाँ व्याघात कहि, बरनै कवि मतिसुद्ध॥

१—दो०—जासों काटत जगत के, बंधन दीनदयाल।
ता चितवनि सों नियन के, मन बाँधे गोपाल॥

२—सवैया

जाने उतारन हो तन-ताप[1] सो जारत आजु सुधाधर सोई।

३—सवैया

तू सबको प्रति पालनहार विचारै भतार[2] न मारु हमारे॥

४—दो०—बरसत जु ससि पियूष सो, विष बरसत मोहिं जोय[3]।

५—चौपाई

नाम-प्रभात जान सिव नीके। कालकूट फल दीन अमी[4] के।

(दूसरा)

दो०—एकै कारक साधनो, करिकै क्रिया विरुद्ध।
सो दूजो व्याघात है, बरनत सुकबि सुबुद्ध॥

१—दो०—लोभी धन संचय करै, दारिद[5] को डर मानि।
'दास' यहै डर मानि कै, दान देत है दानि॥

१ गर्मी। २ पति। ३ देखकर। ४ अमृत। ५ गरीबी।

२—दो०—रन ते ह्वै को अमर, भागन कायर कूर।
यहै चाह चित करि, नहिं विचलत साँचे सूर॥
३—दो०—दुख दारिद्र को संक सों, लोभी स्वधन न देत।
दातहु ताही संक सों, सरवस देत सहेत॥
४—चौपाई
मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

(५२) कारणमाला (गुंफ)

(प्रथम)

दो०—कारन ते कारज प्रगटि, कारन ह्वै ह्वै जात।
तेहि कारनमाला कहैं, जे कबिवर बिख्यात॥
१—दो०—विद्या देती विनय को, विनय पात्रता मित्त[1]।
पात्रत्वै[2] धन, धन धरम, धरम देत सुख नित्त॥
२—सो०—होत लोभ ते मोह, मोहहिं ते उपजै गरब।
गरब बढ़ावै कोह[3], कोह कलह, कलह हु व्यथा॥
३—दो०—होत पाप ते जड़ नृपति, जड़ नृप ते अविवेकु।
फौज दुखित अविवेक तें, ता दुख जीति[4] न नेकु॥
४—दो०—विनु सतसंग न हरि-कथा, तेहि विनु मोह न भागु।
मोह गए विनु राम पद, होय न दृढ़ अनुरागु॥
दो०—सतसंग तें वैराग है, ताते मन-संतोष।
संतोषहिं तें ज्ञान है, होत ज्ञान तें मोष[5]॥

(दूसरी)

दो०—कारन को कारन जु सो, कारज ह्वै ह्वै जाय।
कारनमाला ताहु को, कहैं सकल कबिराय॥

१ हे मित्र। २ पात्रता से। ३ क्रोध। ४ विजय। ५ मोक्ष।

१—दो०—राम कृपा तें परमपद, कहत पुरानें लोग[1]।
रामकृपा हैं भक्ति तें, भक्ति भाग्य तें होय।
२—दो०—अन्न-मूल घन[2], घनन को मूल जज्ञ अभिराम।
ताको धन, धन को धरम, धर्ममूल हरिनाम।

३—सवैया

दुख पाप तें, पाप सु दारिद तें, पुनि दारिद तुच्छ किए मन के।

(५३) एकावली (शृंखला)

दो०—किए जँजीरा जोर पद, एकावली प्रमान।

विवरण—जहाँ पदों का ग्रहण और त्याग, पुनः ग्रहण और त्याग के ढंग से सब पद जंजीर की कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े हों वहाँ एकावली समझना चाहिये। कारणमाला में कारण और कार्य का शृंखलाबद्ध सम्बन्ध जैसा दिखलाया गया है वैसा ही इसमें भी होता है, भेद केवल इतना है कि कारण-माला में केवल कारण और कार्य की शृंखला बनाई जाती है, और इसमें सब ही वस्तुओं की। 'कारणमाला' को एकावली कह सकते हैं, पर 'एकावली' को सदा कारणमाला नहीं कह सकते। यथा—

१—दो०—गिरि पै वृष[3], विष पै जु सिव, सिव पै सुरसरि नीर।
२—चौ०—सो नहिं सर जित[4] सर जित नाहीं।
सरसिज नहिं जेहि अलि न लोभाहीं।
अलि नहिं जो कल गुँजन हीना।
गुँजन नहिं जु मन न हरि लीना।

३—सवैया

सोभति सो न सभा जहँ वृद्ध न वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित[5] दीह दया न दिपै जिन माहीं।

---

१ लोग। २ बादल। ३ बैल। ४ जहाँ। ५ साधुओं का सत्संग नहीं किया।

सो न दया जु न धर्म धरै धर्म न सो जहँ दान वृथाहीं।
दान न सो जहँ साँच न 'केसव' साँच न सो जु बसै छल छाहीं।

४—कवित्त—कूरम पै कोल[1] कोलहू पै सेष-कुंडली[2] है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पद्माकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार[3] की।
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर जोति जटाजूट है अपार की।
संभु जटाजूटन पै चंद्र की छुटी है छटा,
चंद्र की छटान पै छटा है गंगधार की।

(५४) सार

दो०—अर्थन को उतकर्ष जहँ, आगे आगे होत।

विवरण—जहाँ वर्णित वस्तुओं का उत्तरोत्तर उत्कर्ष वा अपकर्ष वर्णन किया जाय, उसे 'सार' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'उदार' भी है। जैसे—

(उत्कर्ष)

१—चौपाई

सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहिं भाये।
तिनमहँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी[4]। तिनमहँ निगम[5] नीति अनुसारी
तिन महँ पुनि बिरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु ते अति प्रिय विज्ञानी।
तिनतें मोहिं अति प्रिय निज दासा। जेहि गति[6] मोरि न दूसरि आसा।

२—दो०—मखमल ते कोमल महा, कदलि-गरभ को पात[7]।
ताहू ते कोमल अधिक, राम तुम्हारे गात[8]॥

---

१ शूकर। २ शेषनाग। ३ कैलाश। ४ वेदज्ञ। ५ वेद। ६ आसरा। ७ पत्ता। ८ शरीर।

३—दो०—उन्नत अति गिरि गिरिन तें, हरिपद हैं विख्यात।
तिनहूँ ते ऊँचो घनो, संत हृदय दरसात॥

४—सवैया

हे करतार विनै सुनो 'दास' की, लोकनि को अवतार कर्‌यो जनि।
लोकनि को अवतार कर्‌यो तौ मनुष्यन को तो सवार कर्‌यो जनि।
मानुषहू को सँवार कर्‌यो तौ तिन्हैं विच प्रेम-पसार कर्‌यो जनि।
प्रेम-पसार कर्‌यो तो दयानिधि केहूँ वियोग विचार कर्‌यो जनि।

(अपकर्ष)

१—चौपाई

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन महँ मैं मतिमंद गँवारी॥

२—दो०—सिला कठोरी काठ तें, तातें लोह कठोर।
ताहू तें कीन्हों कठिन, मन तुव नंदकिसोर॥

३ –दो०—तृन ते लघु है तूल[1], तूलहु ते लघु माँगनो।

सूचना—इस अलंकार को अँग्रेजी में 'क्लाईमेक्स' (Climax) कहेंगे।

(५५) क्रम

**दो०—क्रम सों कहि पहले कछू, क्रम ते अर्थ मिलाय।
यों ही और निबाहिये, क्रम भूषन सु कहाय॥**

विवरण—दो चार अथवा और भी अधिक चीजों का जिस क्रम से पहले वर्णन करें उसी क्रम से उनका वर्णन अंत तक निबाहें, उसे 'क्रम' अलंकार कहते हैं। 'यथासंख्या' भी इसी का नाम है। इस अलंकार के मुख्य ३ भेद हैं—

(१) यथाक्रम, (२) भंगक्रम, (३) विपरीत क्रम।

---

१ रुई।

(१) यथाक्रम

१—दो०—रंक, लोह, तरु कीट[1] ए, परसि न पलटैं अंग।
कहा नृपति, पारस कहा, कह चंदन कह भृंग॥

यहाँ पहले चार वस्तुओं का उल्लेख किया—रंक, लोह, तरु और कीट। फिर कहा कि ये चारों सत्संग पाकर अपना रूप न पलट दें तो राजा, पारस, चंदन और भृंग व्यर्थ ही हैं। यहाँ जिस क्रम से पूर्वार्द्ध में चार वस्तुओं के नाम आये हैं उत्तरार्द्ध में ठीक उसी क्रम से उनको पलटानेवाली वस्तुओं के नाम भी आये हैं अर्थात् रंक के लिये नृपति, लोह के लिये पारस, तरु के लिये चंदन और कीट के लिये भृंग। ऐसी ही वर्णन-प्रणाली में 'क्रम' अलंकार माना जाता है।

२—दो०—गिरे अरिन के तकत तुव, रूप रोष विकरार[2]।
तन तें, मन तें, करन तें स्वेद, गरब हथियार॥

अर्थात् तेरा रोषपूर्ण रूप देखकर शत्रुओं के तन से, मन से और हाथों से गिर पड़े—पसीना, गर्व और हथियार अर्थात् तन से पसीना, मन से गर्व और हाथों से हथियार। यहाँ भी यथा-क्रम वर्णन है। इसी प्रकार और भी समझ लेना।

३—चौपाई

बंदौ राम-नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

'राम' शब्द के तीन अक्षर र, अ, म क्रम से अग्नि, सूर्य और चंद्रमा के हेतु कहे गये।

४—कवित्त—शत्रुन को मित्रन को परम पवित्रन को,
घालियत पालियत पूजियत प ते।

५—दो०—अमी हलाहल मद-भरे, सेत स्याम रतनार[3]।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।

---

१ कीड़ा। २ भयंकर। ३ लाल।

६—दो०—भौं चितवनि डोरे बरुनि, असि[1] कटार फँद[2] तीर।
कटत फटत बंधत बिंधत, जिय हिय मन तन बीर॥

७—हरिगीतिका

जनि जल्पना[3] करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल[4]; रसाल[5], पनस[6]-समा।
इक सुमनप्रद, इक सुमनफल, इक फलहिं, केवल लागहीं।
इक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, इक करहिं कहत न वागहीं।

सूचना—इस अलंकार को फारसी, उर्दू तथा अरबी-साहित्य में 'लफोनशर मुरत्तब' कहते हैं। इस अलंकार का एक अति उत्तम उदाहरण फिरदौसी ने अपने शाहनामा में लिखा है। फारसीदां पाठकों के लिये उसे हम यहाँ लिखे देते हैं और हिंदी वालों के समझने के लिए उसका भावानुवाद भी लिख देते हैं। रुस्तम की तारीफ में फिरदौसी लिखता है—

८—शेर

बरोजे नबर्द आं यले अर्जुमंद। बशमशीरो, खंजर, बगुर्जो, कमंद।
बुरीदो, दरीदो, शिकस्तो, बिबस्त। यलांरासरो, सीनओ, पायोदस्त

(भावानुवाद)

(सवैया)

संगर में जब रुस्तम ने अपने विजयी हथियार उठाये।
खड्ग, कटार, गदा, अरु पास[7] के अद्भुत, यों करतब्य दिखाये।
काटि गिरावत फारत तोरत बाँधत चारि खनौ[8] न लगाये।
शत्रुन के सिर और उरस्थल, पाद, भुजा नहिं जायँ गनाये।

---

१ तलवार। २ फंदा, डोर। ३ बकवाद। ४ गुलाब। ५ आम। ६ कटहल। ७ जाल, फंदा। ८ क्षण।

इसमें यथाक्रम वर्णन किया है—चक्र देखो।

खड्ग	कटार	गद	पास
काटि गिरावत	फारत	तोरत	बाँधत
सिर	उरस्थल	पाद	भुजा

'यथाक्रम' का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जो हमें मिला है वह यह है।

६—छप्पय—आनन[1], बेनी, नैन, बैन, पुनि दसन, सुकटि[2] गति।
सिसि, सर्पिन, मृग, पिक, अनार, केहरि[3] करानन-पति[4]॥
पुरन[5], खिभित, जक[6], तरुन, पक, वरपंच[7], पुष्बल।
सरद, पताल, बिछोह, बाग, तरू, गिरि, बनकज्जल॥
निसि, सन्निवेस[8], सावक[9], चुवत[10], बिगस प्रसूनो[11], मद्भरत।
'पृथिराज' भनत वंसो वजत अस वनिता[12] वन-बन फिरत॥

इसमें प्रथम चरण में ७ वस्तुओं के नाम लिये, पुनः दूसरे चरण में यथाक्रम उनके उपमान कहे। तीसरे, चौथे और पाँचवें चरण में यथाक्रम उन्हीं के उपमानों के विशेषण कहते चले गए।

इस अलंकार का इससे बढ़कर हमें कोई उदाहरण नहीं मिला।

१ मुख। २ कमर। ३ शेर। ४ हाथी। ५ पूर्ण। ६ चकपकाई हुई। ७ मंडली में श्रेष्ठ। ८ बिल में घुसते समय की। ९ बच्चा। १० मदमस्त। ११ बच्चा होने के बाद की। १२ स्त्री।

(२) भंगक्रम

जिसमें कथित वस्तुओं का क्रम भंग हो जाय—

१—दो०—सचिव वैद्य गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय-आस।
राज्य धर्म तनु तीन कर, होइ बेगिहीं नास॥

यहाँ सचिव, वैद्य और गुरु के क्रम से राज्य, तनु और धर्म कहना चाहिये था, सो क्रम भंग है।

सूचना—इसको फारसी तथा उर्दू में 'लफ्फोनशर गैर मुरत्तब' कहते हैं।

(३) विपरीत क्रम

जिसमें पूर्वोक्त वस्तुओं के वर्णन का क्रम उलट दिया गया हो जैसे—

१—चौपाई

राज्य नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरहिं समर्पे बिनु सत कर्मा
विद्या बिनु विवेक उपजाये। श्रम फल पढ़े, किये अरु पाये।

यहाँ चार वस्तुएं कही गईं—राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या। फिर कहा गया है कि इन चारों के साथ अगर ये चार गुण न हों तो विद्या का पढ़ना सत्कर्म का करना और धन तथा राज्य का पाना केवल श्रम मात्र है। यहाँ स्पष्ट देख पड़ता है कि जो क्रम वर्ण्य वस्तुओं का है ठीक उसके विपरीत उनके वर्णन का है।

(५६) पर्याय

[प्रथम]

दो०—एक वस्तु क्रम सों जहाँ, आश्रय लेय अनेक।
ताहि प्रथम परयाय कवि, बरनैं सहित विवेक॥

विवरण—एक वस्तु का क्रमशः बहुत स्थानों में आश्रय लेना वर्णन किया जाय वहाँ प्रथम पर्याय जानो। जैसे—

१—चौपाई—मनि मानिक[1] मुकता छवि जैसी।
अहि[2] गिरि गज-सिर सोह न तैसी॥
नृप-किरीट तरुनी-तनु पाई।
लहैं सकल सोभा अधिकाई॥

इसमें माणिकादि का पहला स्थान अहि, गिरि, गजसिर वर्णन किया, फिर नृप-किरीट और तरुणी-तन कहा गया।

२—दो०—अँसुवन ते वह नद कियो, नद ते कियो समुद्र।
अब सिगरो जग जलमई, करनि चहति वनि रुद्र[3]॥

यहाँ आँसुओं का आश्रय पहले नद, पुनः समुद्र, पुनः सारा जग कहा गया है।

३—दो०—हालाहल! तोहि नित नये, किन बतराये ऐन[4]।
अंबुधि[5] हिय पुनि संभुगर, अब निवसत खलबैन॥

४—दो०—जोति रही औरंग में, सबै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही, सिव सरजा कर माँड़ि॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि पर्याय अलंकार में एक आश्रय के त्याग के अनन्तर दूसरे आश्रय को ग्रहण करना कहा जाता है। जहाँ ऐसा न हो, वरन् प्रथम आश्रय में रहते हुए ही उस वस्तु का अन्य आश्रयों में भी जाना वर्णन किया जाय वहाँ कई एक कवियों ने 'विकास' नामक एक पृथक् ही अलंकार माना है। जैसे—

१—दो०—सर सरिता गिरि सिंधु सों, रुकत नहीं दिन रात।
जस तेरो जसवंत नृप, जग में पसरत जात॥

२—दो०—तुव अधरहिं में हे सखी, हुतो जो परम राग।
अब तुव हिय में भी वहै, लख्यो परत बड़ भाग॥

---

१ लाल रत्न। २ सर्प। ३ महादेव। ४ घर। ५ समुद्र।

३—सवैया

गोपिन के अंसुवान के नीर, पनारे[1] भये फिर ह्वै गये नारे।
नारे भये नदियाँ बढ़िकै नदियाँ नद ह्वै गईं काट करारे[2]॥
बेगि चलो तो चलो ब्रज में कवि 'तोष' कहैं ब्रजराज हमारे।
वे नद चाहत सिंधु भये पुनि सिंधु ते ह्वैहैं जलाहल[3] सारे॥

सूचना—विकास के विपरीत भाव में कोई-कोई कवि 'संकोच' अलंकार भी कहते हैं :—

१—दो०—तेज-तरनि[4] जसवंत तुव होत जगत-विख्यात।
कुवलय[5] इव अरि-कुवलय[6] जु, सनै सनै सकुचात॥

इस दोहे में पूर्वार्द्ध में 'विकास' अलंकार और उत्तरार्द्ध में 'संकोच' है।

(दूसरा पर्याय)

दो०—क्रम ही तें जहँ एक में, आवैं वस्तु अनेक।
सो दूजो पर्याय है, बरनत कवि सविवेक॥

१—दो०—हिय में अविवेक हो छाया तहाँ विवेक।

यहाँ एक ही हृदय में पहले अविवेक का रहना पुनः विवेक का आना कहा गया।

२—दो०—नृपिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय॥

३—चौ०—जनक लह्यो सुख सोच बिहाई।

यहाँ जनक के हृदय में पहले सोच था, पुनः सुख आया। आधार एक है, आश्रय लेनेवाले भिन्न-भिन्न हैं।

४—दो०—हुतो देह में लरिकई, पुनि तरुनाई जोर।
बिरधाई[7] आई अजहुँ, भजिले नंदकिसोर॥

---

१ छोटी नाली। २ किनारा। ३ जलमय। ४ सूर्य। ५ कुमुदिनी। ६ पृथ्वी-मंडल। ७ बुढ़ापा।

(५७) परिवृत्ति

दो०—जहाँ अधिक अरु न्यून को, लीबो दीबो होय ।

विवरण—परिवृत्ति का अर्थ है 'अदला-बदला' वा लेना-देना । इसके तीन भेद हो सकते हैं—(१) बहुत देकर थोड़ा लेना, (२) थोड़ा देकर बहुत लेना, (३) सम देकर सम लेना ।

जिसमें से तीसरे में हमारे मत से कोई अलंकारता नहीं आती इससे हम केवल प्रथम दो के ही उदाहरण लिखेंगे ।

(१) बहुत देकर थोड़ा लेना

१—दो०—कासों कहिये आपनो, यह अजान जदुराय ।
मन-मानिक दीन्हों तुम्हें, लीन्हीं बिरह बलाय[1] ॥

२—चौपाई

तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हीं माया ।

३—दो०—तन मन धन दै प्रेम सों, लाये रोग बिसाहि[2] ।

४—सवैया

तुम कौन धौं पाटी पढ़े[3] हो लला, मन[4] लेत पै देत छटाँक नहीं ।

(२) थोड़ा देकर बहुत लेना

१—कवित्त—चारों फल देत चार चाउर चढ़ाये ते ।

२—पद—सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत[5] थोरे ।
दिये सबै जह लौं जगत सुख गज रथ घोरे ॥

३—दो०—इक धतूर फल दै सिवहिं, लिये अमोघ[6] फल चारि ।

४—कवित्त—तीन मूठी भर आज देकर अनाज आपु,
लीन्हीं यदुराय जू सों संपति धनेस[7] की ।

---

१ क्लेश । २ खरीदकर । ३ पाटी पढ़ना = सीखना । ४ चित्त, एक मन तौल । ५ अछत, चावल । ६ उत्तम । ७ कुबेर ।

५—कवित्त—देखा त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ
पैये फल चारि एक फूल दै धतूरे को।

सूचना—इस अलंकार को 'विनिमय' भी कहते हैं।

(५८) परिसंख्या

दो०—करि निषेध थल एक तें, रखिए औरहिं ठौर।
वस्तु धर्म, गुन, जाति जहँ, परिसंख्या तेहि ठौर॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु, धर्म, गुण वा जाति को अन्य सब स्थानों से (जो उसके उपयुक्त माने जाते हों) वर्जन करके किसी एक विशेष स्थान पर ठहरावें वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है। 'परिसंख्या' शब्द का अर्थ यहाँ पर 'अपने स्थान से हटाई गई और दूसरे स्थान पर बैठाई हुई वस्तु की गणना' है।

१—दो०—नृपति राम के राज में, हैं न सूल दुखमूल।
लखियत चित्रन में लिखो, संकर के कर सूल॥

यहाँ राज्य भर में 'शूल' (कष्ट) का वर्जन करके केवल चित्र में शंकर के हाथ में (त्रिशूल) को स्थापित किया है। यही अलंकारता है।

२—दो०—दंड जतिन कर भेद जहँ, नर्तक-नृत्य-समाज।
जीतौ मनसिज मुनिय अस, रामचद्र के राज॥

यहाँ यह कहा गया कि रामराज्य में दंड (सजा) कहीं नहीं है केवल नाममात्र को दंड (लाठी) संन्यासियों के हाथ में है। भेद (भेदनीति) कहीं नहीं है, केवल नृत्यक-समाज में सुर, ताल, राग इत्यादि का भेद (बिलगाव) देखा जाता है, और कोई किसी को जीतने का उद्योग नहीं करता, केवल काम को जीतने की इच्छा करते हैं। इसी प्रकार और भी समझना।

३—कवित्त—साम[1] को तो काम मुनिवर के मुखन माहिं,
और ठौर में तो तासों रंचक न काज है।
दाम[2] जल भरिबे के धाम ही में देखियत,
दंड को निवास एक कर-यतिराज है॥
'रतनेस' भेद एक सुर के मिलाइबे में,
देखा जहाँ होत गान नृत्य को समाज है।
साम दाम दंड भेद अनत न देखे कहूँ,
ऐसो दुखदाई रघुराज जू को राज है॥

४—दो॰—केसन ही में कुटिलता[3] संचारिन[4] में संक[5]।
लखो राम के राज में इक, ससि माहिं कलंक॥

५—रोला—मूलन[6] ही की जहाँ अधोगति[7] 'केसव' गाइय।
होम-हुतासन-धूम[8] नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति[9] दुर्गन ही, जो कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल[10] को अभिलाष प्रगट कविकुल के जी में॥
(रामचंद्रिका से)

६—कवित्त—सत्रु को उथापि पीछे थापिबे में व्रत-भंग,
दीखत युधिष्ठिर में, गिद्धन में कंकता[11]।
कैद[12] लोक-कुल की त्यों बेद-मरजाद ही में,
स्वैरगति[13] मारुत[14] में चातक में रंकता॥
इति ग्रंथ-पूर्नता में संकर लिखैया लिखैं,
चोरी इतिहास में होरी में निसंकता।

---

१ सामदेव का गान, शमन। २ डोर, दान। ३ टेढ़ापन। ४ संचारी भाव (रसांतर्गत)। ५ संदेह। ६ जल। ७ बुरी दशा, नीचे जाना। ८ होम की अग्नि का धुआँ। ९ बुरी गति, घुमाव-फिराव से जाने का मार्ग। १० कुच, बेल। ११ दुर्बलता। १२ कारावास, मर्यादा। १३ अनाचार, मन-मानी चाल। १४ वायु।

चंद्रमा में काहू[1] काल-राहू में ससंकता त्यों,
द्वितिया में बंकता[2] है पूनो में कलंकता ॥

७—कवित्त—आये जुरि जाँचिबे को जाचक जहाँ लौं रहे,
एहो 'कवि रघुनाथ' आज तीनों थर में ॥
एते मान दान तिन्हैं भूप दसरथ दीन्हें,
देत न दिखाई कहूँ कोऊ सौज[3] घर में।
बसन[4] के नाते पास वास कौसिला के एक,
भूषन के नाते नथ नाक छला कर में।
घोरे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माहिं,
राम के जनम रहे दान[5] दफतर में ॥

८—दो०—पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।
नित-प्रति पूनो ही रहत, आनन-ओप-उजास ॥

९—कवित्त—अति मतवारे जहाँ दुरदै[7] निहारियत,
तुरँगन ही में चंचलाई-परकीति[8] है।
'भूषन' भनत जहाँ पर[9] लगैं बानन में,
कोक[10] पच्छिनहिं माहि बिछुरन-रीति है।
गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बँधे जहाँ एक सरजा को गुन-प्रीति है।
कंप कदली[11] में वारिबुंद बदली[12] में,
सवराज-अदली[13] के राज में यों राजनीति है ॥

सूचना—कभी-प्रश्नोत्तर रीति से भी यह अलंकार कहा जाता है।

१—दो०—सेव्य कहा ? तट-सुरसरी, कहा ध्येय[14] ? हरि-पाद।
करन उचित कह ? धर्म नित, चित तजि सकल विषाद ॥

---

१ चीखता। २ टेढ़ापन। ३ सामान। ४ वस्त्र। ५ छदाम। ६ उजाला। ७ हाथी। ८ प्रकृति। ९ पंख, शत्रु। १० चक्रवाक। ११ केला। १२ बादलों की घटा। १३ न्यायी। १४ ध्येय, पूज्य।

(५६) विकल्प

दो०—कै तो वह कै यह जहाँ, यह बिकल्प दिखराय।
ताहि बिकल्प बखानहीं, सिगरे कबि-समुदाय॥

विवरण—'या तो ऐसा ही होगा या वैसा ही होगा, इस प्रकार के कथन में 'विकल्प' अलंकार माना जाता है। जैसे—

१—चौपाई

जन्म कोटि लगि रगर[1] हमारी। बरों संभु न तु रहौं कुमारी।

२—दो०—दिसि-दिसि कूजहि[2] कोकिला, फूले रुचिर रसाल[3]।
दूरि करेगा बिरह दुख, कै गोपाल कै काल॥

३—सवैया

कोमल श्रीरघुवीर महा नवनीतहुँ[4] ते नव नूतन माई।
है शिव का धनु बज्र समान ससो रबि ताहि सकै न उठाई॥
तात[5] को बोल अडोल सबै निर्मूलक आनि वनी दुचिताई।
जानकी जान को आस तजी कि वरौं इनको कि मरौं बिष खाई॥

४—सवैया

सोय स्यों[6] राज करौ जुग लौं पथ ते भरते[7] मिलि हौं पलटाऊँ[8]।
जूझि मरौं कि करौं प्रभु कारज तौ अपनो मुख आनि दिखाऊँ॥
(जटायु-वाक्य रावण-प्रति)

५—सवैया

हौं बरुड़ासन राम कौ सेवक रे छलिकै कोउ लेत तिया को।
कै तजु देह कि छाँडु सनेह कि तू रन माँडु[9] कि छाँडु सिया को॥

(६०) समुच्चय

समुच्चय=समूह। यह अलंकार दो प्रकार का है।

---

१ हठ। २ बोलती हैं। ३ आम। ४ मक्खन। ५ पिता। ६ सहित। ७ भरत से। ८ लौटते समय। ९ युद्ध करो।

(प्रथम)

दो०—बहुत भाव इक बारही, तिनको गुंफन होय।
कवि कोबिद सिगरे कहैं, प्रथम समुच्चय सोय॥

१—चौपाई

चकित चितव मुँदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी।

यहाँ आश्चर्य, हर्ष, विषाद और व्याकुलता सब भाव एक ही साथ उदय हुये।

२—दो०—हे हरि तुम विनु राधिका, सेज परी अकुलाति।
तरफराति, चमकति[1] तचति[2], सुसकति[3], सूखी जाति।

३—सवैया

माँगि पठाये सिवा कछु देस वजीर अजानन[4] बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों 'भूषन' जो दिन होय लगे ना।
धाक सों खाक बिजेपुर भो मुख आयगो खान खवास के फेना।
भै-भर को[5] करकी[6] धरकी दरकी दिल एदिलसाह की सेना॥

(द्वितीय)

दो०—एक काज के कारन को, हेतु जु होयँ अनेक।
ताहि समुच्चय दूसरो, बरनैं कवि सविवेक॥

विवरण—किसी कार्य के होने के लिये एक हेतु (काफी तौर से) वर्तमान है ही, पर साथ ही साथ अन्य हेतु भी उपस्थित कहे जायँ। यथा—

१—दो०—गंगा गीता गायत्री, गनपति गरुड़ गोपाल।
प्रातकाल जे नर भजैं, ते न परैं भव-जाल॥

१ चौंकती हैं। २ तकलीफ उठाना। ३ सिसकी भरना ४ मूर्ख। ५ भयभीत। ६ छिन-भिन्न हो गई।

यहाँ गंगा गीतादि उपर्युक्त कारणों में से कोई एक कारण भवजाल से छोड़ाने के लिए काफी है, पर बहुतों का वर्णन किया गया है।

२—दो०—गंगा गीता गुरु गऊ, गोकुल औ गिरिराज।
ये देवतु[1] कलिकाल में, सद्गति[2] दिव्य दराज[3]॥

३—दो०—ग्रह-ग्रहीत पुनि वात वस[4], तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी[5], कहौ कौन उपचार॥

४—दो०—एक मंद मैं मोह-वस, कोस-हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेऊ, दीनबंधु भगवान॥

(६१) समाधि

'समाधि' शब्द का अर्थ है 'शांति-संपन्न'।

दो०—और हेत के मिलन तें, सुगम होय जहँ काज।

विवरण—आकस्मिक कारणांतर के योग से जहाँ कार्य अति सुगमता से हो जाय।

१—चौपाई

पावक जरत देखि हनुमंता। भयो परम लघु रूप तुरंता॥
निवुकि[6] चढ्यो कपि कनक-अटारी। भई सभीत निसाचर नारी॥

दो०—हरि-प्रेरित तेहि अवसर, चले पवन उनचास।

हनुमानजी लंका को जलाना चाहते थे कि अकस्मात् उनचासों पवनों की सहायता से वह काम और भी सुगम हो गया।

२—दो०—मीत-गमन-अवरोध-हित सोचत कछू उपाय।
तब ही आकसमात तें, उठी घटा घहराय॥

३—दो०—रामचंद्र सोचत रहे, रावन-बधन-उपाय।
सूपनखा ताही समय, करी ठठोली आय॥

१ देते हैं। २ सद्गति ३ उत्तम। ४ वायु के वश। ५ शराब। ६ दवा। ७ निकलकर।

(६२) प्रत्यनीक

दो०—सत्रु मित्र के पक्ष सों, किए बैर अरु हेत।
प्रत्यनीक भूषन कहैं, सिगरे सुकबि सचेत॥

विवरण—जहाँ शत्रुपक्षवालों से बैर अथवा मित्रपक्षवालों से प्रेम करना कथन किया जाय। यह अलंकार 'अन्योन्य' अलंकार का संबंधी है। साक्षात् अपने साथ करने वाले के प्रति वैसा ही करना तो 'अन्योन्य' का विषय है, और उसके संबंधी के साथ वैसा ही बरतना इस अलंकार का विषय है। 'प्रत्यनीक' शब्द का अर्थ है, 'सेनापति' वा 'संबंधी-प्रति'।

(शत्रुपक्ष-प्रति)

१—चौपाई

बिष्नु-बदन-सम बिधुहिं[1] बिचारी। अबहूँ राहु दे पीड़ा भारी

विष्णु ने राहु का सिर काटा था। विष्णु के मुख के समान जानकर राहु चंद्रमा को अब तक ग्रसता है।

२—दो०—तेज मंद रवि ने कियो, बस न चल्यो तेहि संग॥
दुहुँन नाम एकै समुझि, जारत दियो पतंग[2]॥

३—सवैया

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
'भूषन' ह्यां गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै॥
हिंदुन के पति सों न बिसाति[3] सतावत हिंदू गरीबन पाय कै।
लीजे कलंक न दिल्ली के बालम[4] आलम[5] आलमगीर[6] कहाय कै॥

४—सवैया

ए तो कहै किन जाय कोऊ अब मोसों कछूक न चूक परी है।
बैर तिहारे हमारे हिये यह कोकिल कूकि कै हूक[7] करी है॥

---

१ चंद्रमा। २ फतींगा, (सूर्य)। ३ बस नहीं चलता। ४ स्वामी। ५ संसार। ६ औरंगजेब, संसार के रक्षक। ७ पीड़ा।

५—हरिगीतिका

नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहर तेऽपि दीन पुकारहीं॥

रावण जब यज्ञ से नहीं उठा तब बंदरों ने स्त्रियों को सताना आरंभ किया।

६—चौपाई

रावन-दूत हमहिं सुनि काना। कपिन बाँधि दीन्हें दुख नाना।

(मित्रपत्त-प्रति)

१—दो०—छैल छबीले लाल को, नवल नेह लहि नारि।
लेति लगाय-लगाय उर, पहिरति धरति उतारि॥

२—चौपाई

हरि-जन[1] जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नैन पुलकावलि[2] ठाढ़ी।

३—सवैया

छैलजू सैल[3] तिहारी सुनै तेहि गैल की धूरि सों नैन धुरंटति[4]।
रावरे अंग को रंग बिचारि तमाल की डार भुजा भरि भेंटति।

४—चौपाई

चलत मोहिं चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति-हृदय लाय सोइ लीन्ही।

(६३) काव्यार्थापत्ति

काव्यार्थापत्ति = काव्य में न कहे हुए अर्थ का आ पड़ना।

दो०—'यहै भयो तो यह कहा', यहि विधि जहां बखान।
कहत काव्य पदसहित तेहि, अर्थापत्ति सुजान॥

१—चौपाई

जितेउ सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर-बानर केहि लेखे माहीं।

---

१ दास। २ रोमांच। ३ सैर। ४ धूल लगाती है।

अर्थात् जब सुरासुर को जीत लिया तब नर-बानरों को जीतना उसी के अंतर्गत आ पड़ा।

२—दो०—सिंह पछारयो बाहु-बल, कहा स्यार को बात।

३—कवित्त—जीत्यो जब चंदहि अमंद मुख तेरो,
तब 'चिंतामनि' मुकुर सरोज सनमाने को।

४—कवित्त—पूरो जिन पूरो पारावार[1] है पहार डारि,
इतनी सुनो हो ताको लंक लेन कितनो।

५—सवैया

पंकज-पात की बात कहा जिन कोमलता लई जीति गुलाब की।

६—कवित्त—'भूषन' भनत गढ़-कोट माल-मुलुक है,
सिवा सों सलाह राखिये तो बात भली है।
जाहि देत दंड[2] सब डरिकै अखंड सोई,
दिल्ली दलमली तो निहारी कहा चली है॥

(६४) काव्यलिंग

काव्य=काव्य का अर्थ। लिंग=पहिचान करने वाला चिह्न (कारण), इसलिये 'काव्यलिंग' शब्द का अर्थ है 'काव्य' में कही हुई बात की ठीक पहचान करानेवाला चिह्न (कारण)।

सूचना—पाठकों को खूब समझ लेना चाहिये कि हेतु (कारण) दो प्रकार का होता है—(१) उत्पादक। (२) सूचक वा ज्ञापक। उत्पादक हेतु वह है जिससे कार्य उत्पन्न हो, जैसे अग्नि धूम का उत्पादक हेतु है और सूचक वा ज्ञापक हेतु वह है जो किसी बात की सूचना दे, जैसे धूम अग्नि ज्ञापक हेतु है। बस इस अलंकार में 'ज्ञापक' हेतु द्वारा ही काम लिया जाता है। उत्पादक हेतु का कार्य-कारण-संबंध 'हेतु' अलंकार में वर्णन किया जायगा। इसलिये इस अलंकार की परिभाषा यों हुई—

१ समुद्र। २ कर।

दो०—ज्ञापक कारन द्वार जहँ, अर्थ-समर्थन होय।
काव्यलिंग ताको कहत, कवि-कोविद सब कोय॥

१—दो०—कनक[1] कनक तें सौगुनो, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है, या पाए बौराय॥

कवि कहता है कि धतूरा की अपेक्षा सोने में सौगुनी मादकता है। इस कथन के समर्थन में ज्ञापक हेतु देता है कि धतूरा खाने से मनुष्य बौराता है और सोना पाने ही से बौरा जाता है। बौरा जाना मादकता का ज्ञापक हेतु है।

२—दो०—धर्महीन प्रभु-पद-विमुख, काल-विवस दससीस?
आये गुन तजि रावनहिं, सुनहु कोसलाधीस॥

अंगद कहते हैं कि राजनीति के चार गुण (दाम, साम, दंड, भेद) रावण को छोड़कर आपके पास चले आए। कारण क्या? सो पूर्वार्द्ध में कथित है।

३—दो०—मेरी भव[2]-बाधा हरो, राधा-नागरि सोय।
जा तन की झाइं परे, स्याम हरित[3]-दुति होय॥

४—दो०—तजि तीरथ हरि-राधिका, तन-दुति करु अनुराग।
जेहि ब्रज-केलि निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग॥

५—दो०—करौ कुवत जग-कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी[4] लाल॥

अपनी कुटिलता न छोड़ने की युक्ति कवि कैसी अच्छी कहता है। हे कृष्ण, तुम त्रिभंगी लाल हो इसलिये सरल (सीधे) हृदय में रहने से तुम्हें कष्ट होगा। इसलिये मैं अपने हृदय को कुटिल (टेढ़ा) ही बनाए रक्खूँगा, चाहे जगत-जन मुझे बुरा (कुवत=कुबात) ही क्यों न कहें।

१ धतूरे का फूल, (सोना)। २ संसार। ३ हरे, प्रसन्न। ४ तीन स्थान (गर्दन, कमर, पैर) से टेढ़े।

सूचना—कोई कोई आचार्य इस 'काव्यलिंग' अलंकार को 'हेतु' अलंकार का प्रकारांतर ही मानते हैं। परन्तु हमारी सम्मति से इसमें हेतु अलंकार की अपेक्षा कुछ विलक्षण ही अलंकारता है।

एक महाशय इस अलंकार की यह परिभाषा लिखते हैं—

'काव्यलिंग जहँ युक्ति सों, अर्थ-समर्थन होय।'

एक दूसरे महाशय यों लिखते हैं—

करै समर्थन युक्ति-बल, काव्यलिंग है सोय।
कहुँ सुभाव कहुँ हेतु कहि, कहुँ प्रमान दै होय॥

तात्पर्य तीनों परिभाषाओं का यही है कि किसी कही हुई बात का समर्थन कुछ हेतु-सूचक बात कहकर करे।

६—दो०—बृथा बिरस[1] बातैं करति, लेति न हरि को नाम।
यह न आचरज है कछू, रसना[2] तेरो नाम।

७—दो०—अब न मोहिं डर बिघन को, करत कौनहू काज।
गननायक गौरी-तनय, भयो सहायक आज॥

८—चौपाई

स्याम-गौर किमि कहौं बखानी। गिरा[3] अनैन नैन बिनु बानी।

यहाँ न कह सकने का कारण बहुत ही अच्छा कहा गया है।

(६५) अर्थांतरन्यास

दो०—साधारन कहिए बचन, कछु बलोकि सुभाय।
ताको पुनि दृढ़ कीजिए, प्रगट बिसेष बनाय।'
कै बिसेष हा दृढ़ करै, साधारन कहि 'दास'।
ताको नाम बखानहीं, कहि अर्थांतरन्यास॥

अर्थांतरन्यास=दूसरे प्रकार का अर्थ रखना।

१ नीरस। २ जीभ, जिसमें रस न हो। ३ वाणी।

विवरण—पहले कोई बात कही जाय, फिर यदि वह बात साधारण हो तो विशेष उदाहरण से और यदि विशेष हो तो साधारण सिद्धांत से उसका समर्थन किया जाय। इन दोनों प्रकार के कथनों में अर्थांतरन्यास अलंकार माना जाता है।

(साधारण की दृढ़ता विशेष से)

१—दो०—कारन ते कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर।
कुलिस[1] अस्थि[2] तें, उपल[3] तें लोह कराल कठोर॥

इसमें दोहे के पूर्वार्द्ध में एक सामान्य बात कहकर उत्तरार्द्ध में विशेष प्रमाण द्वारा वही बात पुष्ट की गई है।

२—दो०—बड़े न हूजे गुनन बिनु, बिरद-बड़ाई पाय।
कनक[4] धतूरे सों कहत, गहनो गढ़ो न जाय॥

३—दो०—अति लघुहू सतसंग तें, लहत उच्च पदवी सु।
कीट सु लहि सँग सुमन को, चढ़त ईस के सीसु॥

४—दो०—जे छोड़त कुल आपनो, ते पावत बहु खेद।
लखहु बंस[5] तजि बाँसुरी, लहै लोह को छेद॥

५—दो०—लागत निज मन-दोष ते, सुंदरहू बिपरीत।
पित्त रोग-बस लखहिं नर, सेत संखहू पीत॥

६—दो०—बरजेहूँ जाचक जुरें, दानवंत[6] की ठौर।
करी[7] करन झारत रहैं, तऊ भ्रमैं तहँ भौंर॥

७—चौपाई

राम-भजन बिनु मिटहिं न कामा। थल-बिहीन तरु कबहूँ कि जामा॥

८—सवैया

छोटे, बड़े पद को पहुँचें जब पावत हैं सतसंग-बिलास को।
पान के साथ है जात लखो छितिनाथ[8] के हाथ लौं पातपलास को॥

१ वज्र। २ हड्डी। ३ पत्थर। ४ सोना, (धतूरे का फूल)। ५ बाँस, कुल। ६ दान देनेवाला, मद से मुक्त। ७ हाथी। ८ राजा।

(विशेष का समर्थन सामान्य से)

१—चौपाई

अस कहि चला विभीषन जबहीं । आयुहीन भे निसिचर तबहीं ।
साधु-अवज्ञा[1] तुरत भवानी[2] । कर कल्यान-अखिल कइ हानी ॥

यहाँ पहले विशेष बात कही कि ज्यों ही विभीषण लंका को त्यागकर रामजी की शरण को चला, त्यों ही सब निशिचर आयुहीन हो गये, फिर साधारण सिद्धांत 'साधुओं की अवज्ञा सर्व कल्याण का विनाश करती है' से उसकी पुष्टि की गई। इसी प्रकार और भी जानो।

२—दो०—हरि-प्रसाद गोकुल बच्यो, का नहिं करहिं महान।

इसमें हरि-प्रताप गोकुल बच्या = यह विशेष बात है।
का नहिं करहिं महान = सामान्य बात से समर्थन है।

३—सवैया

धूरि चढ़ी नभ पौन-प्रसंग ते कीच भई जल-संगत पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि, काँटन संग अनेक व्यथाई ॥
चंदन-संग कुदारु सुगंध है नींब प्रसंग लहै करुवाई।
'दास' जू देखो सही सब ठौरन संगति को गुन-दोष सदाई ॥

इसमें प्रथम के तीन चरणों में विशेष बातें कह कर चौथे चरण में साधारण सिद्धांत द्वारा उन सबकी पुष्टि की गई है।

४—दो०—कैसे फूले देखियत, प्रात कमल के गोत[3] ।
'दास' मित्र-उद्दोत[4] लखि, सबै प्रफुल्लित होत ॥

५—चौपाई

परसुराम पितु-आज्ञा राखी । मारी मातु लोक सब साखी ॥
तनय ययातिहि यौवन दयऊ । पितु-आज्ञा अघ अजस न भयऊ ॥

---

१ अपमान। २ पार्वती। ३ समूह। ४ उदित होना।

६—दो०—अनुचित-उचित-विचार तजि, जे पालहिं पित-बैन।
ते भाजन[1] सुख-सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन[2] ॥

सूचना—(काव्यलिंग और अर्थांतरन्यास का भेद)—काव्यलिंग में कथित बात के समर्थन की जरूरत जान पड़ती है और बिना समर्थन किये पाठक को शंका बनी रहती है। यह समर्थन कारणवत् होता है। अर्थांतरन्यास में समर्थन कारणवत् नहीं वरन् उदाहरणवत् होता है और अगर समर्थन न भी किया जाय तो भी बात पूरी हो जाती है।

(६६) विकस्वर

विकस्वर = विकसनशील।

दो०—कहि विसेष सामान्य पुनि, कहिए, बहुरि विसेष।
ताहि विकस्वर कहत हैं, जिनके बुद्धि असेष ॥

विवरण—पहले कोई विशेष बात कही जाय। उसके समर्थन को साधारण बात कही जाय, पर इतने से भी संतुष्ट न होकर फिर किसी विशेष उदाहरण से उसका समर्थन किया। यथा—

१—दो०—बड़ी बिपत पांडवन पै, खोई हारि सुबाम[3]।
दुख न गनत कछु सतपुरुष, ज्यों हरिचंद, नल राम ॥

यहाँ बड़ी विपति......सुबाम = एक विशेष वर्णन है।
दुख न गनत कछु सतपुरुष = पुनः सामान्य से पुष्टि है।

२—सवैया

वारिधि बाँधि सिलान[4] सों रामजू लै कपि को दल रावन मारो।
कारज ये समरत्थन के चहिए इनको न अकत्थ[5] विचारो ॥

---

१ पात्र। २ इंद्र का घर, स्वर्ग ३ सुंदर स्त्री (द्रोपदी)। ४ पत्थर।
५ अकथनीय।

'गोकुल देत कहे सो सुना सति[१] मानि हिये मति में निरधारो।
गोपन के हित हेत[२] गोपाल लखा सिसुताइहिं[३] में गिरि धारो॥

यहाँ प्रथम चरण में एक विशेष बात गई कही है। दूसरे में सामान्य से उसकी पुष्टि है चौथे चरण में विशेष से पुनः उस सामान्य की पुष्टि की गई है।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि इस अलकार में अंतिम पुष्टीकरण या तो उपमान वाक्य से होता है या अर्थांतरन्यास से। पहले उदाहरण में उपमान से पुष्टीकरण किया गया है और दूसरे में अर्थांतरन्यास से। इसी तरह नीचे के उदाहरणों में भी समझ लो।

३—सवैया

देती स्वकीय तू पी को सुखै निजु केती बगारतहू मति खैली[४]।
'दास' जू ये गुन हैं जिनमें तिनहीं को रहै जग कीरति फैली॥
बात सहीविधि कीन्हो भलो तेहि यों ही भलाइन सों निरमैली।
काटि अँगारन में गहि गेरेहु देत सुबासना चंदन-चैली॥

इसमें प्रथम चरण में विशेष, दूसरे में सामान्य, पुनः चौथे में विशेष है।

४—चौपाई

रत्न-अनंत-जनक[५] हिमपरवत। महिमा घटहि न जो सीतल अत[६]।
डूबत एक दोष गुन-गन में। सौस-कलंक जैसे किरनन में।

इसमें प्रथम दो चरणों में एक विशेष बात कही गई है। तीसरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है। चौथे चरण में पुनः उपमान वाक्य से विशेष कहकर सामान्य की पुष्टि की गई है।

५—सवैया

इंद्र की सामां[७] सुदामा को कृष्ण दई मिलते न गयो पलसेखो[८]।
मैं कहौं जो सो सुनो मन दै इतने को न आप अपूरब लेखो।

---

१ सत्य। २ लिये। ३ लड़कपन में ही! ४ खराब। ५ उत्पन्न करने वाला। ६ अति। ७ सामान (संपत्ति)। ८ क्षणभर भी।

रीति बड़ेन को ऐसइ है 'रघुनाथ' कहै उर में अवरेखो[1]।
अंक लगाय मिले रघुनायक लंक बिभीषन को दई देखी॥

(६७) प्रौढ़ोक्ति

दो॰—हेतु न जो उत्कर्ष को, कल्पित कीजै तौन।
प्रौढ़ोकति तासों कहत, कबि-कोबिद मति-भौन॥

१—दो॰—ईस-सीस के चंद्र सो, अमल आठहू जाम
सुरसरि-तट के बरफ तें, धवल सुजस तव राम॥

महादेव के शीश पर का चंद्रमा और गंगा तट का बर्फ कुछ अधिक सफेद नहीं होता, तथापि कल्पना की गई है। इसी को प्रौढ़ोक्ति कहते हैं।

२—दो॰—तेरो जस सुरसरित के पुंडरीक[2] सो सेत।

३—कवित्त—मानसरबासी हंस-वंस न समान होत,
चंदन सों घस्यो घनसारऊ[3] घरीक[4] है।
नारद की सारद की हाँसी में कहाँ की भास[5],
सरद की सुरसरी[6] को न पुंडरीक है॥
'भूषन' भनत छक्यो छीरधि[7] में थाह लेत,
फेन लपटानो ऐरात[8] को करी कहै।
कयलास ईस ईस-सीस रजनीस वहौ,
अवनीस[9] सिवा के न जस को सरीक है॥

विवरण—हंस मानसरबासी होने से कुछ अधिक सफेद नहीं हो जाते। इसी प्रकार चंदन के संग से कपूर, नारद और सारद की होने से हंसी, सरद ऋतु की गंगा के होने से स्वेत कमल कुछ अधिक स्वेत न होंगे, परंतु कल्पना की गई है। इसी प्रकार और भी समझ लो।

---

१ समझो। २ उज्ज्वल कमल। ३ कपूर। ४ क्षणभर। ५ प्रकाश (सफेदी)। ६ गंगा। ७ क्षीरसागर। ८ इंद्र का सफेद हाथी। ९ पृथ्वीपति।

४—सवैया

पान किए हू दवानल को जेहि को अधरारस नाहिं ढढ़ै[1] री।
ताके लगी मुख सों यह जाय तो ज्या न सी तानन[2] क्यों न गढ़ै री।
गोकुलनाथ के हाथ बसी है बिसासिनी नाथिबे ही को बढ़ै री।
छेदति या हिय को बंसुरी सखि पाहन[3] फोरि कै बाँस कढ़ै री।

यहाँ वंशी की उत्कर्षकता के जो हेतु कहे गए हैं, वास्तव में वे उसकी उत्कर्षता के हेतु नहीं हैं, तो भी कल्पित किए गए हैं

(६८) संभावना

दो०—'होय जु यों तो होय यों' जहँ कहुँ बर्नन होय।
अलंकार संभावना, ताहि कहैं सब कोय॥

१—दो०—उगै जो कातिक अंत को, छनदा[4] छोड़ि कलंक।
तो कहुँ तेरे बदन की, समता लहै मयंक॥

२—चौपाई

जो छवि-सुधा-पयोनिधि[5] होई परम-रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा-रजु[6] मंदर-सिंगारू। मथै पानि[7] पंकज निज मारू[8]॥
दो०—यहि बिधि उपजै लच्छि[9] जब, सुंदरता-सुख मूल।
तदपि सकोच-समेत कवि, कहैं सीय-समतूल[10]॥

३—चौपाई

जौ तुम अवत्यौ मुनि की नाईं। पद-रज सिर सिसु धरत गोसाईं[11]॥

४—दो०—मोत न नीति गलीत[12] ह्वै, जो धन धरिए जोर।
खाए खरचे जो बचै, तो जोरिए करोर॥

सूचना—'प्रमाण' अलंकार के अंतर्गत एक भेद 'संभव' भी है। उसमें और इस संभावना अलंकार में यह भेद है कि इसमें तो निश्चय

१ जले। २ स्वर-लहरी। ३ पत्थर। ४ रात्रि। ५ क्षीर-सागर। ६ डोर। ७ हाथ। ८ कामदेव। ९ लक्ष्मी। १० समान। ११ स्वामी। १२ नीति छोड़कर।

कहा जाता है कि 'यदि ऐसा होता तो ऐसा होता' और उस 'संभव' में केवल यह कहा जाता है कि 'ऐसा होना सम्भवित है' हो या न हो, यह निश्चित नहीं।

(६६) मिथ्याध्यवसिति

मिथ्या बात को निश्चित कर लेना कि यह ऐसा ही है।

दो०—जहँ मिथ्या को सत करैं, कहि मिथ्या कछु और।
मिथ्याध्यवसिति होत है, अलंकार तेहि ठौर॥

१—दो०—जो आँजे नभ-कुसुम[1]-रस, लखै सो अहि[2] के कान।

२—सवैया

'गोकुलनाथ' सुनो बन में यह आज बड़ो अचरज्जहिं लेख्यो।
एक ससा[3] गहि दौरि कै सिंहहि फारत पेट पछारत पेख्यो।
मीत कह्यो यह तो सब साँच है ईश्वर की महिमा अवरेख्यो।
ईंदुर[4] एक दुरद्द[5] को आज नदी-तट में रह्यौ लीलत देख्यो।

३—दो०—ससा-सींग के धनुष लिय, गगन-कुसुम धरि माल।
खेलत बंध्यासुतन[6]-संग, तुव अरि-गन छितिपाल॥

४—दो०—तेरो कुजस सुनाइबे, बधिरन[7] बसुधा-बीर।
गावत गूँगा कछुक पी, दूध-उदधि के तीर॥

५—चौपाई

या भूपति के अजस निहारे। गने परारध[8] ते अति भारे॥
गावत हैं गूंगा-गन खरे। जिनके बचन समझ नहिं परे॥

६—सो०—मैं चढ़ि सौध[9] अमंद, गहे मूठि भरि कै नखत।
मीत महूँ गहि चंद, अंक लिए कब लौं रह्यों॥

---

१ आकाश मे उगा पुष्प। २ सर्प। ३ खरगोश। ४ चूहा। ५ हाथी। ६ बाँझ का पुत्र। ७ बहरा। ८ वह संख्या जिसके बाद की गणना नहीं है, असंख्य। ९ महल।

७—पद—ससं सींग को करि लेखनी, मसि कुरँग-तृष्ना[1]-नीर।
आकासपत्रहिं पर लिख्यो, करहीन कोउ कबिबीर॥
जनमांध पंगुर मूक बंध्या, को जु सुत लै जाय।
जसवंत अपजस बधिर-गन, को है सुनावत गाय॥

(७०) ललित

दो०—ललित अलंकृत जानिये, कह्यो चाहिये जौन।
ताही के प्रतिबिंब की बरनन कीजै तौन॥

विवरण—जो वृत्तांत कहना है, उसे न कहकर केवल उसका प्रतिबिंबमात्र कहा जाता है। यथा—

१—चौपाई

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि-गति बाम[2] सदा सबकाहू॥

यहाँ 'रामजी का राज्याभिषेक था सो न हुआ उलटा बनवास हुआ' यह प्रस्तुत वृत्तांत है, सो नहीं कहा, उसका प्रतिबिंबमात्र कहा गया।

२—चौपाई

सोचहिं दूषन दैवहिं[3] देहीं। विरचत हंस काक किय जेहीं।

३—चौपाई

यहि पापिनिहिं बूझि का परेऊ। छाय भवन पर पावक धरेऊ॥

४—दो०—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत[4] मराल[5]॥

'रामराज्य' की चर्चा केवल सुनने में आयो है देखने में न आयो, यह कहना था, सो न कहकर यों कहा।

५—दो०—मेरी सीख सुनति न सखि, उलटै उठति रिसाय।
सोयो चाहति नींद भरि, सेज अँगार बिछाय॥

---

१ मृगतृष्णा का जल। २ टेढ़ी। ३ ब्रह्मा। ४ एक। ५ हंस।

६—दो०—तब न सीख मानी अली, कियो विचार न कोय।
चाखो चाहति अमृत-फल, विष को बीजा बोय॥
७—सवैया
हे 'रघुनाथ' कहा कहिए कहते कछु बात नहीं बनि आवै।
देखति हौ इनकी मति को ऋतु पावस बीति गए घर आवै॥

(७१) प्रहर्षण (त्रिविधि)

प्रहर्षण=मनचाहा आनंद

(१) प्रथम

दो०—जतन बिना ही होत है, जहँ चित-चाही बात।

१—दो०—जाको रूप अनूप लखि, सखि न गयो धरि धीर।
आपुहि ते गयो दुहन, आयो वही अहीर॥
२—सवैया
सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीस बिसे व्रत-भंग भयो सु कहो अब केसब को धनु ताने[1]॥
सोक की आग लगी परिपूरन आय गए घनस्याम[2] विहाने[3]।
जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु-पुन्य पुराने॥
३—चौपाई
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥
४—दो०—निसचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रन कीन।
सकल मुनिन के आश्रमन, जाय-जाय सुख दीन॥

मुनि लोग ऐसा चाहते ही थे, वही बात बिना किसी आग्रह के रामजी ने कह दी, और वे स्वयं ही उनके आश्रमों पर गए, उन्हें कोई विशेष उद्योग नहीं करना पड़ा।

---

१ चढ़ना। २ काला मेघ (राम)। ३ प्रातःकाल।

५—चौपाई

खुलि गए सकल पटल[१] के तारे[२]। भए निद्रा-बस सब रखवारे॥
अरु बसुदेव देवकी दोऊ। छूटि गए बंधन ते सोऊ॥

६—पद—राम कृपा भव-निसा सिरानी[३] जागे पुनि न डसैहौं।
(विनय-पत्रिका)

राम कृपा से ऐसी बात हुई किसी उद्योग से नहीं।

सूचना—आपुहि ते राम कृपा तें अनायास ही, अचानक ही इत्यादि वा इसी अर्थ के अन्य वचन इस अलंकार के वाचक जान पड़ते हैं।

(२) द्वितीय

दो०—जहँ चितचाही बात तें अधिक अरथ-सिधि होय।

१—दो०—चहत मात पावत सहस[४], गज पावत हय[५] चाहि।
भाउसिंह दीवान है, जगत सराहत जाहि॥

२—चौपाई

धरहु धीर ह्वैहैं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत-भयहारी॥

राजा दशरथ एक पुत्र माँगने गये थे, चार पाए।

३—दो०—इक फल चहि पूजत सिवहि तुरत मिलै फल चारि।

४—सवैया

आपुन के कर में बसिबे को बजार में रावरे हाथ बिकाने।
भाग लखौ मुकतान को ए जू हरा[६] ह्वै रहैं हियरे लपटाने॥

(३) तृतीय

दो०—ढूँढ़त जाके जतन को, वस्तु चढ़ै कर आन।

१—दो०—हरि की सुधि को राधिका चली अली[७] के भौन।
हसत बीच ही मिलि गए, बरनि सकै सुख कौन॥

---

१ किवाड़ २ ताला। ३ बीत गई। ४ हजार। ५ घोड़ा। ६ माला। ७ सखी।

२—दो०—निधि-अंजन की औषधी, ढूँढ़त लह्यो निधान[1]।

भूमि में गड़े हुये धन को देखने के लिये एक अंजन बनता है उसे 'निधि-अंजन' कहते हैं। उस निधि-अंजन की औषधी को ढूंढ़ते हुए भूमि में गड़ा हुआ धन ही मिल गया।

(७२) विषादन

दो०—जहँ चितचाही वस्तु तें, पावे वस्तु विरुद्ध।
बुद्धिवंत नर बरनहीं, तहाँ विषादन सुद्ध॥

१—दो०—उड़िहौं खिलिहै कमल जब, निसि बीते परभात।
यो सोचत अलि कोस[2]गत, तोर्‌यो करि[3] जलजात[4]॥

किसी कमलकोश में बंद हुआ भौंरा सोच रहा था कि कल सबेरे इस बन्दीखाने से निकलूँगा कि इतने में किसी हाथी ने आकर वह कमल तोड़-मरोड़ डाला।

२—चौपाई

एक निधानहिं दूषन देहीं। सुधा दिखाय दीन विष जेहीं॥

३—चौपाई

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥

४—दो०—जाता अवगुन ढूँढ़िये, गुनै हाथ परि जाय।

५—दो०—कन[5], देबो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी[6] जानि।
रूप रहँचटै[7] लगि लग्यो, माँगन सब जग आनि॥

सूचना—इन उपर्युक्त चौपाइयों में वाक्यार्थ से 'ललित' अलंकार है परंतु व्यंग्यार्थ से 'विषादन' भी है—राम राज्याभिषेक चितचाही बात न हुई, वरन् उसके विरुद्ध उन्हे बनवास दिया गया—यह इच्छा से विरुद्ध हुआ। अतः विषादन है।

---

१ खजाना। २ कमल का छत्ता। ३ हाथी। ४ कमल। ५ भीख। ६ छोटे हाथवाली। ७ लालच।

(७३) उल्लास

दो०—औरहि के गुन-दोष तें, औरहि को गुन-दोष।
होत, तहाँ उल्लास कहि, बरनत मति के पोष॥

विवरण—उल्लास शब्द का अर्थ है—'प्रबल सम्बन्ध' जहाँ संसर्ग-संबंध से संगति का गुण-दोष अन्य में वर्णन किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है। इसके चार भेद हैं। यथा—

(१) पहला

दो०—और वस्तु के गुनन तें, और होत गुनवान।

१—चौपाई

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु[1] सोहाई॥

२—चौपाई

सज्जन सकृत[2] सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़हि जोई॥

३—दो०—कह्यो देवसरि[3] प्रगट ह्वै, 'दास' जोरि जुग हाथ[4]॥
भयो सीय तुव न्हान ते, मेरो पावन पाथ॥

४—कवित्त—कुटिल कराही[5] क्रूर कलही कलंकी कलि-
काल, की कथन में रहे जे मति खोइ कै।
तेऊ बिष्नु-अंगन में बैठि सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै।

५—दो०—नृप-समान में आपनी, होन बड़ाई काज।
साहि-तनय सिवराज के, करत कवित कविराज॥

६—चौपाई

मज्जन[6] फल पेखिय ततकाला। काक होहि पिक[7] बकहु मराला॥

---

१ बुरी धातु (लोहा)। २ पक। ३ गंगा। ४ जल। ५ बुरे मार्ग पर चलने वाले। ६ स्नान। ७ कोयल।

(२) दूसरा

दो०—लगै और के दोष तें, दोष जु औरहि आय।

१—दो०—संगति को गुन साँच है, कहैं जु गुनी रसाल।
कुटिल कूबरी संग तें, भये त्रिभंगी लाल॥

२—चौपाई—दुखित होहिं पर-विपत विसेषी।

३—दो०—रहिबो उचित न मलय[1] तरु, यहि कुवंस-बन माहिं।
घसत परस्पर ह्वै अगिन, औरहु तरु जरि जाहिं॥

४—दो०—सिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गए बजीर॥

५—दो०—स्याम-सुरति करि राधिका तकति तरनिजा[2] तीर।
अँसुवन करति तरौंस[3] को, छिन खौरौहों[4] नीर॥

६—दो०—निरखु परस्पर घसन सों, बाँस अनल[5] प्रगटाय।
जरत आपु सकुटुंब अरु, बनहू देत जराय॥

७—सवैया

भूलि गयो अपनो दुख ताछिन बानर के दुख नैन बहाए।

(३) तीसरा

दो०—बरने ते गुन और में, दोष और को होत।

१—चौपाई—'जरहिं सदा पर संपति देखी'।

२—सवैया

चंद-अलोक[6] ते लोक सुखी यह कोक[7] अभागो न सोक तें छूटे।

३—दो०—बरसे बारिद के लता, तृन तरु सब हरियात।
भाग लखो या आक[8] को, जलहू सों जरिजात॥

४—चौपाई

आक जवास पात बिन भयऊ। जिमि सुराज्य खल-उद्यम गयऊ॥

---

१ चदन। २ यमुना। ३ तल का, नीचे तक का। ४ खौलता हुआ। ५ आग। ६ आलोक, प्रकाश। ७ चक्रवाक। ८ मदार।

(४) चौथा

दो०—अवगुन ते जहँ और के, गुन औरहि परकास।

१—चौपाई—खल परिहास[1] होय हित मोरा।

२—चौपाई—पर-हित-हानि लाभ जिन केरे।

३—चौपाई—सुखी होहिं पर-विपति विसेषी

४—कवित्त— डाँवरे[2] की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै बैरु,
रावरे के बैर होत काज सिवराज के।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि यह 'उल्लास' अलंकार 'असंगति' अलंकार के प्रथम भेद से कुछ मिलता-जुलता है। दोनों में भेद यह है कि उसमें कार्य-कारण का संबंध है और इस अलंकार में केवल स्वभाव की अपेक्षा है, कारण-कार्य की नहीं।

(७४) अवज्ञा

दो०—औरै के गुन दोषतें, औरै गुन नहिं दोष।
ताहि अवज्ञा कहत हैं, सफल सुकवि मतिपोष॥

विवरण—यह अलंकार 'उल्लास' का उलटा है। इसके दो भेद हैं।

(१) प्रथम

दो०—जहाँ एक के गुनन ते, दूजो गुनहि गहै न।

१—दो०—करि बेदांत विचारहू, सठहि, विराग न होय।
रंच न मृदु मैनाक[3] भो, निसि-दिन जलनिधि सोय॥

२—सवैया

देखो अभाग कलानिधि[4] को 'रघुनाथ' सदा सिव सीस पै जाग्यो।
जैसे का तैसा कलंक रह्यो सिव-संगति को गुन नेकु न लाग्यो॥

---

१ हँसी। २ लड़का, बच्चा। ३ एक पर्वत जो समुद्र के भीतर रहता है। ४ चंद्रमा।

३—दो०—विपुल बारि बरषत जलद, तरु-तृन सब हरियात।
इन पापिन करील में, कबहुँ न उलहत[1] पात॥

४—दो०—बड़वानल-सह सिंधु-जल, उचन न होत निहार।

५—दो०—'तुलसी' प्रभु भूपन किये, गुंजा बढ़ो न मोल।

(२) द्वितीय

दो० - जहाँ और के दोप ते, दोप न औरै होय।

१—दो०—सब तरुवर नव दल लहैं, रितु बसंत के माहिं।
पत्र न लगै करील महँ, दोप वसन्तहिं नाहिं॥

२—दो०—तिमिर-तोम[2] तुरतै मिटै, प्रगटे जाहि कछूक।
कहा दोप दिननाथ[3] दिन, देखे जो न उलूक॥

३—दो०—मोती-संग जु पोत[4] के, पहिरै वाला[5] काय।
तो महिमा मुकतान की, घटै न नेको साय॥

४—दो०—कहा भयो जो तजत हैं, मिलन मधुप दुख मानि।
सुबरन[6] वरन सुवासयुत, चंपक लहै न हानि।

५—सवैया

दोष बसंत को नेक नहीं उलहै न करील की डार जु पाती।

६—दो०—कह वसंत का दोष जो, पत्र न लहै करीर।
दूषन मेघहि कौन जो, चातक-मुख नहिं नीर॥

७—दो०—बरपि विस्व हरपित करत, हरत ताप अघ प्यास।
'तुलसी' दोप न जलद को, जल ते जरै जवास।

८—दो०—'तुलसी' देवल[7] देव का, लागे लाख करोर।
काक अभागे हगि भरो, महिमा भई कि थोर॥

---

१ नहीं उगते । २ समूह । ३ सूर्य । ४ शीशे की गुरिया । ५ स्त्री। ६ सोना । ७ मंदिर ।

(७५) अनुज्ञा

अनुज्ञा=जो अंगीकार करने योग्य न हो उसे अंगीकार करना।

दो०—इच्छा करिए दोष की, जोपहिं में गुन देखि।
ताहि अनुज्ञा कहत हैं, सुकविन मत अवरेखि।

१—चवपैया

मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह[1] मैं माना।
देख्यौं भरि लोचन हरि भवमोचन[2] यहै लाभ संकर जाना॥

२—चौपाई

रामहिं चितव सुरेस[3] सुजाना। गौतम-साप परम हित माना॥

३—कवित्त—जप करि-करि कमलापति[4] सों माँगत यों
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के।
बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमें कीजे महाराज सिवराज के॥

४—सवैया

चेरियै[5] पै जो गोपाल रचैं तो चकोरी सबै मिलि चेरी लहावैं।
कूबर हो पै लगै मन जो सब कम्मर टारि कै हाँडी बँधावैं।
५—दो०—होउ बिपति जामैं सदा, हिये चढ़त हरि आनि।

(७६) तिरस्कार

दो०—त्यागिय आदरनीयहू, लखिय जो दोष-बिसेष॥
तिरस्कार भूषन कहैं, जिनकी सुमति असेष॥

१ कृपा। २ सांसारिक दुःख दूर करने वाले। ३ इंद्र। ४ विष्णु।
५ दासी।

१—दो०—जरौ सुसंपति सदन-सुख, सुहृद मातु पितु भाय।
सनमुख होत जो रामपद; करै न सहज सहाय॥
२—पद—जाके प्रिय न राम बैदेही।
तेहि त्यागिए कोटि बैरी-सम यद्यपि परम सनेही।
३—दो०—जिन होवहु तिय श्रियविभव[1] गज-तुरंग कलबाग[2]।
जिनसे बस नर करत नहिं, हरिचरनन अनुराग॥

४—चौपाई

सो सुख धर्म-कर्म जरि जाऊ। जहँ न राम-पद-पंकज-भाऊ[3]॥
५—दो०—आ सोने को जारिये जाते फाटै कान।

(७७) लेश

दो०—जहँ बरनत गुन-दोष कै, कहै दोष गुन-रूप।
भूषन ताको लेस कहि, गावत कुकबि अनूप॥

(दोष को गुन मानना)

१—दो०—नहिं राजा ते दंड-भय, नहिं कछु चोर-कलेस।
नाहिं दिवाले तें डरैं, धनि दरिद्र को देस॥
२—दो०—कोऊ बचत न सामुहे, सरजा सों रन साजि।
भली करी पिय समर ते, जिय लै आये भाजि[4]॥
३—दो०—कागा परत न बंध में, श्रुतिकटु बचन उचारि।
४—दो०—निर्गुनता जग धन्य है, धिक गुन-गौरव ताहि।
और बिटप सुख से रहैं, चंदन-तरु कटि जाहि॥

५—चौपाई

बालि परम हितु जासु प्रसादा[5]। मिल्यो राम तुम समन-बिषादा।

६—चौपाई

जो नहिं होत मोह अति मोही। मिलत्यों तात कवन विधि[6] तोहीं।

---

१ लक्ष्मी का ऐश्वर्य। २ सुन्दर बगीचा ३ प्रेम। ४ भाग आये। ५ कृपा। ६ प्रकार।

(गुण को दोष मानना)

१—दो०—कैद होत सुक सारिका[1], मधुरी बानि[2] उचारि ।

२—चौपाई

मुनि बिनु काज करिय[3] कत रोषू । कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू ॥

३—चौपाई

सुक सारिक[4] जो पढ़ते नाहीं । तौ कत परत पिंजरन माहीं ।
सब्द-बेध सर जो न चलौते । अंध-साप कत दशरथ पौते[5] ॥
रबि-रस्मि जो न जरत परकासा । तो संतत कत फिरत उदासा ।
जो न होत रघुपति के दाया । तो बन-दुख कत सहत निकाया[6] ॥

(७८) मुद्रा

दो०—प्रकृत अर्थ में मिलहिं पद, औरहु नाम प्रकास ।
मुद्रा तासों कहत हैं, कबि जन सहित हुलास ॥

विवरण—प्रस्तुत अर्थ के कथन करने वाले पदों से जहाँ कोई दूसरा सूचनीय अर्थ भी निकलता हो, वहाँ मुद्रा अलंकार माना जाता है ।

१—दो०—सुनि मुरली-सुर-धुनि सखि गो[7]मति को सुबिबेक ।
जमुनायकु को हित भयो, सरसइ[8] हिय धरि टेक ॥

इस दोहे में प्रस्तुत अर्थ के अलावा सुरधुनि (गंगा) गोमति (गोमती) जमुना और सरसइ (सरस्वती) नदियों के नाम भी सूचित होते हैं ।।

केशवकृत रामचंद्रिका में अयोध्या के वर्णन में यह छंद है—

१ मैना । २ बोली । ३ करते हैं । ४ मैना । ५ पाते । ६ दुःख के समूह । ७ गया । ८ फैलता है ।

२—त्रिभंगी

कविकुल बिद्याधर[1] सकल कलाधर[2] राजराज[3] बर बेस बनै।
गनपति[4] सुखदायक पसुपति[5] लायक सूर[6] सहायक कौन गनै॥
सेनापति बुधजन[7] मंगल[8] गुरुगन[9] धर्मराज[10] मन बुद्धि घनो।
बहु सुभ मनसाकर[11] करुनामय[12] अरु सुरतरंगिनी[13] सोभ सनो॥

इसमें अयोध्या नगरी का वर्णन प्रस्तुत है, पर साथ ही इसमें ऐसे शब्द आए हैं जिनसे देवपुर (अमरावती) की भी सूचना मिलती है।

३—भुजगप्रयात

यचौं मैं प्रभू ते यही हाथ जोरी। फिरै आपु ते ना कबौं बुद्धि मोरी॥
भुजंगप्रयातोपमा चित्त जाको। जुरै ना कदा भूलि के संग ताको॥

इस छंद में ईश्वर-प्रति विनयरूपी प्रस्तुत अर्थ के अलावा यह भी सूचित होता है कि यही छंद 'भुजंगप्रयात' नामक छंद का उदाहरण भी है। 'यचौं' शब्द से सूचित होता है कि य, चौं अर्थात् चार यगण का यह छंद होता है।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कविवर जगन्नाथप्रसाद (भानु) कृत 'छंद-प्रभाकर' ग्रंथ में वर्णित छंदों के उदाहरणों में सर्वत्र यही अलंकार निबाहा गया है।

---

१ विद्वान्। २ कलानिद। ३ श्रेष्ठ छत्री। ४ समूह के अफसर। ५ पशुशाला के अधिकारी। ६ वीर। ७ पंडित। ८ मांगलिक पाठ करनेवाले। ९ पाठशाला के शिक्षक। १० न्यायकर्ता। ११ मनवांछित फल देने वाले। १२ दयावान। १३ सरयू नदी।

* इस छंद में कवि (शुक्र), विद्याधर (देव-विशेष), कलाधर (चंद्रमा), राजराज (कुबेर), गनपति (गणेश), सुखदायक (इंद्र), पशुपति (महादेव), सूर (सूर्य), सेनापति (स्वामि कार्तिकेय), बुध, मंगल, गुरु (बृहस्पति), धर्मराज (यम), मनशाकर (कल्पवृक्ष या कामधेनु), करुनामय (विष्णु), (सुरतरंगिनी) में मुद्रा है।

सूचना—कभी कभी नाटक-ग्रंथ में अथवा कथा-ग्रंथ में चतुर कवि आदि ही में कोई ऐसा छंद रख देता है कि जिससे समस्त ग्रंथ में वर्णित कथा की सूचना मिल जाती है। ऐसे छंद में मुद्रा अलंकार माना जाता है।

अनघराघव नाटक में आदि ही में सूत्रधार कहता है।

४—दो०—नीति रीति सों चलत तेहि, तिर्यक[1] होत सहाय।
कुपथ चलै तेहि का तजहिं, सोदरहू जग भाय॥

४—चौपाई

जो जन नय-पथ-बिचरन लायक। तिर्यहु तेहि होत सहायक॥
जो जग में अनीति मग भजहीं। तुरंत सहोदरहू तेहि तजहीं॥

इन कविताओं से नाटक की पूरी कथा की सूचना मिलती है।

बाबू हरिश्चंद्र-कृत 'मुद्राराक्षस' नाटक के आदि में यह दोहा :—

५—दो०—चंद्र बिंब पूरन[2] भए, क्रूर केतु हठ दाप।
बल सों करिहै ग्रास कह, जेहि बुध[3] रक्षत आप॥

इस दोहे से 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णित चंद्रगुप्त, मलयकेतु और बुध (चाणक्य) की कार्रवाई की सूचना मिलती है।

इसी प्रकार 'रत्नावली नाटिका' तथा 'प्रेमयोगिनी' में बाबू हरिश्चंद्र ने यह दोहा नांदी में कहलाकर ग्रंथ के वर्णन की सूचना दिलवाई है।

६—दो०—भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर[4]॥

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण में आरण्यकांड का यह सोरठा कांड भर की कथा की सूचना देता है—

१ पशु-पक्षी। २ पूर्ण, पूर्ण न। ३ बुध नक्षत्र। ४ मेरा, मयूर।

७—सो०—उमा रामगुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति[1]।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि-बिमुख न धर्म-रति[2]॥

सुन्दरकांड के आदि का यह श्लोक कांड भर की कथा का सूचक है—

८—मालिनी

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं,
दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं, वातजातं नमामि[3]॥

लंकाकांड के आरंभ का यह दोहा लंकाकांड भर की कथा का सूचक है—

९—दो०—लव निमेष परमान युग, बरष कल्प सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु को दंड[4]॥

सूचना—फारसी और उर्दू में इस अलंकार को "मिराआतुन्नज़ीर" कहते हैं। उर्दू में इसी को बिला भी कहते हैं। एक उदाहरण यह है—

१०—शेर—नजर बदली जो देखी उस सनम को।
न दी नालों[5] ने फ़ुर्सत एक दम को॥

यहाँ प्रस्तुत अर्थ के सिवा बदली, नदी, नालो से अन्य सूचनीय अर्थ भी निकलते हैं।

(७६) रत्नावली

दो०—प्रस्तुत अर्थ कहत कहैं, क्रम ते औरौ नाम।
कहै रुचिर रत्नावली, अलंकार सुखधाम॥

---

१ संसार से वैराग्य। २ प्रेम। ३ अत्यन्त बलशाली,-सुमेरु-समान शरीरवाले, राक्षस रूपी वन को जलाने के लिये अग्नि, ज्ञानियों में प्रधान, सब गुणों की खानि, वानरों के अधिपति, रामचंद्र के श्रेष्ठ दूत, पवन के पुत्र (हनूमान) को मैं प्रणाम करता हूँ। ४ धनुष। ५ रोना।

१—दो०—रसिक चतुरमुख लक्ष्मिपति, सकल ज्ञान के धाम।

अर्थात् हे रसिक, तुम चतुरों में मुख्य हो, लक्ष्मीवान हो और संपूर्ण ज्ञान के धाम हो। यह प्रस्तुत अर्थ हुआ। परन्तु साथ ही अन्य नाम भी क्रम से निकलते हैं अर्थात् चतुरमुख—ब्रह्मा, लक्ष्मीपति=विष्णु, सकल ज्ञान के धाम=शिव।

२—कवित्त—जीतहि ए रावत [1] ऐराबत सों जंग[2] अंग,
पुंडरीक के गनत पुंडरीक[3] वृंद हैं
बावन बावन[4] मृदु कुमुद कुमुद[5] गनै,
अंजन[6] के जैतवार अंजन के कंद हैं॥
पुष्पदंतहू के दंत तोरें ज्यों पुहुपसार[7],
छीन लेत सार्वभौमहू के मदा मंद हैं।
प्रबल प्रतीक[8] सुप्रतीक के जितैया।
रैयाराव भाऊसिंह तेरे दान के दुरद[9] हैं॥

यहां भाऊसिंह के दिए हुए हाथियों की प्रशंसा तो प्रस्तुत अर्थ है, पर साथ ही आठों दिग्गजों के नाम क्रम से निकलते हैं—अर्थात् ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत सार्वभौम और सुप्रतीक।

२—सवैया

रवि सिर-फूल मुखै ससि-तूल महीसुत[10] बदनबिंदु[11] सुभांति।
पना[12] बुध केसर-आड़[13] गुरौ नथ मानिय सुक्र करै दुख सांति॥
सनी है सिंगार बिधुंतुद[14] बार सजे भखकेतु[15] सबै तन-कांति।
निहारिय लाल भरी सुखजाल बनी यह बाल नवग्रह-पांति॥

१ प्रधान। २ युद्ध ३ कमल। ४ बौना। ५ कुई। ६ काजल। ७ फूलों का हार। ८ स्वरूप। ९ हाथी। १० मंगल। ११ रोली। १२ पन्ना। १३ केसर का टीका। १४ राहु। १५ कामदेव।

इसमें क्रम से 'नवग्रह' के नाम आए हैं।

४—सवैया

आदित सोम कहौ कबहूँ कबहूँ कहौ मंगल औ बुध होते।
औ गुरु सुक्र सनीचर को कहिबो कबहूँ मुख सों नहि रीते।
मोहि न जानि परै 'रघुनाथहिं' भेंट को है दिन कौन सो चीते।
आवत ज्ञान में हारि परी तुम्हें बार बतावत बासर बीते।

इसमें सातों दिनों के नाम क्रम से आए हैं।

सूचना—इसमें यह आवश्यक है कि कही हुई वस्तुओं का प्राकृतिक क्रम भंग न होने पावे।

(८०) सद्गुण

दो०—छाड़ि आपनो गुन जहाँ, औरन को गुन लेत।
अलंकार तद्गुण तहाँ, बरनै कवि करि हेत॥

विवरण—'गुण' शब्द का अर्थ इस अलंकार में केवल 'रंग' है। उल्लास और अवज्ञा अलंकारों में गुण का अर्थ 'धर्म' अथवा 'दोष' विरोधी भाव है। यह अंतर भले प्रकार समझ लेना चाहिए। 'भूषन' ने स्पष्ट कहा है—

दो०—जहाँ आपनो रंग तजि, गहै और को रंग।
ताको तद्गुण कहत हैं, भूषन बुद्धि उतंग॥

१—सवैया

जाहिरै[1] जागत सो जमुना जब बूड़ै बहै उलहै[3] वह बेनी[4]।
त्यों 'पद्माकर' हीर के हारन गंग तरंगन सी सुख देनी।
पायन के रंग सों रँगि जाति सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी[5]।
पैरै जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ[6] तहाँ ताल में होति त्रिबेनी।

---

१ बिचारे हुए। २ प्रत्यक्ष। ३ ऊपर निकलती है। ४ चोटी। ५ श्रेणी। ६ नायिका।

२—दो०—गई बिसद रँग रुचिरई, भई अरुन छबि नौल[1]।
लै मुकता कर में करति, तू मूँगा को मौल॥

३—दो०—सोनजुही सी होति दुति, मिलत मालती माल।

४—दो०—अधर धरत हरि के परत, ओंठ डीठि पट-ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इंद्रधनुष रँग होति॥

सूचना—किसी किसी आचार्य का मत है कि 'रंग' के अलावा 'रस' और 'गंध' भी इसी अलंकार का विषय है। परंतु हमें जितने उदाहरण इसके मिले हैं वे सब रंग ही से संबंध रखते हैं और भूषण ने तो परिभाषा ही में 'रंग' शब्द कह दिया है।

(८१) अतद्गुण

दो०—रहे आन के संग हू, गुन न आन को होय।
ताहि अतद्गुन कहत हैं, कबि कोबिद सब कोय॥

विवरण—इसे तद्गुण का उलटा समझना चाहिये। इसमें भी केवल रंग का विचार ही मुख्य है।

१—दो०—लाल बाल अनुराग सों, रंगत रोज सब अंग।
तऊ न छाँड़त रावरो, रूप साँवरो रंग॥

२—दो०—गंगाजल सित[2] अरु असित[3], जमुना जलहु अन्हात।
हंस रहत तो सुभ्रता, तैसिय बढ़ न घटात॥

३—दो०—सिव सरजा की जगत में, राजति कीरति नौल।
अरि-तिय-दृग-अंजन हरै, तऊ धौल[4] की धौल॥

४—दो०—कज्जल इव जमुना जलहिं, ससि सम सुरसरि नीर।
न्हात न घटै बढ़ स्वेतता, राजहंस धरि धीर॥

---

१ नवल, नई। २ उज्ज्वल। ३ श्याम। ४ उज्ज्वल।

(८२) पूर्वरूप (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—बहुरि मिलै गुन आपनों, जहाँ आन के संग।
पूरबरूप तहाँ प्रथम, भाषैं सुमति उतंग ॥

१—दो०—लखत नीलमनि होत अलि ! कर विद्रुम[1] ठहरात।
मुकता को मुक्ता बहुरि, लख्यो तोहिं मुसुकात ॥

२—दो०—मुकुत-माल हरि के हिये, मरकत[2] मनिमय होत।
पुनि पावत निज रूप लहि, राधे-मुख-उद्योत ॥

३—सवैया

'भूषन' यों सिवराज को धाक भये पियरे अरुने रँगवाले।
लोहे कटे लपटे अति लोहु[3] भये मुँह मोरन के पुनि लाले ॥

४—बरवै—केस मुकुत सखि मरकत-मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥

—बरवै रामायण

सूचना—पुनि, बहुरि, फिरि इत्यादि इसके वाचक हैं।

(दूसरा)

दो०—बस्तु बिनासेहु बहुरि, तरह पीछली होत।
दूजो पूरबरूप तेहि, बरनत पंडित गोत ॥

विवरण—जिस वस्तु से मिलकर कुछ गुण बढ़ जाना कहा गया हो व अनुमान किया जाय, उसके विनष्ट हो जाने पर भी पूर्ववत् (वैसा ही, जैसा उस वस्तु के साथ रहते समय था) बना रहना वर्णन किया जाय वहाँ दूसरा पूर्वरूप होता है।

---

१ मूँगा। २ नीलम। ३ खून।

१—दो०—अंग-अंग नग जगमगत, दीप-सिखा सो देह।
दिया बढ़ाएहू[1] रहत, बड़ो उजेरो गेह ॥

२—दो०—अथयेहू ससि हँसनि की, छाई छटा अनूप।

३—दो०—दीप बढ़ायेहू रहै, रसनामनि[2] परकास।

४—दो०—अथयेहू इन्दुहि तिमिर-तोमहिं दियो पछेलि[3]।
चहूँ ओर मुख-चंद की, रही चाँदनी फैलि ॥

५—सवैया

भौन अँधेर हूँ बीच गये मुख-जोति तें वैसिए होत उज्यारी।

६—सवैया

आठयें[4] के ससिहू के अथौत[5] भई मुख रावरे की उजियारी।

(८३) अनुगुन

(अनुगुण=गुण का और अधिक बढ़ना)

दो०—पहिले को गुन आपन, बढ़ै आन के संग।
तामों अनुगुन कहत जे, जानत कविता-अंग ॥

विवरण—इस अलंकार में पिछले तीन अलंकारों की तरह केवल रंग ही का ग्रहण न समझना चाहिए वरन् सभी प्रकार के गुणों का ग्रहण समझना चाहिये।

१—दो०—मुकमाल हिय हास तें, अधिक सेत ह्वै जात।

१—कवित्त—भानुवंस-भूषन महीप रामचंद्र बीर,
रावरो सुजस फैल्यो आगर[6] उमंग में।
कवि 'लछिराम' अभिराम दूनो सेषहू सों,
चौगुने चमत्कार हिमगिरि गंग में ॥

---

१ बुझाने पर। २ करधनी के जवाहिरात। ३ पीछे कर दिया। ४ अष्टमी। ५ अस्त होने पर। ६ चतुर।

जाको भट घेरे तासों परै है ग्रौर,
पत्रगुनो हीरा-हार चमक-प्रसंग में।
चंद मिलि नौ गुनो नक्षत्रन सौ सौगुनो ह्वै,
सहस्रगुनो भो क्षीर सागर-तरंग में॥

३—कवित्त—कज्जल-कलित[1] अँसुवान के उमंग-संग,
दूनो होत रोज रंग जमुना के जल में।

४—चौपाई

मनिमानिक मुकता छवि जैसी। अहि गिरिगज सिर सोह न तैसी॥
नृप-किरीट तरुनी-तनु पाई। लहैं सकल सोभा अधिकाई॥

सूचना—इस चौपाई में क्रमालंकार भी है। परंतु हमारा लक्ष्य केवल चौथा चरण है।

५—बरवा—चंपक-हरवा अँग मिलि, अधिक सोहाय।

(८४) मीलित

दो०—दुइ चीजैं इक रंग जहँ, मिले न भेद लखाय।
मीलित तासों कहत हैं, कबि कोबिद हरषाय॥

१—दो०—मरकत मनि अलि सीस पै, नेकहुँ नाहिं लखात।
सुबरन[2] के भूषन सिया, तन सुबरन[3] मिलि जात॥

२—दो०—अधर पान अंजन नयन, लगा महाउर पाय।
सिय-तन ये दरसत नहीं, अंगन रहे समाय॥

३—चौपाई

बेनु[4] हरित मनिमय[5] सब कीन्हें। सकल सपर्न[6] परहिं नहिं चीन्हें॥

४—दो०—पँखुरी लगी गुलाब की, गात न जानी जाय।

५—दो०—पान-पीक अधरान में, सखी लखी नहिं जाय।
कजरारी अँखियान में, कजरा री[7] न लखाय॥

---

१ युक्त। २ सोना। सुंदर रंग (वर्ण)। ४ बाँस ५। हरा रत्न। ६ पत्रयुक्त। ७ काजल।

(८५) उन्मीलित

दो०—जहँ मीलित में हेतु लहि, कछुक भेद बिलगाय।
उन्मीलित, सुरसुरि मिले ज्यों जमुना लखजाय ॥

१—दो०—समझ परत सुगंध तें तन केसर को लेप।

२—बरवै—चंपक-हरवा अंग मिलि, अधिक सोहाय।
जानि परै सिय हियरे, जब कुम्हलाय ॥

३—दो०—चंपक-तन घन-बरन बर, रह्यो रंग मिलि रंग।
जानो जात सुबास ही केसर लाई अंग ॥

४—दो०—सम प्रकास तम पाख[1] दुहूँ नाम-भेद बिधि कीन्ह।
ससि-पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥

५—दो०—सिव सरजा तब सुजस में मिले धवल छबि-तूल[2]।
बोल बास तें जानिये, हंस चमेली फूल ॥

६—दो०—मिलि चंदन बेंदी रही गोरे मुख न लखात।
ज्यों ज्यों मद[3] लाली चढ़ै त्यों त्यों उघरत जात[4] ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि तद्गुण और अतद्गुण अलंकारों में केवल 'रंग' का ही विषय वर्णित होता है। मीलित और उन्मीलित में केवल 'रंग' ही नहीं वरन् रस, गंध के भी विषय वर्णित होते हैं। आगे सामान्य और विशेषक अलंकार लिखे जायँगे जिनमें 'आकार' वर्णित विषय होता है। इन अलंकारों का भेद खूब बारीकी से समझना और स्मरण रखना चाहिए।

(८६) सामान्य

दो०—वस्तु दोय आकार इक, भेद न परै लखाय।
तहँ सामान्य बखानहीं, अलंकार कबिराय ॥

१—चौ०—एक रूप तुम भ्राता दोऊ।

१ पक्ष। २ समान उज्ज्वल छबिवाले। ३ शराब। ४ प्रकट हो जाती।

२—नाहिं फरक श्रुतिकमल अरु हरिलोचन अनिमेष।

यहाँ कान में खोंसे हुये प्रस्फुटित कमल पुष्प के दलों और कृष्ण के अनिमेष नेत्रों में आकार की एकता से भेद नहीं जान पड़ता।

३—सवैया

जानी न जात मसाल औ बाल[1] गोपाल गुलाब चलावत चूकें।

यहाँ भी आकार ही के विचार से एकता है।

४—भुजंगप्रयात

भगी देखिकैंसकिलंकेस-बाला[2]। दुरी[3] दौरि मंदोदरी चित्रसाला।
तहाँ दौरिगो बालि को पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो॥
गहै दौरि जाको तजै ताहि ताको। तजै जा दिसा को भजै बाम ताको।
भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुंदरी क्यों दरीको बिहारी[4]॥

—रामचंद्रिका

लंका में युद्ध होते समय अंगद और हनुमान रावण के रनिवास में घुसकर मंदोदरी को पकड़ना चाहते हैं। मंदोदरी चित्र सारी में जा घुसी और वहाँ बनी हुई तसवीरों में ऐसा मिल गई (आकार की समता से) कि अंगद यह नहीं जान सके कि कौन चित्र है और कौन असल मंदोदरी है।

५—चौपाई

भरत राम एकै अनुहारी[5]। सहसा लखि न सकैं नर नारी॥
लखन सत्रुसूदन इक रूपा। नख-सिख तें सब अंग अनूपा॥

(८७) विशेषक

दो०—सामान्यहि में जऊँ कछू, कैसहुँ भेद जनाय।
ताहि बिसेषक कहत हैं, सब कवि कोबिद राय॥

---

१ नायिका। २ मंदोदरी। ३ छिपी। ४ कंदरा में घुसने वाला (बंदर)। ५ समान रूपवाले।

विवरण—पूर्वोक्त 'सामान्य' अलंकार ही में (आकार का विचार लिये हुए) जहाँ किसी कारणवश दोनों वस्तुओं का भेद ज्ञात हो जाय वहाँ विशेषक अलंकार होगा। जैसे—

१—दो०—मनमोहन मनमथन को, द्वै कहतो को जान।
जो इनहू कर कुसुम को, होतो बान-कमान॥

अर्थात् श्रीकृष्ण और कामदेव एक ही रूप और आकार के हैं, भेद यों जाना जाता है कि कृष्ण के हाथ में फूलों के धनुष-बाण नहीं हैं।

२—कवित्त—'भूषन' भनत एते मान घमसान भयो,
जान्यो न परत कौन आया कौन दल ते।
सम बेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
बीर जाने हाँके देत[1] मीर जाने चलते॥

३—दो०—कागन में मृदु बानि[2] तें मैं पिक लियो पिछानि[3]।

(८८) विशेषकोन्मीलित

दो०—जहँ विशेषकोन्मिलित मिलि, भेदहि प्रगट आय।
तहँ विशेषकोन्मिलित है, कहत सुकवि-समुदाय॥

जहाँ उन्मीलित और विशेषक दोनों का मेल पाया जाय वहाँ यह अलंकार कहा जाता है।

१—दो०—ससि में मुख में भेद कछु, नेकु न परत लखाय।
बिन कलंक अरु बास[4] तें, सिय-मुख जानो जाय॥

२—चौपाई

बय[5] बपु[6] बरन[7] रूप सोइ आली। सील सनेह सरिस समचाली॥
बेष न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी[8] चली चतुरंगा॥

---

१ हुँकार करते हुए। २ बोली। ३ पहचान। ४ सुगंध। ५ अवस्था। ६ शरीर। ७ रंग। ८ सेना।

सूचना—गुमान कवि कृत 'नैषधकाव्य' में 'पंचनली' का प्रसंग देखो। दमयंती स्वयंवर में राजा 'नल' आए हैं। इंद्र, अग्नि, यम और वरुण देवता भी राजा नल ही का रूप (ज्यों का त्यों) धारण कर स्वयंवर में बैठे हैं। इस प्रकार 'नल' के पाँच रूप देखकर दमयती घबराई है कि इन पाँचों में से असली 'नल' कौन है। सरस्वती का स्मरण करके दमयंती विचारने लगी है, तब भेद स्फुरित हुआ है। वह काव्य यों है—

३—त्रोटक

सुनिकै यह अद्भुत बात नई। पँचहु नल ओर चकी[1] चितई।
नहिं पावत है निरधार कियो। धरको हियरा नन ताप लियो।

संयुक्ता

सुर चारि आनँद सो पगे। नहिं पाय भूतल में लगे।
नल के लगे पग मेदनो[2]। लखि जानि जाति नितंबिनी[3]।
सुर के सरीरन में कहीं। कन रेनु के लखिये नहीं।
नल देह पै दुति पायके। जनु भूमि भेंटत चाय[4] के।

त्रोटक

नल के पल लोयन[5] माहिं लगैं। सुर-नैनन में न निमेष लगें।
सुर सीस न फूल मलीन भये। नल के सिर के कुम्हिलाय गये।

तारक

इन भेदन सों नल को पहिचानो। चित अंतर सिंधु सुधाहि समानो।

इस कविता में 'विशेषकोन्मीलित' अलंकार है। केवल 'उन्मीलित' इसलिए नहीं है कि शुद्ध उन्मीलित में केवल एक वस्तु में कोई विशेषतासूचक बात कही जाती है, इसमें दोनों वस्तुओं (देवता और नल) में विशेषतासूचक चिह्न कहे गए हैं। और केवल 'विशेषक' इसलिये नहीं है कि 'विशेषक' में केवल आकृति' की समानता वर्णन की

१ चकपकाई। २ पृथ्वी। ३ रमणी (दमयंती)। ४ चाव। ५ नेत्र।

जाती है, अन्य गुणों की नहीं। इसमें आकृति के अलावा अन्य गुणों अर्थात् रूप, रंग, कोमलता इत्यादि की भी समता (राजा नल और देवताओं को) विवक्षित है।

(८६) गूढ़ोत्तर

दो०—अभिप्राययुत भाव जहँ, कहि गूढ़ोत्तर सोय।
प्रश्न मानि लीजै कहूँ, कहुँ पूछे पर होय॥

विवरण—जहाँ कुछ गूढ़, अभिप्राय सहित उत्तर का वर्णन हो, वहाँ यह अलंकार होता है। यह दो प्रकार से हो सकता है। एक वहाँ जहाँ केवल उत्तर कहा जाता है और उसी उत्तर से कल्पना कर ली जाती है कि ऐसा प्रश्न किया गया होगा। दूसरा प्रश्न सहित कहा है।

(१) कल्पित प्रश्न

१—दो०—घाम घरीक निवारिये, कलित[1] ललित अलिपुंज।
जमुना-तीर तमाल-तरु, मिलति मालती-कुंज॥

बिना पूछे ही स्वयं अपना परिचय देने में सर्वत्र यही अलंकार होगा। जैसे तुलसीकृत रामायण के सुन्दरकांड में बिना हनुमानजी के पूछे ही विभीषण अपना परिचय दे चले हैं। देखो—

२—चौपाई

सुनहु पवनसुत रहनि[2] हमारी जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी॥
......इत्यादि

इसमें विभीषण का गूढ़ अभिप्राय अपनी दीनता दिखाकर रामदूत की कृपा संपादन करना था।

---

१ सुन्दर। २ रहना, बसना।

हनुमानजी जब संजीवनी लेने जाते थे, तब कालनेमि राक्षस कपट मुनि के भेष से बिना पूछे ही कह चला है—

३—चौपाई

होत महारन रावन रामहिं। जितिहैं राम न संसय या महिं॥
इहाँ भए[1] मैं देखौं भाई। ज्ञान दृष्टि बल मोहिं अधिकाई॥
......आदि

इसमें गूढ़ अभिप्राय अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके हनुमान जी का ठगना था।

इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी समझ लेना चाहिए।

सूचना—स्वयं दूतिका नायिका के वचनों में सर्वत्र यही अलंकार होता है।

(२) प्रश्न-सहित

(रावण और हनुमान का प्रश्नोत्तर)—

१—हरिगीतिका

कपि कौन तू ? सुत-अक्षय-घातक, कौन बल ? रघुनाथ के।
रघुनाथ को ? खर-दूषणांतक, अनुज-लक्ष्मण साथ के।
लखन को ? तव भगिनि जानति, परसुधर[2]-मद जेहि हर्‍यो।
परसुधर को ? सहसभुजरिपु दीप जेइ तव सिर धर्‍यो।
पठवा जो केइ ? सुग्रीव, का, हरि[3] बालि सोदर[4] जानिये।
कपि बालि को ? तुम रह्यो जाकी काँख में सुधि आनिये।
किमि सिंधु नाँघो ? गोपद[5] ज्यों, केहि हेत ? सिय-चोरै लखै।
सिय कौन ? कन्या जनक को तुम बाण[6] गे जाके मखै[7]।
कस बाण ? सोइ बलि-सुवन जेइ तोहिं बाँधि नचायऊ।
को कहत यहि बिधि ? पद्मिनी[8] जेइ जलधि माँझ नचायऊ।

१ से। २ परशुराम। ३ बंदर। ४ सहोदर। ५ गोखुर से बना गड्ढा। ६ बाणासुर। ७ यज्ञ। ८ हथिनी।

इसमें हनुमानजी का गूढ़ अभिप्राय रावण को लज्जित करना है।

२—दो०—बाल कहा लाली परी, लोयन-कोयन[1] माँह।
लाल तिहारे दृगन की, परी दृगन में छाँह॥

(९०) चित्रोत्तर

(यह अलंकार दो प्रकार का है)

(प्रथम)

दो०—जहँ बूझत कछु बात के उत्तर मोई बात।
प्रथम चित्र तेहि कहत हैं सकल सुकवि अवदात॥

विवरण—जिन शब्दों में प्रश्न किया जाता है वे ही शब्द उत्तर के भी हो जाते हैं।

१—दो०—को है जारत अगिन बिनु? कोरे नेह-बिहीन?

२—चौ०—तात कहाँ ते पाती आई?

३—चौ०—का वर्षा जब कृषी सुखाने?

४—को कहिये जल सों सुखी? को कहिये पर[2] स्याम?
को कहिये जे रस बिना? को कहिये सुख बाम[3]॥

(१) प्रथम उदाहरण में,—(प्रश्न)—बिना अग्नि के कौन जलाता है? (उत्तर)—कोह (क्रोध) ही बिना अग्नि के जलाता है। (प्रश्न)—नेहविहीन व्यक्ति का क्या कहते हैं। (उत्तर)—नेहविहीन व्यक्ति को 'कोरा' कहते हैं।

(२) दूसरे उदाहरण में-भरतजी राजा दशरथ से पूछते हैं। (प्रश्न) हे तात यह पाती (पत्री) कहाँ से आई है? इन्हीं शब्दों में राजा दशरथ का उत्तर भी हो जाता है (उत्तर)—तात (रामचंद्र) के यहाँ से पाती आई है।

१ नेत्रों का कोया। २ पख। ३ टेढ़ा।

(३) तीसरे उदाहरण में भी ठीक इसी प्रकार समझो।

(४) चौथे उदाहरण में (प्रश्न)—जल से किसको सुखी कहना चाहिए। (उत्तर)—कोक (चक्रवाक) का हृदय जल से सुखी होता है। (प्रश्न) जिसके पर काले हों उसे क्या करते हैं। (उत्तर) काक (कौवा) का साना और पर श्याम होते हैं। (प्रश्न)—जो रसहीन हैं उन्हें क्या कहना चाहिए? (उत्तर)—जो अरसिक हैं उन्हें काक (हृदय कहना चाहिए। (प्रश्न)—स्त्री किसके लिए सुखरूप है? (उत्तर)—स्त्री कोक (चक्रवाक) के लिए सुखरूप है।

(२) दूसरा

दो०—बहुतै बातन को जहाँ, उत्तर दजै एक।
चित्रोत्तर सो दूसरो, कहैं सुकबि सविवेक॥

१—सो०—गाउ, पीठ पर लेहु, अंगराग करु हार करु।
गृह प्रकास करि देहु, कृष्ण कह्यो 'सारंग' नहिं॥

इसमें राधिकाजी के पाँच वाक्य हैं—(१) गाओ, (२) पीठ पर ले लो, (३) अंगराग कर दो, (४) माला बना दो, (५) घर में प्रकाश कर दो। इन पाँचों का उत्तर कृष्ण ने एक बात कहकर दिया कि 'सारंग नहीं है'। 'सारंग' शब्द अनेकार्थ-वाची है। यहाँ इसके अर्थ यों हैं—(१) वीणा, (२) घोड़ा, (३) चंदन, (४) फूल, (५) दीपक।

२=दो०—को हरि-वाहन? जलधिसुत? काको हाथ जहाज?
चतुर सुकवि उत्तर दियो, एक वचन 'द्विजराज'॥१॥

यहाँ तीन प्रश्न हैं। सबका उत्तर 'द्विजराज' शब्द है—(१) गरुड़, (२) चंद्रमा, (३) ब्राह्मण।

३—दो०—को मरु-भुव पालत सु अब ? को नित थिर जु रहंत ?
यूरुप-पदवी कौन मुख, जानहु प्रिय 'जसवंत' ॥

(प्रश्न)—मरुभूमि का इस समय कौन पालन करता है ?

(उत्तर)—जसवंत=(महाराजा जसवंत सिंह) ।

(प्रश्न)—नित्य कौन स्थिर रहता है ?

(उत्तर)—जसवंत=(यशस्वी पुरुष) ।

(प्रश्न)—यूरुप में कौन सी पदवी मुख्य मानी जाती है ।

(उत्तर)—'ज' और 'स' वाली पदवी अर्थात् जी० सी० (G.C.) ।

४—चौपाई

प्यावहु बारि[1] बिदारहु मृगवर । 'सर[2]' ढिग नाहिं प्रियायहि अवसर

५—दो०— पंथी प्यासो जाय, गदहा रहै उदास क्यों ।
उत्तर दीन बताय, एक बचन 'लोटा[3]' न था ॥

६—दो०—को रन में सनमुख लरत ? को तमरिपु भरपूर ।
उदर-ब्याधि अति कठिन का? सुकवि 'दीन' कह 'सूर'[4] ॥

इसमें तीन प्रश्न हैं । तीनों का उत्तर 'सूर' शब्द से हो जाता है ।

(६१) सूक्ष्म

दो०—सूछम कृति लखि आन की, करै क्रिया कछु भाय ।
ताको नाम बखानहीं, सूछम सब कविराय ॥

विवरण—दूसरे का किया हुआ कोई सूक्ष्म कृत्य (इशारा वा चेष्टा) देखकर इशारे ही से उसका उत्तर देने वा समाधान

१ जल । २ बाण, तालाब । ३ लोटा (बर्तन), जमीन में लेटना । ४ सूर, सूर्य, शूल की पीड़ा ।

कर देने के वर्णन में यह अलंकार होता है। इस अलंकार के लिये यह जरूरी है कि इशारा वा कोई कृत्य दोनों ओर से होना चाहिये। आगे जो 'पिहित' अलंकार है, उसमें और इसमें यह भेद है कि इसमें एक कोई तात्पर्य सूचक क्रिया करेगा, तब दूसरा उसके उत्तर में कोई साभिप्राय चेष्टा करेगा पिहित में एक के आकार से (बिना किसी क्रिया के) उसका छिपा हुआ वृत्तान्त समझकर दूसरा कोई ऐसी क्रिया करेगा जिससे प्रगट हो जाय कि वह उसका छिपाया हुआ वृत्तान्त जान गया। यथा:—

१—चौपाई

सीतहिं सभय देख रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई॥

यहाँ सूपनखा का विकट रूप देखकर सीता जी ने भय सूचक कोई चेष्टा की, तब रामजी ने सीता का समाधान करने के लिये इशारे से लक्ष्मण जी से सूपनखा के नाक-कान काट लेने का इशारा किया।

२—चौपाई

विनय प्रेम बस भई भवानी[1]। खसी[2] माल मूरति मुसकानी॥

यहाँ विनय से भवानीजी सीताजी के मन का अभिप्राय समझ गईं और मुसकाकर अपना तात्पर्य भी जता दिया।

३—दो०—गौतम-तिय गति[3] सुरति करि[4], नहिं परसति पद पानि
मन बिहँसे रघुबंसमनि, प्रीति अलौकिक जानि॥

४—सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे-अटपटे।
बिहँसे करुना-ऐन[5], चितै जानकी लखन-तन[6]।

१ पार्वती। २ खिसकी। ३ दशा। ४ स्मरण कर (पत्थर से स्त्री हो जाना)। ५ घर। ६ ओर।

(६२) पिहित

दो०—जहाँ छिपे पर-वृत्त को, सुभि करै कछु काज।
जते प्रटै जानिबो, सो पीहित कबिराज ॥

विवरण—'पिहित' शब्द का अर्थ है 'आच्छादित'। जहाँ अपना हाल छिपानेवाले व्यक्ति के प्रति कोई ऐसी क्रिया की जाय जिससे जान पड़े कि उसका वह हाल क्रिया करने वाले को ज्ञात हो गया, वहाँ वह अलंकार होता है जैसे सतीजी ने सीता का रूप धरकर रामजी को धोखा देना चाहा वहाँ तुलसीदासजी कहते हैं :—

१—चौपाई—सती कपट जाना सुर स्वामी।
जोरि पानि[1] प्रभु कीन्ह प्रनामू।
पिता समेत लीन्ह निज नामू।

२—दो०—गैरमिसिल[2] ठाढ़ो सिवा अन्तरयामी नाम।
प्रगट करी रिस[3] साह[4] सों, सरजा[5] करि न सलाम ॥

३—दो०—'आनि मिलो अरि' यों गह्यो, चखन[6] चकत्ता भाव।
साहि-तनय सरजा सिवा, दियो मुच्छ पर ताव ॥

४—सवैया

जल को गये लक्खन हैं लरिका परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ[7] बयारि[8] करौं अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े[9]।
'तुलसी' रघुबीर प्रिया स्रम जानिकै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह[10] को नेह लख्यो पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े।

वनगमन समय राह में चलने से थक कर सीताजी ने लक्ष्मणजी को पानी लेने भेजा है। तदनंतर अपनी थकावट

१ हाथ। २ अयोग्य स्थान में। ३ क्रोध। ४ बादशाह। ५ सरबाह, शिवाजी। ६ नेत्रों। ७ पसीना। ८ हवा। ९ तपी भूमि से झुलसे हुए। १० पति।

छिपाते हुये लक्ष्मण के आने तक महाराज से परखने का अनुरोध करती हैं। रामजी ने उनका तात्पर्य समझ लिया और वे एक वृक्ष के नीचे बैठकर बड़ी देर तक अपने पैरों से काँटे निकालते रहे। (चौथा चरण छंद पूर्ति के लिये लिख दिया है, यहाँ पिहित अलंकार की पूर्ति केवल तीन ही चरणों में हो गई है)।

(९३) व्याजोक्ति

व्याज = बहाना, उक्ति = कथन = बहाने की बात।

दो०— छुपिस करि कछु और विधि, कहँ दुरै कै रूप।
मानै सुकबि व्याजोक्ति तेहि, भूपन कहैं अनूप॥

विवरण—किसी खुलती हुई बात वा वृत्तान्त को छिपाने की इच्छा से कोई बहाने की बात कहना। छेकापह्नुति में निषेधपूर्वक छिपाना होता है, इसमें 'वचन' से काम लिया जाता है।

तुलसीदास कृत रामायण में राजा भानुप्रताप और कपटमुनि के प्रसंग में राजा अपने को छिपाने के लिये कहता है—

१—चौपाई

भूप प्रताप भानु अवनीसा[1]। तासु सचिव[2] मैं सुनहु मुनीसा॥

पुष्पवाटिका में जब सीताजी रामछवि देखकर मोहित हुईं और आँख मूँदकर रामजी के ध्यान में मग्न हुईं तब एक चतुर सखी ने अन्य सखियों से सीताजी की मोहावस्था छिपाने के लिये यह कहा है—

२—चौपाई

बहुरि गौरि[3] कर ध्यान करेहू। भूप-किसोरि देखि किन लेहू॥

१ राजा। २ मन्त्री। ३ पार्वती।

३—दो०—सिवा-बैर औरँग-बदन, लगी रहै नित आहि[1] ॥
कवि 'भूषन' बूझे सदा, कहै देत दुख साहि ॥
साहि=(शाही) राज्य ।

४—दो०—कारे बरन[2] डरावने, कब आवत यहि गेह ।
कइ बा[3] लख्यो सखी लखे, लगै थरहरो[4] देह ॥

५—सवैया

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लये हैं ।
'भूषन' ते बिन दौलति ह्वै कै फ़कीर ह्वै देश-बिदेस गये हैं ॥
लोग कहैं इमि 'दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठये[5] हैं' ।
देत रिसाय कै उत्तर यों—'हमहीं दुनिया ते उदास भये हैं' ॥

(६४) गूढ़ोक्ति

दो०—औरै प्रति उद्देश्य करि, कहै और सा बैन ।
ताहि कहत गूढ़ोक्ति कवि, जिनकी मति अति पैन ॥

विवरण—किसी दूसरे को कोई विशेष सूचना देने के अर्थ किसी अन्य-प्रति कोई बात कहना जिससे वह सुन ले और समझ ले । जैसे—

१—चौ०—पुनि आउब यहि बेरियाँ[6] काली[7]—(रामायण)

२—कवित—सुनिये विटप हम पुहुप[8] तिहारे अहैं,
राखिहाै हमैं तो सोभा रावरी बढ़ावैंगे ।
तजिहौ हरषि कै तो बिलग न मानैं कछु,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस पावैंगे ॥
सुरन चढ़ैंगे नर-सिरन चढ़ैंगे पर सुकवि,
'अनीस' हाथ हाथन बिकावैंगे ।

---

१ आह, हाय, शोक । २ रंग । ३ बार । ४ कंपन । ५ ऐसी हालत कर दी है । ६ इसी समय । ७ कल । ८ पुष्प ।

देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे,
काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे ॥

३—दो०—वृष[1] छाँड़ो पर-खेत[2] को, आवत यहि रखवार ।

४—दो०—साँझ सखी मैं जाइहौं, पूजन देव महेस ।

५—दो०—रे हरिना[3] अब भागु द्रुत[4] बारी[5] करु न विहार।
या बारी को देखियत, आवत राखनहार ॥

सूचना—प्रस्तुतांकुर और इसमें यह भेद है कि इसमें कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य सुननेवाले से होता है, जिससे बात कही जाती है उससे नहीं । प्रस्तुतांकुर में कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य उससे होता है जिसके प्रति बात कही जाय, सुननेवाला भी उससे लाभ उठावे तो अच्छा ही है नहीं तो कोई आग्रह नहीं । प्रस्तुतांकुर मुख्यत: उपलभ वर्णन के लिए है, और यह अलंकार सूचनार्थ है ।

(६५) विवृतोक्ति

दो०—छिप्यो अर्थ जो स्लेष स प्रगट करै कविताइ ।
विवृतोक्ति तासों कहैं, सकल सुमति कविराइ ॥

विवरण—शिलष्ट शब्दों द्वारा कहे हुए गुप्त अर्थ को कवि स्वयं खोल दे उस कथन को विवृतोक्ति कहते हैं—(विवृत शब्द का अर्थ खोला हुआ या उद्घाटित है) ।

१—दो०—तजे निकुंजहिं इत कढ़त, जब तब स्याम भुजंग[6] ।
यों कहि सखि सिख दै सजनि, रखो चतुर तिय संग ॥

२—दो०—जो गोरस[7] चाहत लियो, तो आवहु मम धाम ।
यों कहि याचक सो हरिहिं, किय सूचित निज काम ॥

३—दो०—वृष[8] भागो पर-खेत तें, कहत जनाये सैन ।

---

१ बैल, नायक । दूसरे का खेत, नायिका । ३ हरिण, श्रीकृष्ण । ४ शीघ्र । ५ वाटिका, नायिका । ६ सर्प, उपपति । ७ दूध, इंद्रियों का आनंद । ८ बैल, नायक ।

सूचना—किसी किसी का मत है कि विवृत्तोक्ति गूढ़ोक्ति में और गूढ़ोक्ति सूक्ष्म में अंतर्भूत है।

(६६) युक्ति

दो०—उगै क्रिया करि आन को, मरम छिपावन हेत।
युक्ति बतावत ताहि को, सिगरे सुमति निकेत॥

विवरण—पव के तीन अलंकारों में "बचन चातुरी से" कुछ छिपाने की बात कही गई है। अलंकार में कोई मर्म की बात व घटना किसी "क्रिया द्वारा" छिपाने की मुख्यता है इसीलिये यह अलंकार उनसे भिन्न है।

१—दो०—लिखत रही पिय-चित्र तहँ, आवत लखि सखि आन[1]।
चतुर तिया तिहि कर[2] लिखे, फूलन के धनु-बान॥

सूचना—न कहने योग्य बात को किसी चेष्टा द्वारा कर देने में भी यही अलंकार मानना पड़ता है। जैसे एक सज्जन के पास एक गूंगा नौकर था। उस सज्जन ने उससे कहा कि एक पैसा का मुरदासंख (मुर्दासंख) ला दे। वह नौकर पैसा लेकर पंसारी के पास गया और पंसारी के सामने पहले मुर्दा सा होकर लेट रहा, फिर उठकर शंख बजाने की सी मुद्रा दिखलाकर पैसा उसके सामने रख दिया। पँसारी था चतुर, उसने उसकी चेष्टा से बात समझ ली और एक पैसे का मुर्दासंख देकर उसे बिदा किया।

२—दो०—परो मृतक के रूप पुनि, संखाकृत किय सोर।
दियो सु मुरदासंख तेहि, बनिया बुद्धि अथोर॥

तुलसीकृत रामायण में वन में जब ग्राम-स्त्रियों ने सीता जी से उनके साथ राम-लक्ष्मण का संबंध पूछा है तब लक्ष्मण जी के लिए सीता ने कह दिया कि—

---

१ अन्य। २ हाथ

चौपाई

सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन बिधु[2] अंचल ढाँको। पिय तन चितै भौंह करि बाँको॥

पर राम जी का संबंध बतलाते हुए सीताजी ने कुछ चेष्टाओं से ही काम लिया है जिसे गोस्वामी जी ने यों कहा है—

३—चौपाई

खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि॥

यहाँ भी युक्ति अलंकार माना जायगा। इसलिये ऊपर लिखी हुई परिभाषा (यद्यपि प्राचीन है पर) हमारी सम्मति में ठीक नहीं जँचती। हमारे सम्मत्यनुसार यह परिभाषा यों होनी चाहिए—

दो०—मर्म छिपावन हेत वा, मर्म जनावन हेत।
करै क्रिया कछु 'युक्ति' तहि, भाषत सुकवि सचेत॥

'सूक्ष्म' और 'पिहित' अलंकारों से इसमें प्रत्यक्ष विभिन्नता है जो परिभाषा पढ़ने मात्र से प्रगट हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'बरवा रामायण' में इस युक्ति अलंकार का एक और भी बहुत अच्छा उदाहरण लिखा है।

४—बरवै—वेद नाम कहि अंगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लखन के पास॥

वेद=श्रुति=कान। अकास=नाक, नासा।

तात्पर्य यह कि रामजी ने युक्ति से लक्ष्मणजी पर अपना मर्म प्रगट कर दिया कि इसके कान और नाक काट लो।

यदि कोई कहे कि इसमें 'सूक्ष्म' अलंकार है तो ठीक नहीं क्योंकि सूक्ष्म में दोनों ओर से केवल इशारे से ही बात होनी चाहिये। इसमें इशारे से रामजी की आज्ञा है, जिसका

१ सुंदर। २ मुखचंद्र।

पालन लक्ष्मणजी ने कृत्य द्वारा किया है। इस हेतु यहाँ युक्ति अलंकार ही मानना चाहिए।

युक्ति का अर्थ है 'हिकमत', 'चतुराई'। इसलिए हिकमत से अपना कर्म छिपाना वा अपना तात्पर्य प्रगट करना दोनों दशाओं में यह अलंकार हो सकता है। यह जरूरी नहीं है कि मर्म छिपाने ही में हिकमत से काम लिया जाय, अन्यथा नहीं। हाँ हम यह बात मानने के लिए तैयार हैं कि मर्म छिपाने में अधिक बारीक हिकमत की जरूरत होती है।

(१७) लोकोक्ति

दो०—लोकोकति जहँ लोक की, कहनावत ठहराउ।

१—दो०—राजा करै सो न्याउ है, पासा परै सो दाउ।

२—सवैया

फिरि ऐहै न ऐहै यहौ समयौ[१] बहती नदी पायँ पखार[२] लै री।

३—सवैया

भो बिधना[३] प्रतिकूल जबै तब ऊँट चढ़े पर कूकर काटत।

४—चौपाई

बृथा मरहु जनि गाल बजाई[४]। मनमोदकनि[५] कि भूख बुझाई॥

५—चौपाई

देव कहा हम तुमहि गोसाई। ईंधन-पात किरात मिताई[६]॥

६—चौपाई

कर्म-प्रधान बिस्व कर राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा[७]॥

सूचना—अँग्रेजी में इसे ईडियम (Idiom) कह सकते हैं। फारसी और उर्दू में इस अलंकार को "इरसालुल मसल" कहते हैं। स्मरण रखना

---

१ अवसर। २ धो ले। ३ ब्रह्मा। ४ डींग हाँककर। ५ लड्डू। ६ मित्रता ७ खाया, पाया।

चाहिये कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा। प्रसंग बनाकर अंत में लोकोक्ति पर घटित करने से अलंकारता आवेगी।

हिंदी-साहित्य में 'ठाकुर' (बुन्देलखंडी) कवि की कविता में लोकोक्तियों की योजना सराहनीय मानी जाती है।

(६८) छेकोक्ति

दो०—जहाँ परार्थ की कल्पना, लोकउक्ति में होय।
छेकोकति तासो कहैं, कबिद कोबिद सब कोय॥

विवरण—जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग साभिप्राय हो अर्थात् पहले कोई बात कह के उपमान-वाक्य की भाँति लोकोक्ति कही जाय, वहाँ छेकोक्ति होगी।

१—दो०—जे सोहात सिवराज को, ते कवित्त रसमूल।
जे परमेस्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल॥

२—सवैया

दुरावत हौ सहवासिनी[1] सों 'रघुनाथ' बृथा बतियान के जोर।
सुनौ जग में उपखान[2] प्रसिद्ध है चोरन की गति जानत चोर॥

३—सवैया

औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्यांते सिधावै सोऊ बिन कप्पर[3]।
दीनों मुहीम[4] को भार बहादुर छागो[5] सहै क्यों गयंद को भप्पर[6]।
सासताखाँ संग वे हठि हारे जे साहेब सातएँ ठौं के भुवप्पर[7]।
ये अब सूबहु आवैं सिव पर कालिह के जोगी कलींदे[8] को खप्पर॥

४—सवैया

छिति[9] नीर कृसानु[10] समीर अकास ससी रबिहू तन रूप धरै।
अरु जागत सोवतहू 'मतिराम' सो आपनी जोति प्रकास करै॥

---

१ साथी। २ कथा। ३ कपड़ा ४। चढ़ाई। ५ बकरा। ६ झापड़, चोट। ७ स्थान पर, सातवें आसमान पर। ८ तरबूज। पृथ्वी। १० अग्नि।

जग ईस अनादि अनन्त अपार वही सब ठौरन में बिहरै।
सिगरे तन मोहन मोय रहे, तिन ओट पहार न देखि परै।

५—चौपाई

सत्य सराहि कह्यो बर देना। जानेहु लेइहि माँग चबेना[1]॥

(६६) वक्रोक्ति

दो०—जहाँ श्लेष सों चतुर नर, अर्थ लगावै और।
ताहि कहत बक्रोक्ति हैं, सिगर कबि सिरमौर॥

विवरण—वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है—(१) शब्दमूला, (२) अर्थमूला। शब्दमूला वक्रोक्ति की व्याख्या शब्दालंकार में देखो। यहाँ केवल अर्थमूला वक्रोक्ति का वर्णन है।

जहाँ श्लेष से अर्थ का उलट फेर हो जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होगा। जैसे—

१—सवैया

भिक्षुक गो कित को गिरिजे? सु तो माँगन को बलि द्वार गयो री।
नाच नच्यो कित हो भवभाम[2] कलिंदसुता-तट नीके ठयो री॥
भाजि गयो वृषपाल[3] सु जानत? गोसन संग सदा सुरयो री।
सागर-सैल-सुतान के आज परस्पर यों परिहास भयो री।

यहाँ भिक्षुक, नाच नच्यो और वृषपाल शब्द श्लिष्ट हैं। लक्ष्मीजी इन्हीं शब्दों से शिव का इंगित करती हैं और पार्वती जी इन्हीं शब्दों का अर्थ फेर कर विष्णु पर आरोपित कर देती हैं। इससे वक्रोक्ति है। और यह अर्थ-वक्रोक्ति इसलिए है कि यदि हम 'भिक्षुक' के स्थान पर 'मंगन' 'नाच नाच्यो' के स्थान पर 'नृत्य किया' और 'वृषपाल' के स्थान पर 'गोपाल वा पशु-

१ दाना। २ महादेव की पत्नी, पार्वती। ३ महादेव।

पाल' शब्द रख दें तो भी अर्थ और युक्ति ज्यों की त्यों रहेगी। शब्दालंकारवाली उक्तियों के श्लिष्ट शब्दों को इस प्रकार नहीं बदल सकते। इसीसे वे शब्दालंकार के उदाहरण हैं, और यह अर्थालंकार का उदाहरण है।

काकु से जो वक्रोक्ति होती है वह शुद्ध शब्दालंकार है, क्योंकि वहां विलक्षण प्रकार की कंठध्वनि के कारण अर्थ में हेर-फेर होता है, और कंठध्वनि कान से सुनने का विषय है।

(१००) स्वभावोक्ति

दो०—जाको जैसो रूप गुन, बरनत ताही साज।
सुभावोक्ति भूषन तहाँ, कहैं सबै कविराज॥

विवरण—जाति वा अवस्था के अनुसार जिसका जिस समय जैसा प्राकृतिक कृत्य हो वैसा ही कहना स्वभावोक्ति अलंकार है इसके दो प्रकार हैं; (१) सहज, (२) प्रतिज्ञाबद्ध।

(१) सहज

१—दो०—धूरि-धुरेटे[1] धरनि में, धरत लटपटे पाय।
लाल अटपटे आखरन, भाषत ससि हरषाय॥

२—चौपाई

धूसर धूरि भरे[2] तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

३—दो०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय।
भागि चलत किलकात मुख, दधि ओदन[3] लपटाय॥

(कृष्णबानिक)—

४—दो०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक[4] मो उर बसौ, सदा बिहारीलाल॥

---

१ धूल लपेटे। २ मटमैला। ३ भात। ४ वेश।

(तुरंग-स्वभाव)—

५—सार

जित रुख[1] पावै तित पहुँचावै छन आवै छन जावै ।
जमिजमि थमिथमि थिरकि भूमि पर गति नहिं तेहि दरसावै ।
फांदत चंचल चारु चौकड़ी चपलहु के चख झापै ।
भरमत-कुँवर को तुरंग रँगीलो बरनि जाय कहु का पै ।

(कुल-स्वभाव)

६—चौपाई

कहौं सुभाव न कुलहिं प्रसंसी । कालहुँ डरहिं न रन रघुबंसी ।

७—चौपाई

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाई बरु बचन जाई ।

तात्पर्य यह कि जिस समय जिसका जैसा रूप गुण हो उस समय वैसा ही कहना ।

सूचना—किसी का कोई स्वाभाविक गुण साधारणतः प्रगट नहीं होता वैसे ही किसी मनोविकार वा उत्तेजना के समय प्रतिज्ञा रूप से प्रगट होता है । उसे प्रतिज्ञाबद्ध स्वभाव कहते हैं । ऐसे स्वभाव का वर्णन भी स्वभावोक्ति ही कहा जाता है । जैसे—

(२) प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति

१—चौपाई

सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं । यहि तन सतिहिं भेंट अब नाहीं ॥

२—दो०—तोरौं छत्रकदंड[2] जिमि,तुव प्रताप बल नाथ ।
जो न करौं प्रभु-पद-सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ ॥

३—चौपाई

जो सत संकर करैं सहाई । तदपि हतौं रन राम दोहाई ॥

१ मालिक की इच्छा । २ गोबर छत्ता ।

सूचना—ऐसी स्वभावोक्ति शपथ वा असम्भव कथन द्वारा भी प्रगट की जाती है। यथा—

४—कवित्त—मारि टारि डारौं कुंभकर्नहिं बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादैं आजु यों बल अनंत हौं।
कहैं 'पद्माकर' त्रिकूट[1] हू को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन[2] को अंत हौं॥
अच्छहिं निरच्छ[3] कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तो से तिच्छ तुच्छन[4] कों कछुवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावन को तौ मैं हनुमंत हौं॥

५—कवित्त—लोक तिहुँ जारौं सातों सागर सुखाय डारौं,
गिरिन ढहाय डारौं भूमि उलटाऊँ मैं।
रंच में बिदारि डारौं दसों दिगपालन को,
खगन[5] समेत ससि सूरहि गिराऊँ मैं॥
नभ से पताल लैके कितहूँ कहूँ जो नेक,
'रसिक बिहारी' प्रानप्यारी सुधि पाऊँ मैं॥
जानकी न लाऊँ तौ पै छत्री न कहाऊँ,
राम नाम पलटाऊँ धनु-बान न उठाऊँ मैं॥

६—चौपाई

कह हनुमंत जोरि जुग हाथा। लखन सोच जनि कीजै नाथा॥
कहौ चंद्रमहि पट-इव गारी[6]। अबही देहुँ अमी मुख डारी॥
कहौ बिबुध-बैदहिं[7] गहि आनौं। मीचु[8] मारि सब के दुखभानौं[9]॥
कहौं फोरि नभ रबिहिं निकारौं। रिपु तेहि द्वार राहु बैठारौं॥

१ लंका के तीन शिखर (लंका, सुवेला, निकुंभिला)। २ राक्षस। ३ रक्षाहीन। ४ अत्यंत साधारण। ५ पक्षी। ६ निचोड़कर। ७ अश्विनी कुमार। ८ मृत्यु। ९ नष्ट करूँ।

कहौ ब्रह्म हरि हर कहँ आनो। अमर अमर बुलवाऊँ बानो॥
कहौ पाताल जाय हित नागा। आनौं अमी-कुंड यहि जागा[1]॥
कहौ देहुँ निज देहै त्यागी। अबहीं उठौं लखन घट[2] जागी॥
दो०—जो कछु तव मन में रुचै, सो मोहि आयसु होय॥
नाथ-सपथ छिन में करौं, प्रभु प्रताप बल सोय॥
—(विश्राम-सागर)

(१०१) भाविक

दो०—जहाँ भूत भावी अरथ, बरनत कवि परतच्छ।
अलंकार भाविक कहत, ताको सब मति स्वच्छ॥

(१) भूतार्थ प्रत्यक्ष वर्णन

१—दो०—जाकी छवि को देखि कैं, होत मनहिं बिसराम।
चित्रकूट में जानिये, अबहूँ राजत राम॥

२—कवित्त—अजौं भूतनाथ[3] मुंडमाल लेत हरषत,
भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है।
'भूषन' भनत अजौं काटे करवालन के,
कारे कुंजरन[4] पर कठिन कराह[5] है॥
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हों कतलाम[6] दिल्ली-दल को सिपाह[7] है।
नदी रनमंडल रुहेलन रुधिर अजौं,
अजौं रविमंडल रुहेलन की राह है॥

३—सवैया

आवत हौं जमुना तट को मोहिं जानि परे बिछुरे गिरधारी।
जानति हौं सखि आवन चाहत कुंजन तें कढ़ि कुंजबिहारी।

---

१ जगह। २ शरीर में। ३ महादेव। ४ हाथी। ५ पीड़ा की आह। ६ संहार। ७ सेना।

४—दो०—जहाँ जहाँ ठाढ़ो लख्यो, स्याम सुभग सिरमौर।
उतहूँ बिन छिन गहि रहत, दृगन अजौं वह ठौर॥

५—दो०—दलन[1] दबाई हो जु तुम, हनत दसानन-गात।
लखहु राम वह आज लौं, धक धक धरती होत॥

सूचना—इसे अँगरेजी में ऐतिहासिक वर्तमान (Historic Present) कहते हैं। अजौं, अजहुँ, अब भी इसके वाचक जान पड़ते हैं।

(२) भावी अर्थ प्रत्यक्ष वर्णन

१—दो०—जनि चलाइये चलन की, चरचा स्याम सुजान।
मैं देखति हौं याहि यह, बात सुनत बिन प्रान॥

२—दो०—गहन बिपिन गिरि गैल के, जे गढ़ दृढ़ भरपूर।
राम रावरो दल चलत, देखत हौं चकचूर॥

३—दो०—कहो जाय क्यों अलि भलो, छबि प्रति-अंग अनूप।
भावी भूषन भारहू, लसत अबहिं तव रूप॥

(१०२) उदात्त

दो—संपति की अत्युक्ति को, कोविद कहत 'उदात्त'।
जहँ उपलक्षन बड़न को, ताहू की यह बात॥

(१) संपति की अत्युक्ति

१—चौपाई

जेहि तिरहुति[2] तेहि समै निहारी। तेहि लघु लगे भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

२—दो०—जगत-जनक[3] बरनै कहा, जनक-नगर को ठाट।
सहज[4] महल हीरन बने, हाट बाट करहाट[5]॥

---

१ सेना। २ जनक का राज्य। ३ संसार का पिता, ब्रह्मा। ४ साधारण। ५ कमलदंड।

३—दो०—सुबरनपुर[1] मनिमय महल, रहो मह्वा छबि फैलि।
चौकी चिंतामनिन की, बैठी कंचन-बेलि॥

४—चौपाई

नंद द्वार जे माँगन आये। बहुरो फिर याचक न कहाये॥
लक्ष्मी सी जहँ मालिन बोलै। बंदनमाला बाँधत डोलै॥
द्वारबुहारत फिरत अष्टसिधि। कौरन[2] सथिया[3] चीतत[4] नवनिधि॥

(२) महाजनों की उपलक्षणता

संसर्ग जन्य बड़ाई अर्थात् बड़ों के संबंध से बड़ाई की प्राप्ति।

१—दो०—भूषित संभु स्वयंभु[5] सिर, जिनके पद की धूरि।
हठ करि पाँव झँवावतीं[6], तिन सों तिय मगरूर[7]॥

२—दो०—यह अरराय[8] वह है, जहाँ मानि पिता के बैन।
बसत राम एकहि कियो, हनन[9] निसाचर सैन॥

३—दो०—खरदूषन त्रिसिरा-सिरन, तजि दूषन जिहि ठौर।
रघुकुल-भूषन जे करयो, हर-भूषन[10] निज जोर॥

४—दो०—या पूना में मति टिको, दीन्हों सिवा सजाय।

(१०३) अत्युक्ति

दो०—योग्य व्यक्ति की योग्यता, अति करि बरनी जाय।
भूषन सो अत्युक्ति है, समुझैं जे मतिराय॥
सुंदरता अरु सूरता, अरु उदारता भाव।
या भूषन में कहत ही, उर उपजै अति चाव॥

---

१ सोने का नगर। २ फाटक के दाहिने-बाँएँ का स्थान। ३ स्वस्तिक। ४ चित्रित करती हैं। ५ ब्रह्मा। ६ पैर को झाँवा (एक प्रकार की ईंट) से रगड़वाना।,७ मानिनी। ८ वन। ९ मारना। १० महादेव का गहना (मुंडमाल)।

१—(सुंदरता)

१—दो०—भूषन-भार सँभारिहै क्यों, यह तन सुकुमार।
सूधे पाँय न धर[1] परत, सोभा-ही के भार॥

२—दो०—सुमनमयी[2] महि में करे, जब राधिका विहार।
तब सखियाँ सँग ही फिरें, हाथ लिये कचभार[3]॥

२—(शूरता)

१—चौ०—जासु त्रास[4] डर कहुँ डर होई।

२—कवित्त—जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन[5] दाटियतु है।
प्रलै कैसे धाराधर[6] धमकै नगारा धूरि-
धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है॥
भूषन भनत भुवगोल कोल[7] हहरत,
कहरत[8] दिग्गज मगज[9] फाटियतु है।
कीच[10] से कचरि जात सेष के असेष फन,
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है॥

३—हरिगीतिका

कह 'दास तुलसी' जबहि प्रभु सर-चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ[11] अहि महि सिंधु भूधर[12] डगमगे॥

१—दो०—इते उच्च सैलन[13] चढ़े, तुव डर अरि सकलत्र[14]।
तोरत कंपित करन सों, मुकता समुझि नछत्र॥

४—(उदारता)

१—दो०—बारिद लौं बसु[15] बरसि के, कबिकुल किये कुबेर।
निकट जो होतो मेरु तो, देत न होती देर॥

१ पृथ्वी। २ पुष्पयुक्त। बालों का बोझ। ४ आतंक, भय। ५ शत्रु। ६ बादल। ७ शूकर। ८ कराहते हैं। ९ मस्तक। १० कीचड़। ११ कच्छप। १२ पर्वत १३ पर्वत। १४ स्त्री-पुत्र सहित। १५ धन।

२—दो०—जाचक तेरे दान तें, भये कलपतरु भूप।

३—सवैया

मैं हौं अनाथ अनाथन में तजि तेरोइ नाम न दूजो सहायक।
मंगन तेरे के मंगन ते कल्पद्रुम आजु है माँगिबे लायक॥

४—कवित्त—संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै,
ताहि तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना।
'कहै पद्माकर' सु हेम[1] हय[2] हाथिन के,
हलके[3] हजारन के वितर[4] बिचारै ना॥
एते गज बकस[5] महीप रघुनाथराव,
याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन[6] को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

५—दो०—गनत न कछु पारस पदुम[8], चिंतामनि का ताहिं।
निदरत मेरु कुबेर को, तुव जाचक जग जग माहिं॥

सूचना—केवल सुंदरता, शूरता और उदारता ही नहीं वरन् और वस्तुओं में भी अत्युक्ति हो सकती है। यथा—

४—(प्रेमात्युक्ति)

१—दो०—कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात॥

५—(विरहात्युक्ति)

१—दो०—गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोस[9] अपार।
डगर-डगर नै[10] ह्वै रही, बगर-बगर[11] के बार[12]॥

इसी प्रकार और भी समझ लो। अत्युक्ति, सब वस्तुओं की हो सकती है, परंतु सुंदरता, शूरता और उदारता की

१ सोना। २ घोड़ा। ३ समूह। ४ खंडित करना। ५ हाथियों के झुंड का दानी। ६ गणेश। ७ देखभाल कर रही है। ८ पद्म (एक-निधि)। ९ अशोष्य। १० नदी। ११ घर-घर। १२ दरवाजा।

अत्युक्ति अत्यंत आनंददायक होता है, इसीसे परिभाषा में केवल इन्हीं के नाम गिनाये गये हैं।

सूचना—इस अलंकार को अँगरेजी में 'एग्जैजरेशन' (Exaggeration) और फारसी तथा उर्दू में 'मुबालिगा' कहते हैं।

(१०४) निरुक्ति

दो०—नामन को निज बुद्धिबल कहिये अर्थ बनाय।
ताको कहत निरुक्ति हैं भूषन जे कविराय॥

विवरण—जहाँ किसी नाम का कोई कल्पित अर्थ किया जाता है उसे निरुक्ति कहते हैं। जैसेः—

१—दो०—कविगन को दारिद्द-द्विरद[1], यारी दल्यो अमान[2]।
याते श्रीसिवराज को, सरजा[3] कहत जहान॥

२—दो०—हर्यो रूप इन मदन को, याते भो सिव[4] नाम।
लियो बिरद सरजा[3] सबल, अरि-गज दलि संग्राम॥

३—दो०—छीनी छवि मृग मीन की, कहाँ कहाँ की रीति।
नामहिं में नहिं नीति, को करैं नयन[5] ये नीति॥

४—दो०—विरही नर-नारीन को यह रितु चाय चबाय।
'दास' कहै याको सरद[6] याही अर्थ सुभाय॥

५—दो०—रखत न हित कहुँ काहु सों, बन-बन करत बिहार।
यहै समुझि विधि ने कर्यो, मोहन नाम तुम्हार॥

६—दो—तनु विचित्र कायर[7] वचन, अहि-अहार मन घोर।
'तुलसी' हरि भये पच्छधर[8], ताते कह सब मोर[9]॥

---

१ दारिद्रय रूपी हाथी। २ अपरिमाण। ३ शिवाजी की उपाधि सरजाह, सिंह (अ० शरजः)। ४ शिवाजी, महादेव। ५ नेत्र, जिनमें नीति न हो (नय+न)। ६ कष्टदायक, (सर=बाण+द)। ७ दीनतायुक्त। ८ पंख धारण करनेवाले, पक्ष लेनेवाले। ६ मयूर, मोर।

(१०५) प्रतिषेध

दो०—जहाँ जु वस्तु प्रसिद्ध को, प्रगटहिं करै निषेध।
कबि कोबिद तासों कहत, अलंकार प्रतिषेध ॥

१—दो०—जीत्यो जाहि बिरोध करि, सो बिरोध में नाहिं।
मैं हौं रावन राम तुअ, का समुझ्यौ मन माहिं ॥

२—सवैया

बेगि चलो 'रसखान' बलाय ल्यौं क्यौं अभिमान तें भौंह मरोरत।
प्यारे पुरंदर[1] राय न प्यारी अबै पल आधिक में ब्रज बोरत ॥

३—दो०—छुटी न गाँठि जु राम सों, तियन कह्यो तेहि ठाहिं।
सिय-कंकन को छोरिबो, धनुष तोरिबो नाहिं ॥

४—चौपाई

निपटहि[2] द्विज करि जानेसि मोहीं। मैं जस बिप्र सुनावहुँ तोहीं ॥

५—चौपाई

जीतेहु जे भट संगर[3] माहीं। सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं ॥

६—दो०—अंगद कह दसवदन सों, यह न चोरिबो नारि।
नर बानर सों राम सग, प्रान हरन है रारि[4] ॥

सूचना—शुद्धापह्नुति, पर्य्यस्तापह्नुति और प्रतिषेध में भेद यह है कि (१) शुद्धापह्नुति में सत्य वस्तु को छिपाकर उसके स्थान में उसी के समान किसी दूसरी वस्तु की कल्पना की जाती है। (२) पर्य्यस्तापह्नुति में एक वस्तु का गुण किसी दूसरो वस्तु में आरोपित किया जाता है। (३) प्रतिषेध में प्रसिद्ध वस्तु का निषेध होकर मनमानी कल्पना की जाती है।

(१०६) विधि

दो०—जहाँ सिद्धऊ अर्थ को, करिये बहुरि बिधान।
अलंकार बिधि ताहि सों, कहत सबै मतिमान ॥

---

१ इंद्र। २ अत्यंत, सिर्फ। ३ युद्ध। ४ युद्ध।

१—चौपाई

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।

२—चौपाई

जाके सुमिरन ते रिपु-नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

३—चौ०—सेवक सो जो करै सेवकाई।

४—सवैया

दीनदयाल हरो हमरो दुख तौ तोहि दीनदयाल सराहौं।

५—दो०—कोकिल है कोकिल तवै, रितु में कहिहै टेर।

६—दो०—मुरली मुरली होति है, मोहन के मुख लागि।

पुनः उसका विधान किया है।

सूचना—'निरुक्ति' में मनमाना अर्थ कल्पित किया जाता है। 'विधि' में सिद्धार्थ ही पुनः कहा जाता है।

(१०७) प्रमाण

प्रतक्ष कहुँ[१] अनुमान[२] कहुँ, कहुँ उपमान[३] दिखाय।
कहूँ बड़न की बात[४] लै, आत्मतुष्टि[५] कहुँ पाय॥
अनुपलब्धि[६] संभव[७] कहूँ, कहुँ, लखि अर्थापत्ति[८]।
कवि प्रमान भूषन कहैं बात जो बरनैं सत्ति॥

विवरण—'सत्य कथन' को 'प्रमाण' कहते हैं। इसके आठ भेद हैं। यथाः—

(१) प्रत्यक्षप्रमाण

दो०—इन्द्रिय अरु मन ये जहाँ बिषय आपनो पाय।
ज्ञान करैं, प्रत्यक्ष तेहि कहैं सकल कबिराय॥

१—छप्पय—सर सर हंस न होत बाजि गजराज न थर थर।
तरु तरु सुफल न होत नारि पतिब्रता न घर घर॥

तन तन सुमति न होति मलैगिरि[1] होत न बन बन।
फन फन मनि नहिं होत मुक्तजल[2] होत न घन घन[3]॥
रन रन सूर न होत हैं जन जन होत न भक्त हरि।
'कवि नरहरि' निरख कवित्त कहि सब नर होत न एकसरि[4]॥

२—चौपाई

तात जनक तनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकास फिरति फुलवाई[5]॥

३—कवित्त—कुल को कुलीन होय उपकार लीन होय,
पंडित प्रवीन होय दोष सब खोई है।
उदित उदार होय, पूर परिवार होय,
चाबुक सवार होय बेद बुध जोई है॥
बल को निधान होय बोल को प्रमान होय,
सब गुन थान होय सील सत सोई है।
सूर होय बीर होय सुंदर शरीर होय,
लच्छिमी न होय ताहि पूछत न कोई है।

सूचना—इन उदाहरणों में कही हुई बातें सब कोई जानता है कि प्रत्यक्ष सत्य मानी जाती हैं।

(२) अनुमान प्रमाण

दो०—चिन्हहि लखि अनुमान बल वस्तुहिं लीजै जानि।
तहँ अनुमान प्रमान सब भूपन कहैं बखानि॥

१—दो०—नाचि अचानक हीं उठे, बिन पावस[6] बन मोर।
जानति हौं नंदित करी, यहि दिसि नंदकिसोर॥

२—दो०—यह पावस तम साँझ नहिं, ह्वै दुचिती मति भूल।
कोक असोक बिलोकिये, रह्यो कोकनद[7] फूलि॥

१ चंदन। २ मुक्ता उत्पन्न करनेवाला (स्वातिजल)। ३ बादल ४ एकसे। ५ पुष्प बाटिका। ६ वर्षा। ७ लाल कमल।

३—दो०—धुवाँ देखि सब कोउ करत, आगी को अनुमान।
४—दो०—जिन लोखरी[1] मारी नहीं, कहा मारिहै सेर ?

(३) उपमान प्रमाण

दो०—उपमा के सादृस्य ते, बिन देखे उपमेय।
जानि परै, उपमान सो, अलंकार है ज्ञेय॥

१—दो०—सहस घटन में लखि परै, ज्यों एकै रजनीस[2]।
त्यों घट घट में 'दास' हैं, प्रतिबिंबित जगदीस॥

२—दो०—सो रोहिनि जानहु सखे जो है सकट[3] समान।

(४) बड़ों की बात वा शब्द प्रमाण

दो०—जहाँ सास्त्र अरु बड़न को, बचन प्रमाण बखान।
सोई शब्द प्रमान है, भाषत सुकवि सुजान॥

१—छप्पय—मरै सूम सरदार मरै वह कट्टर टट्टू[4]।
मरै हठीली नारि मरै वह पुरुष निखट्टू।
ब्राह्मन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग[5] लगावै॥
बेनियाउ[6] राजा मरै नींद धड़ाधड़[7] सोइये।
'बेताल' कहै बिक्रम सुनो इनके मरे न रोइये॥

२—पद

देखु बिचार सार का साँचो कहा निगम निजु[8] गायो।
भजहिं न अजहुँ समुझि 'तुलसी' तेहि जेहि महेस मन लायो॥

३—सो०—तुम जु हरो पर-बाल[9], तातें हम यहि हाल में।
नाथ बिदित सब काल, जो हन्नति सो हन्यते॥

४—चौपाई

बेद पुरान संत अस गाथा। जो जस करै सो तस फल पावा॥

---

१ लोमड़ी। २ चंद्रमा। ३ गाड़ी। ४ घोड़ा। ५ कलंक। ६ अन्यायी
७ निश्चिंत। ८ निश्चय। ९ दूसरे की स्त्री।

(५) आत्मतुष्टि प्रमाण

दो०—अपने अंग स्वभाव को, दृढ़ विस्वास जहाँहि।
आतमतुष्टि प्रमान कबि, कोबिद कहैं तहाहिं॥

दो०—मोहि भरोसो रीझिहौ, उझकि[1] झाँकि इक बार।
रूप रिझावनहार वह, ये नैना रिझवार[2]॥

२—चौपाई

मोहि अतिसय प्रतीत जिय केरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥

(६) अनुपलब्धि प्रमाण

दो०—जानि परै नहिं बस्तु कछु, अनुपलब्धि है सोय।

विवरण—जहाँ कोई कारण नहीं मिलता वहाँ किसी कल्पित कारण को मान लेते हैं. उसे ही अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं।

सूचना—नीचे कहे हुए छंद की घटनाओं का जब कोई मुख्य कारण समझ में आया तब कवि ने कह दिया कि "अदृष्ट बली है" ऐसे ही प्रमाण को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं।

१—सवैया

बालि बिंध्यो बलिराज बँध्यो, कर सूली[3] के सूल कपाल-थली है।
काम जर्यो जग, काल[4] पर्यो बँदि सेप धर्यो विप हाल[5]हली[6] है
सिंधु मथ्यो कल काली नथ्यो कहि 'केसव' इंद्र कुचाल चली है।
रामहु की हरी रावन बाम चहूँ जुग एक अदृष्ट बली है॥

(७) संभव प्रमाण

दो०—जहँ संभव है वस्तु को, संभव जानो ताहि।

विवरण—जहाँ किसी बात का होना संभवित हो सकता हो, उसे संभव प्रमाण कहते हैं। इसमें यह जरूरी नहीं है कि

१ उचककर। २ मोहनेवाले। ३ महादेव। ४ यम (रावण कैदखाने में)। ५ शराब। ६ बलराम।

वह बात होवे भी अवश्य, केवल उसकी संभावना मात्र से मतलब है। (संभावना अलंकार, देखो पृष्ठ २१२)

१—दो०—सुनी न देखी तुव सरिस, हे वृषभानुकुमारि।
जानत हौं कहुँ होयगी, बिपुला[1] धरनि बिचारि॥

२—दो०—उपजैंगे ह्वैहैं अजौं, हिंदूपति से दानि।
कहिय काल निर अवधि[2] लखि, बड़ी बसुमती जानि॥

३—कवित्त—'ठाकुर' कहत कछु कठिन न जानो याहि,
हिम्मत किये ते कहो कहा न सुधरि जाय॥
चारि जने चारिहू दिसा ते चारों कान गहि,
मेरु को हलाय कै उखारैं ता उखरि जाय॥

(८) अर्थापत्ति प्रमाण

दो०—जहाँ अर्थ में अर्थ को, और जोग ते थाप।
अर्थापत्ति प्रमान तहँ, कहैं सुकबि सह दाप॥

विवरण—जहाँ किसी अर्थ को किसी और ही योग से स्थापित किया जाय।

१—दो०—इतो पराक्रम करि गयो, जाको दूत निसंक।
कंत कहा दुस्तर[3] कहा, ताहि तोरिबो लंक॥

२—चौपाई

पिय तेहि ते जीतब संग्रामा। जाके दूत केर अस कामा॥

(१०८) हेतु (द्विविध)

सूचना—इस 'हेतु' अलंकार में 'काव्यलिंग' के विरुद्ध केवल उत्पादन हेतु का ही वर्णन होता है।

(प्रथम)

दो०—कारज कारन संग ही जहँ बरनौं इक ठौर।
प्रथम हेतु तासों कहत जिनकी मति सिरमौर॥

---

१ विस्तृत। २ निस्सीम। ३ कठिन।

१—सवैया

भा जगी 'लछिराम' दुहून में आये तरंग सुप्रीति भली के।
रामसुरूप निहारत ही उर-मोद बढ़े मिथिलैस लली[1] के॥

२—चौपाई

ज्यो अरुन[2] अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥

३—चौपाई

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा[3]॥

४—दो०—अरुनोदय सकुचे कुमुद, उड़ गन ज्योति मलीन।

५—चौपाई

ज्यो भानु बिन श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा॥

६—दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम[4], रामहिं भानु-समान।
पुरुष बचन सुनि काढ़ि असि[5] बोला अति खिसियान॥

(दूसरा)

दो०—कारन कारज ये जबै लसत एकता पाय।
हेतु अलंकृत दूसरो ताहि कहैं कबिराय॥

विवरण—जहाँ कारण ही को कार्यरूप वर्णन करते हैं, वह दूसरा 'हेतु' है।

१—दो०—मेरो रिद्धि समृद्धि है, तुव दाया रघुनाथ।

२—दो०—परम पदारथ चारहू, श्रीराधा-गोबिंद।

३—दो०—कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति यदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार॥

४—दो०—मोहिं परमपद मुक्ति सब, तो पदरज घनस्याम।
तीन लोक को जीतिबो, माहिं बसिबो ब्रजग्राम॥

---

१ जनक की पुत्री, सीता। २ सूर्य। ३ क्षुब्ध हुआ, चंचल हो गया। ४ जुगुनू। ५ तलवार।

(तीसरा पटल)

उभयालंकार

दो०—भूषन इक तें अधिक जहँ, सो उभयालंकार।
संसृष्टि, रु संकर तहाँ, उभय भेद निरधार॥
तिल तंदुल के न्याय सों, है संसृष्टि बखान।
नीर-छीर के न्याय सों, संकर कहत सुजान॥

विवरण—जहाँ एक से अधिक अलंकार आ जाते हैं, ऐसे मिश्रण को उभयालंकार कहते हैं। इस मिश्रण के दो भेद हैं—

(१) संसृष्टि, (२) संकर।

(१) संसृष्टि

दो०—जुदे-जुदे भासैं सकल, अपने-अपने ठाम।
तिल तंदुल की रीति करि, सो संसृष्टि सुनाम॥

विवरण—जैसे तिल और चावल मिला देने से भी अपने अपने रंग से प्रत्यक्ष ही अलग-अलग देख पड़ते हैं, उसी प्रकार मिले हुए अलंकार यदि मिले हुए होने पर भी अपनी सिद्धि के लिये एक दूसरे की अपेक्षा न रखते हों तो वह मिश्रण संसृष्टि कहलावेगा। इसके तीन भेद हो सकते हैं:—(१) शब्द + शब्द, (२) शब्द + अर्थ, (३) अर्थ + अर्थ।

(१) शब्दालंकार + अर्थालंकार

शब्दालंकार के वर्णन में 'तुरमुती तहखाने' वाला कवित्त देखिये। उसमें छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वृत्यनुप्रास सब पृथक् पृथक् दिखाई पड़ते हैं।

(२) शब्दालंकार+अर्थालंकार

१—दो०—लसत मंजु मुनि-मंडली, मध्य सोय रघुनंद।
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानंद॥

इसमें पूर्वार्द्ध में 'म' अक्षर का अनुप्रास है। 'जनु' शब्द से उत्प्रेक्षा प्रगट है। मुनि-मंडली, सोय रघुनंदन कहके पुनः क्रम से ज्ञान-सभा, भक्ति और सच्चिदानंद क्रम से कहकर क्रमालंकार स्पष्ट किया गया है।

२—दो०—दंड यतिन कर[1] भेद जहँ, नरतक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचंद्र के राज॥

यहाँ नर्तक और नृत्य में 'न' का और रामचंद्र और राज में 'र' का अनुप्रास है और कुल दोहा से परिसंख्या अलंकार सिद्ध है।

(३) अर्थालंकार+अर्थालंकार

३—दो०—ससि सो उज्ज्वल मुख लसै, खंजन हैं मनु नैन।
अधर नासिका बिंब सुक, मधुर सुधा से बैन॥

यहाँ प्रथम चरण में पूर्णोपमा, दूसरे में उत्प्रेक्षा, तीसरे में क्रम और चौथे में पुनः पूर्णोपमा, प्रत्यक्ष और अलग अलग स्पष्ट देखे जाते हैं।

४—सो०—नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करो सो मम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन॥

यहाँ प्रथम दो चरणों में लुप्तोपमा, और चौथे चरण में पर्यायोक्ति अलंकार है।

(२) संकर

दो०—पय पानी की रीति तें होयँ परस्पर लीन।
ता कहँ संकर नाम दै, भाषत सुकबि प्रवीन॥

---

१ हाथ।

विवरण—दूध पानी की तरह से मिले हुए (पृथक् न होने योग्य) अलंकार हों उस मिश्रण को 'संकर' कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं (१) अगांगी भाव, (२) समप्राधान्य, (३) सन्देह और (४) एक वाचकानुप्रवेश वा 'एक पद संकर'

(१) अंगांगी भाव

दो०—बीज बृक्ष के न्याय करि, इक इक को अँग होय।
सो अंगागी भाव है, कबि गुलाब मति जोय ॥

विवरण—जहाँ बीज वृक्ष के न्याय से मिले हुए अलंकार हों उसे 'अंगांगी भाव संकर' कहते हैं अर्थात् जहाँ एक के बिना दूसरा सिद्ध ही न हो सके, जैसे बिना बीज के वृक्ष और बिना वृक्ष के बीज नहीं हो सकता। यथा :—

१—दो०—हलत पवन ते तरुन तर, दीखत छाँह अचूक।
ससि-हरि ने तम-गज[1] हनो, मानो ताके टूक ॥

पवन से हिलते हुए वृक्षों के नीचे जो छाया देख पड़ती है वह मानो शशिसिंह के मारे हुए तमगज के टुकड़े हैं।

यहाँ 'मानो' शब्द से उत्प्रेक्षाअलंकार मुख्य है, सो अंगी है और शशिसिंह तथा तमगज 'अभेद रूपक' उसके अंग हैं।

२—दो०— तुव अरि तियगन बन भजत, लूटी सब बटमार।
अधर-बिंब-दुति गुंज गुनि, हरे न मुकुता-हार ॥

तेरे शत्रुओं की स्त्रियों को बन में भागते समय लुटेरे भीलों ने लूट लिया, परंतु ओठों की दुति से लाल हुए मोतियों को गुंजा समझ कर मोतियों के हार न लूटे।

यहाँ ओठों के संग से मोती गुंजा से हो गये यह तद्गुण अलंकार है, मोतियों के हार को गुंजा का हार समझ कर लुटेरों

१ अंधकार रूपी हाथी।

ने नहीं लूटा, इसमें भ्रांति अलंकार है। यहाँ तद्गुण के जोर से भ्रांति की सिद्धि है, और भ्रांति के जोर से तद्गुण की सबलता प्रगट हुई। अतः अंगांगी भाव संकर है।

३—पिहित अलंकार के वर्णन में 'राम जानकी' वाला सवैया देखो। वहाँ तीन चरणों तक 'पिहित' अंग भाव है, तब चौथे चरण में 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अंगी भाव है। (पृष्ठ २४४, सं० ४)

४—चौपाई

साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल[1] जासू।
जो सहि दुख पर छिद्र[2] दुरावा। वंदनीय जेहि जग जस पावा॥

इसमें श्लेषालंकार उपमा का अंग है। साधुचरित कपास सरिस है यह उपमा है। उसके फल निरस, बिसद और गुणमय हैं। इन तीन विशेष गुणों के श्लिष्ट अर्थ साधु-चरित और कपास फल दोनों पर लगते हैं तब उपमा सिद्ध होती है। छिद्र शब्द भी श्लिष्ट है।

(२) समप्राधान्य

दो०—दिन दिनपति के न्याय करि सँग प्रगटै सँग भासु।
नाम सु समप्राधान्य है कवि गुलाब कह तासु॥

विवरण—दिन और सूर्य की तरह साथ ही प्रगटें और साथ ही लख पड़ें वह समप्राधान्य संकर है। यथा—

१—दो०—रघुपति कीरति कामिनी, क्यों कह 'तुलसीदासु'।
सरद प्रकास अकास छबि, चारु चिबुक तिल जासु॥

इसमें क, स और च के अनुप्रास, प्रतीप और रूपक दोहा पढ़ते ही भासित हो जाते हैं—

१ गुणों से युक्त, डोरों से युक्त। २ दूसरे का दोष, छेद।

२—पद—मेये सीता राम नहिं भजे न संकर गौरी ।
जनम गँवायो बादि[१] ही परत पराई पौरी[२] ॥

इसमें स, र और प के अनुप्रास और दृष्टांत एक साथ ही भासते हैं।

(३) संदेह

एक मिटाये दूजो भासे। दूजो त्यागे प्रथम प्रकासे ॥
बोध न होय कौन को लीजै। तहँ संकर संदेह भनीजै ॥

विवरण—जहाँ पर दो वा अधिक अलंकार लख पड़ें, पर निश्चय न हो सके कि किसका ग्रहण करें वा किसका त्याग करें। एक के लिए न तो कोई साधक प्रमाण हो और न दूसरे के लिये निषेध वा बाधक वाक्य हो। ऐसे मिश्रण को 'संदेह-संकर' कहते हैं।

१—चौपाई

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन नलिन[३] भरे जल सिय के॥

इसमें 'लोचन नलिन' में उपमा मानें वा रूपक मानें ऐसा संदेह होता है। मनोहर पिय के मृदुवचनों से दुःख होना-भले उद्योग से बुरा फल होना विषम अलंकार है, अथवा लोचन नलिन भरे जल सिय के, इस कार्य के मिस सीताजी के दुःख रूपी कारण का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा है। न तो किसी के खंडन की कोई सामग्री इसमें है और न मंडन ही की। अतः निश्चय नहीं कह सकते कि कौन अलंकार मानना चाहिये।

२—दो०—जैसे निर्मल काँति अरु, रतन भरो गंभीर।
तैसे बिधि या जलधि को, क्यों न किया मधुनीर[४]॥

१ व्यर्थ। २ दरवाजा। ३ कमल। ४ मीठा जलवाला।

यहाँ समुद्ररूप प्रस्तुत में अप्रस्तुत की प्रतीति होने से क्या यह समासोक्ति है, वा समुद्ररूप अप्रस्तुत द्वारा उसके समान गुणवाले प्रस्तुत किसी धनी पुरुष की प्रशंसा प्रतीत होने से क्या यह 'अप्रस्तुत प्रशंसा' है ऐसा संदेह होने से यह 'संदेह संकर' है।

३—दो०—नयनानँददायो लसत, यह ससि बिंब प्रकास।
अजहुँ न तम बिनस्यो कहा ? जेहि रोकी सब आस॥

इसमें रूपकातिशयोक्ति रूपक, दीपक, तुल्ययोगिता और समासोक्ति इत्यादि कई एक अलंकारों का संदेह हो सकता है।

(४) एकवाचकानुप्रवेश

दो०—न्याय नृसिंहाकार करि एकहि पद के माहिं।
युग भूषन, इकबाचकानुप्रवेस कहि ताहिं॥

विवरण—नृसिंहाकार न्याय से (एक ही देह में मनुष्य और सिंह की आकृतिवत्) जहाँ एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों हों वहाँ एक वाचकानुप्रवेश (वा संक्षेप से 'एकपद संकर' कहा जाता है। जैसे—

१—दो०—हे हरि दीन दयाल हौ, मैं माँगौं सिर नाय।
तुव पद-पंकज आसरे, मन-मधुकर लगि जाय॥

इसमें 'पद-पंकज' में तथा 'मन-मधुकर' में शब्दालंकार अनुप्रास और अर्थालंकार रूपक का संकर है।

२—सवैया

केतकि[1] धूरि धरे सिर ऊपर गुंजत मंजु सुकुंजन में।
दान[2] भरै मधुनीर, समीर जँजीर सु आवत है छुन में॥

१ केवड़ा। २ मद।

मत्त छुटै नव पंकज थान ते दर्प अखंड करे मन में।
तोरि कै सौरभ-साँकर[1] को यह भृंग-मतंग फिरै बन में॥

यहाँ 'भृंग मतंग' इस एक ही पद में रूपक और वृत्यनुप्रास का संकर है।

३—चौपाई

सोइ जल अनल[2] अनिल[3] संघाता[4]। होय जलद जगजीवन दाता॥

यहाँ जलद, जग, जीवनदाता में अनुप्रास भी है और जीवन शब्द अर्थश्लेष होने से अर्थालंकार भी है क्योंकि जीवन का अर्थ है 'पानी' और 'प्राण'।

सूचना—थोड़ा सा नमूने के तौर पर लिख दिया गया। अब अलंकारों के सब प्रकार के 'संकरों' के उदाहरण एकत्र दिखलाना असंभव ही है।

(३) रसवत् अलंकार

यद्यपि कितने ही कवि सात प्रकार के 'रसवत्' अलंकार भी मानते हैं, पर हम उन्हें अलंकार नहीं मानते। इसीसे उन्हें हमने नहीं लिखा।

---

१ सुगंधरूपी सिकड़ी। २ आग। ३ वायु। ४ संमिश्रण।

(चौथा पटल)

दोषकोष

पाठकों को जानना चाहिये कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें गुण ही गुण हों और दोष न हों। इसी सिद्धान्त के अनुसार इन अलंकारों में भी कुछ दोष हुआ करते हैं। उन्हें भी समझ लेना चाहिए।

(१) शब्दालंकारों के दोष

शब्दालंकारों में सर्वप्रधान 'अनुप्रास, और "यमक" हैं, इसलिए इनके ही दोष खूब समझ लेना चाहिए।

(क) अनुप्रास के दोष

अनुप्रास अलंकार के मुख्य तीन दोष हैं—(१) प्रसिद्धाभाव, (२) वैफल्य और (३) वृत्ति-विरोध।

(१) प्रसिद्धाभाव

दो०—अप्रमान बातैं कहै, अनुप्रास के हेत।
दोष प्रसिद्धाभाव तेहि, भाषै सुकबि सचेत॥

१—कवित्त—रविजा कहे ते रन जीते जाम जारि जारि,
यमुना कहे ते यमुना के होत हेर[1] बिन।
भानु होति कीरति प्रभानु के परमपुँज,
भानुतनया के कहे ते ही फेर फेर बिन॥
'ग्वाल कवि' मंजु मारतंड नंदिनी के कहे,
महिमा महा में होत दीनन के टेर बिन।

---

१ देखना।

दूरि जात दारिद दिनेसतनया के कहे,
कहत कलिन्दी के कन्हैया होत देर बिन ॥

इसमें श्री यमुना जी की महिमा का वर्णन है। यमुना की महिमा से यद्यपि सब कुछ हो सकता है, तो भी 'रविजा' कहने से 'रण जीते', 'यमुना' कहने से 'यम' के नाके बंद हो जायँ, 'भानुतनया' कहने से 'भानु हो जाय' 'मारतंडनन्दिनी' कहने से 'महिमा बढ़ै' 'दिनेशतनया' कहने से 'दारिद दूर हो जाय' और 'कालिंदी' कहने से 'कन्हैया हो जाय' इन बातों का कोई प्रमाण नहीं है। कवि ने केवल अनुप्रास के हेतु ही ऐसा कहा है। अतः यह प्रसिद्धभाव दोष है।

(२) वैफल्य

चमत्कार का होय अभाव। तेहि वैफल्य कहैं कबिराव ॥

१—सवैया

का 'सरदार' कहौं तोहि सों सरदार सबै सरदार सबा हैं।
सासन सासन सासन में हम सासन सासन सासन चाहैं।
काननदी ननदी ननदी ननदी ननदी जु न दीन दचा हैं।
का बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा हैं।

यहाँ वाच्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र है। अतः अनुप्रास व्यर्थ वा विफल है। ऐसे विफल अनुप्रास 'ग्वाल' और 'पजनेश' कवि की कविता में बहुधा पाये जाते हैं।

(२) वृत्ति-विरोध

उपनागरिकादि वृत्तियों के नियम विरुद्ध वर्णविन्यास को वृत्तिविरोध दोष कहते हैं।

१—दो०—पंचवटी गुनगन जटी, ठटनि ठटी नटरास।
अघट घटी दुख सुख पटी, कुटी करो तहँ बास ॥

२—सवैया

एक घटी न घटी सिय के दुख राम रहे मुनि के निकटी[1] ।
घट के सुत[2] सो हित नारि जटी मनु धूरजटी[3] नहीं काम छटी[4] ॥
दुपटी फटि जात जहां तम की प्रगटी घट में गुरु ज्ञान गटी ।
कहिये कहुँ मुक्ति हटी बरटी[5] जहँ पर्नकुटी रघुनाथ ठटी ॥

६—दो०—तौ लगि या मन-सदन महँ हरि आवैं केहि बाट ।
निपट बिकट जौ लौं जुटे खुलैं न कपट-कपाट ॥

४—सवैया

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहैं जहँ एक घटी[6] ।
निघटी रुचि मीचु[7] घटी हूँ घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी[8] ।
अघ-ओघ की बेरी[9] कटी विकटी प्रगटी गुरुज्ञान गटी[10] ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटीबन पंचवटी ॥

यह शांत-रस संबंधी कविता 'कोमला' वृत्ति में होनी चाहिये थी, सो 'परुषा' वृत्ति में की गई है । 'राम' कवि कृत हनुमन्नाटक में ऐसी कविता बहुत है ।

सूचना—'पजनेश' की कविता में यह दोष प्रायः पाया जाता है । इस कवि ने शृङ्गार वर्णन में परुषा वृत्ति टवर्गी अक्षरों का बहुतायत से प्रयोग किया है ।

(ख) यमक का दोष

यमकालंकार के नियमानुसार यमक किसी छंद के एक चरण वा दो चरण वा चारों चरणों में होना चाहिये । इसके विरुद्ध यदि तीन चरणों में यमक हो तो 'अप्रयुक्त' दोष कहलाता है ।

१—दो०—तो पर वारौं उरबसी[11], सुनु राधिके सुजान ।
तू मोहन के उरबसी[12], ह्वै उर बसी[13] समान ॥

---

१ पास । २ घड़े से उत्पन्न (अगस्त्य) । ३ महादेव । ४ छटा, शोभा । ५ बेचारी । ६ घड़ी । ७ मृत्यु । ८ ध्यान । ९ बेड़ी । १० गठरी । ११ अप्सरा । १२ हृदय में बस गई है । १३ पदिक; धुकधुकी ।

यहाँ 'उरबसो' शब्द का यमक केवल तीन चरणों में है ! अतः अप्रयुक्त दोष है।

२—दो०—वानीरूप अनूप बर, बरन बाम[1] ते बाम[2]।
कहैं बाम बिधि[3] बिधि करी[4], वामदेव[5] धनु बाम[6] ॥

यहाँ वाम शब्द का यमक भी तीन ही चरणों में है। अतः अप्रयुक्त दोष है।

(२) अर्थालंकारों के दोष

(क) उपमा के दोष

अर्थालंकारों में मुख्य 'उपमा' अलंकार है। अतः इसके दोषों को भली भाँति समझ लेना चाहिए। उपमालंकार में मुख्यतः ६ दोष माने गए हैं। यथा—

(१) न्यूनता

जहाँ उपमेय से उपमान की न्यूनता दर्शित हो, उसे न्यूनता दोष कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—(क) जातिगत (ख) माणगत, (ग) धर्म ।

(क) जातिगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—चतुर सखिन के मृदु वचन, वासर[7] जाय बिताय।
पै निसि में चंडाल लौं, मारत यह ससि आय।

हाँ चंद्रमा का उपमान चांडाल कहा गया है। यह जाति गत नता दोष है।

(ख) प्रमाणगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—सोहत अग्नि-फुलिंग लौं, यह रविरथ नभ थान।

---

१ श्रेष्ठ वर्णवाली स्त्रियाँ। २ बाएँ। ३ टेढ़ी रीति। ४ ब्रह्मा। ५ महादेव। ६ टेढ़ा धनुष। ७ दिन।

यहाँ सूर्य के रथ को अग्नि की चिनगारी की उपमा दी गई है। यह बड़ी वस्तु की छोटी वस्तु से उपमा है। इसी को प्रमाणगत न्यूनता कहते हैं।

(ग) धर्मगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—कृस्न-अजिन[1] पट लसत मुनि, सुचि मौंजी युत[2] गात।
नील मेघ के निकट जिमि, नभ दिनमनि बिलसात॥

यहाँ मुनि उपमेय के काली मृगछाला रूप धर्म के लिए तो सूर्य उपमान के नीलमेघ की निकटता रूप धर्म कहा गया है, परंतु मौंजी के समान दूसरा धर्म बिजली और भी कहना चाहिए था, सो नहीं कहा गया। यही धर्मगत न्यूनता दोष है।

(२) अधिकता

जहाँ उपमेय से उपमान की अधिकता प्रदर्शित हो, वहाँ 'अधिकता' नामक दोष होता है। न्यूनता की तरह अधिकता भी तीन भाँति की है—

(क) जातिगत अधिकता

१—दो०—कमलासन[3] आसीन यह, चक्रवाक बिलसाहि।

यहाँ चक्रवाक की उपमा ब्रह्मा से दी गई है। यह अधिकता दोष है नीच पक्षी की उपमा अति उच्च देवता से ठहराना केवल हास्यास्पद है।

(ख) प्रमाणगत अधिकता

जहाँ किसी छोटे उपमेय की उपमा अत्यंत बड़े और भद्दे उपमान से दी जाय जैसे—नख की उपमा खोंड़े से व दाँत की उपमा वज्रशिला से।

---

१ मृगचर्म। २ मूँज की करधनी। ३ कमल का आसन, ब्रह्मा।

धर्मगत अधिकता

१—दो०—लसत पीतपट चाप[1] कर, मनहर बपु घनस्याम।
तड़ित इंद्रधनु ससि सहित, ज्यों निसि में घनस्याम॥

यहाँ उपमेय श्रीकृष्ण के पीताम्बर तथा धनुष के स्थान पर उपमान नीलघन बिजली तथा इंद्रधनुष सहित कहा गया सो ठीक है, किंतु उपमान चंद्र सहित कहा गया है इसके जोड़ की वस्तु (शंख) उधर कृष्ण के पास कथन नहीं की गई, अतः उपमान में अधिकता है।

(३) लिंग-भेद और (४) बचन-भेद

१—दो०—कहे जायँ कहु कौन बिधि, या नृप के गुन कूल[2]।
मधुरे बच हैं दाख[3] लौं चरित चाँदनी-तूल[4]॥

यहाँ उपमेय ' बच ' एक बचन पुल्लिग और क्रिया बहु वचन है। ' दाख ' उपमान स्त्री लिंग और एकवचन है। 'चरित' पुलिंग है। यह अनुचित है। अतः दोषरूप है।

२—सवैया

दैत[5] समान लगै अति दारुन चैत की चाँदनी रामै सिया बिन।

३—दो०—मनमोहन तन घनसघन, रमनि राधिका मोर।
श्रीराधामुख-चंद को गोकुलचंद चकोर॥

यहाँ ' राधिका ' स्त्रीलिंग के लिये ' मोर ' पुलिंग की उपमा अनुचित है।

(५) काल भेद

उपमेय के साथ और काल की क्रिया लाना, उपमान के साथ और काल की। यथा—

१—दो०—रन में इमि सोभित भये, राम बान चहुँ ओर।
जिमि निदाघ मध्यान में, नभ रबि-कर खर घोर॥

---

१ धनुष। २ सब। ३ मुनक्का। ४ समान। ५ राक्षस।

इसमें 'रामबान इमि सोभित भये' (भूतकालिक क्रिया) और 'जिमि रवि-कर मध्यान में होते हैं' (वर्त्तमानकालिक क्रिया का अध्याहार) अनुचित होने से दोषरूप है।

(६) पुरुष भेद

जहाँ उपमेय को और पुरुष में और उपमान को और पुरुष में कहें। यथा—

१—दो०—राजत हौ प्यारी ! रुचिर पट कुसुंभ[1] तनु धारि।
लाल सुबाल सुबालतरु-प्रभव[2] लता अनुहारि॥

यहाँ 'प्यारी' उपमेय 'मध्यम पुरुष' में और 'लता' उपमान 'अन्य पुरुष' में है। यह अनुचित होने से दोषरूप है।

(७) विधिभेद

जहाँ उपमेय और उपमान की विधि न मिले। जैसे—

१—दो०—नृप तव कीरति सम सदा, दिनकर करै प्रकास।

सूर्य स्वयं ही सदा प्रकाशमान है। कीर्ति सम प्रकाशित हो, ऐसा कथन नितांत असंगत है।

(८) अप्रसिद्धि

ऐसी उपमा देना जैसी लोक में प्रसिद्धि न हो। जैसे—

१—दो०—काव्य-चंद्र रचना करत, अर्थ किरन युत चारु।

काव्य को चंद्र और अर्थ को किरण कहना अप्रसिद्धि दोष है। इसे 'असादृश्य' भी कहते हैं।

(९) असम्भव

१—दो०—धनु-मंडल सों परत हैं, दीपत सरखर-धार।
ज्यौं रवि के परिवेष तें, परत ज्वलित जलधार॥

यहाँ धनुष से छूटे हुए दीप्तिमान बाणों को सूर्यमंडल से गिरती हुई ज्वलित जल-धाराओं की उपमा दी जाने से असंभव दोष है, क्योंकि ऐसा संभव ही नहीं है।

---

१ वासंती। २ मूँगे के वृक्ष से उत्पन्न।

(२) उत्प्रेक्षा के दोष

(क) 'उत्प्रेक्षा' में मनु, जनु, मानो, जानो, ध्रुव, खलु, इव, शब्दों से ही संभावना स्फुरित हो सकती है, 'यथा' 'ज्यौं' शब्दों से नहीं अतः उत्प्रेक्षा में 'ज्यौं' वा 'यथा' वाचक लाना दोष है। इसे 'अवाचकता' दोष कहते हैं।

(ख) उत्प्रेक्षा के समर्थन को अर्थांतरन्यास का कथन करना दूसरा दोष है जिसे 'अनुचितार्थता' दोष कहते हैं। जैसे—

१—दो०—रक्षत हिमगिरि तमहिं मनु, गुफा लीन रवि भीत।
सरनागत छोटेहु पर, करत बड़े जन प्रीत॥

यहाँ अचेतन 'तम' को सूर्य से भय होना ही संभव नहीं फिर हिमगिरि कृत रक्षा कैसी ? तिस पर तुर्रा यह कि अर्थांतरन्यास से उसी असंभव बात को पुष्टि करना मानो बिना आधार के चित्र खींचना है।

(३) समासोक्ति का दोष

'समासोक्ति' अलंकार में समान विशेषणों द्वारा ही उपमान विशेष्य का प्रकाशन होता है, उसके लिए उपमान वाचक पद कहना एक दोष है, जिसे 'पुनरुक्तता' वा अपुष्टार्थता, कहते हैं। जैसे

१—दो०—परस करत रविकरन[१] दिसि, लखि उर तार जुआन[२]।
कामिनि अरु चिर दिवस-श्री, ग्रहन कियो बहु मान॥

यहाँ सूर्य और दिशा के वर्णन मात्र से नायकत्व और नायिकत्व (पुल्लिंगता और स्त्रीलिंगता) प्रकट ही हो जाती है, फिर अप्रस्तुत का नायिकत्व प्रकट करने के लिए 'कामिनी' शब्द का कथन नितांत निष्प्रयोजनीय है।

(४) अन्योक्ति का दोष

इस अलंकार में भी समान विशेषणों से प्रस्तुत प्रगट हो जाता है। उसके लिए कोई वाचक शब्द लाना पुनरुक्ति दोष है।

---

१ किरन, हाथ। २ अन्न।

जातीय गान

बंदौं श्रीभरत-भूमि सर्व-सेव्य माता।

चंदन-सम ताप हरनि, सस्यपूर्न स्याम-बरनि,
बिपुल-सुजल-सुफल-धरनि, धवल-सुजस-ख्याता,
हिम-गिरि के तुंग-शृंग[१], क्रीट-मुकुट-उत्तमंग[२],
युगल-बाहु कच्छ-बंग, अभय-बर-प्रदाता।
सिंधु-ब्रह्मपुत्र-भेस, लहरैं युग-ओर-केस,
बदरी-बन मन सुबेश, बिमल-बुद्धि खाता।
मध्यदेश मध्यदेश[३], बिंध्या कटि-पट-सुबेश,
उदर बार-बरार-देश, मदन लखि सिहाता।
पूर्बी-पश्चिमी-घाट, युगल-जंघ जानु-ठाट,
सिंहलहू निज ललाट, चरन पै नवाता ॥
गंगा-जमुना-सुढार, पुष्टिप्रदा दुग्धा-धार,
छुवत पियत एक बार, जम-भय भगि जाता।
चंद-ज्योति मुख-विकास, कुंद-कुमुद-सुमन हास,
खंग-रव बानी-बिलास, सुखद-बरद-माता ॥
अतुल-अमल-रम्य-रूप, सफल सजल-बाग-कूप,
भव्य-दिव्य-छबि अनूप, नमो-नमो माता ॥
बन्दौं श्री भरत-भूमि सर्ब-सेव्य माता।

---

१ ऊँची चोटी। २ सिर। ३ कमर।